Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

History of India 1757-1857 A.D. - II

Centre for **Distance &**
**Online** Education

**Faculty of Arts**

# History of India
# 1757-1857 A.D. - II

2MAHIS3

**DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY**

Chhattisgarh, Bilaspur

A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

# 2MAHIS3
# History of India 1757-1857

# 2MAHIS3
# History of India 1757-1857

**Credit- 4**

---

**Subject Expert Team**

---


***Dr. Ramratan Sahu*** Associate Professor Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)
***Dr. Anju Tiwari*** Associate Professor Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)
***Dr. Mahesh Kumar Shukla*** Associate Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)
***Dr. Manju Sahu*** Assistant Professor Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)
***Dr. Krishna Kumar Pandey*** Associate Professor Dr. C. V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur (C.G.)
***Dr. Pravin Kumar Mishra*** Professor Department of Social Science (History) at GGU, Bilaspur (C.G.)
***Dr. Mamta Garg*** Dean Rajive Gandhi Govt.P.G. college Ambikapur(C.G.)
***Dr. Mahendra Kumar Sarva*** Assistant Professor Govt. D.B. Girls P.G. College Kalibadi Chauk Raipur (C.G.)


---

**Course Editor:**

---


**Dr. Ranjeet Kumar Barik Assistant Professor,** Govt. Girls college Near Govt. Dist. Library Raigarh (C.G.)


---

**Unit Written By:**

---


**1 Dr. Ramratan Sahu**
Associate Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)
**2. Dr. Anju Tiwari**
Associate Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)
**3. Dr. Manju Sahu**
Assistant Professor, Dr. C. V. Raman University, Bilaspur (C.G.)


---


**Warning:** All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.


Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.)

---

**Edition : March 2024**

Published by: Dr. C.V. Raman University Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.), Ph. +07753-253801,07753-253872 E-mail: info@cvru.ac.in, Website: www.cvru.ac.in

| अध्याय | पृष्ठ क्रमांक |
|---|---|
| 1. आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोत<br>*(Sources of Modern Indian History)* | 01 |
| 2. 18वीं शताब्दी के मध्य में भारत की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति<br>*(Economic, Social & Cultural Position of Mid-Eighteenth Century in India)* | 05 |
| 3. ब्रिटिशों की साम्राज्यवादी नीति व बंगाल में प्रभुत्व<br>*(Expansion Policy of Britishers and British Supremacy in Bengal)* | 16 |
| 4. अंग्रेज-मराठा युद्ध<br>*(Anglo-Maratha Wars)* | 29 |
| 5. अंग्रेज-मैसूर युद्ध<br>*(Anglo-Mysore Wars)* | 37 |
| 6. अंग्रेजों का सिन्ध, बर्मा व अफगानिस्तान से युद्ध<br>*(British Wars of Sindh, Burma & Afganistan)* | 45 |
| 7. अंग्रेज-सिख युद्ध<br>*(Anglo-Sikh Wars)* | 58 |
| 8. लार्ड वेलेजली की सहायक सन्धि व डलहौली की हड़पनीति<br>*(Lord Wellesley's Subsidiary Allieance & Dalhousie's Doctrine of Lapse)* | 70 |
| 9. स्थाई बंदोबस्त, महालवाड़ी, रैयतवाड़ी व्यवस्था<br>*(Parmanent Settlement, Mahalawari, Raiyatwari)* | 80 |
| 10. संवैधानिक विकास : रेग्यूलेटिंग एक्ट एवं पिट्स इंडिया एक्ट<br>*(Constitutional Development : Regulation Act & Pitts India Act)* | 89 |
| 11. न्यायिक व प्रशासनिक सुधार : हेस्टिंग्स व कार्नवालिस<br>*(Judicial and Administrative Reforms : Hastings & Cornwallis)* | 99 |
| 12. न्यायिक व प्रशासनिक सुधार : विलियम बैंटिंक व डलहौजी<br>*(Judicial and Administrative Reforms : William Bentick & Dalhousie)* | 114 |

●●●

# अध्याय–1 आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोत
## (SOURCES OF MODERN INDIAN HISTORY)

NOTES

**इकाई की रूपरेखा**

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोत
1.3 भारत के आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय एवं विकास
1.4 सारांश
1.5 अभ्सास प्रश्न
1.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. साहित्यिक स्रोत के योगदान का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. यात्रा विवरण स्रोतों के योगदान को ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. पुरातात्विक स्रोतों के योगदान का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 1.1 प्रस्तावना

इतिहास के किसी भी कालखंड की जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके स्रोतों का अध्ययन करना आवश्यक होता है। स्रोतों की प्रामाणिकता और सत्यता एक अलग पहलू है, लेकिन विद्वतजन तथ्यों के आलोक में और विवरणों के विश्लेषण के द्वारा वास्तविकता तक पहुँचने का प्रयास करते रहते हैं। इन्हीं कोशिशों और प्रयत्नों का परिणाम है कि आज के मानव को प्रागैतिहासिक युग से वर्तमान तक के सम्पूर्ण इतिहास की विस्तृत जानकारी प्राप्त हो चुकी है। सामान्यतः इतिहास के स्रोतों को हम निम्न स्रोतों में विभाजित करते हैं—

(1) साहित्यिक स्रोत, (2) यात्रा विवरण, (3) पुरातात्विक स्रोत

परंतु हम यहाँ ब्रिटिशकालीन आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों का अध्ययन करने वाले हैं इसीलिए इसमें पुरातात्विक स्रोतों का वर्णन नहीं आएगा। हम इस अध्याय में आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों में साहित्यिक स्रोत, यात्रा विवरण, समाचार-पत्र, पत्रिकाओं आदि का स्रोत के रूप में अध्ययन करेंगे।

## 1.2 आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोत

आधुनिक भारत का इतिहास अर्थात् ब्रिटिश कालीन भारतीय इतिहास ही माना जाता है। ब्रिटिश कालीन भारतीय इतिहास की जानकारी हमें वहाँ के आर्थिक दस्तावेजों से प्राप्त होती है।

**(1) इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया** (Economic History of India) - आर.सी. दत्त द्वारा लिखित इस ग्रन्थ के कुल दो भाग हैं जिनमें अंग्रेजों के आधीन भारत का आर्थिक इतिहास दिया गया है। यह ग्रन्थ राष्ट्रवादी-लेखन का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें भारत के साम्राज्यवादी शोषण के आर्थिक पहलू का विवरण प्रस्तुत किया गया है। साथ ही भारत से राष्ट्रीय पूँजी के निर्गमन को प्रमाणित करके राष्ट्रीय संघर्ष के लिए आधार तैयार किया गया। आर.सी. दत्त का जन्म 1848 ई. में उत्तरी कोलकाता में हुआ था। कोलकाता में शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह

इंग्लैण्ड चले गये जहाँ वह जॉन स्टुअर्ट मिल एवं चार्ल्स डिकेन्स के सम्पर्क में आए। भारत वापस आने पर वह बंकिम चन्द्र चैटर्जी के प्रोत्साहित करने पर लेखन के क्षेत्र में आए। ऐतिहासिक उपन्यास लिखने एवं अनुवाद करने के पश्चात् 1902 और 1904 ई. में उन्होंने 'दि इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' नामक पुस्तक के दोनों खण्डों का प्रकाशन किया।



धन-निकासी के भारतीय अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करते हुए **आर.सी. दत्त** ने लिखा है, **''भारतीय राजाओं द्वारा कर लेना तो सूर्य द्वारा भूमि से पानी लेने के समान था जो कि पुन: वर्षा के रूप में भूमि पर उर्वरता देने के लिये फिर वापस आता था, किन्तु अंग्रेजों द्वारा लिया गया कर पुन: भारत में वर्षा न करके इंग्लैण्ड में ही वर्षा करता था।''**

**(2) पावर्टी एण्ड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया** (Poverty and Unbritish Rule in India) - दादा भाई नौरोजी ने अपनी इस पुस्तक में भारतीय धन के निर्गमन का वर्णन किया है। इस पुस्तक के अनुसार "अन्य कारणों के अतिरिक्त भारतीय धन का निर्गमन भारत की वास्तविक गरीबी और दु:ख का कारण है।" इस पुस्तक के अनुसार उन्होंने लिखा कि, "जनता की भीषण गरीबी और दयनीय अवस्था का मुख्य कारण विदेशियों को भारतीय शासन में असाधारण रूप से नौकरी देना, देश के भौतिक साधनों की हानि एवं धन निर्गम था।" दादा भाई नौरोजी ने अपने ग्रन्थ में यह भी लिखा कि, "यह जीवन और मृत्यु का सवाल है। इस बुराई को हटा दीजिये और भारत प्रत्येक दशा में समृद्ध हो जायेगा।" दादा भाई नौरोजी ने मुगलों और मराठों के शासन की तुलना अंग्रेजी शासन से करते हुए लिखा कि मुगलों व मराठों ने जिस धन की लूट की वह धन यहीं व्यय हुआ। यदि एक नागरिक को लाभ हुआ तो दूसरे को हानि हुई, किन्तु अंग्रेजी शासन भारतीय धन का प्रवाह निरन्तर रूप से देश के बाहर होता रहा। यह एक विनाशकारी स्थिति थी।

मुक्त व्यापार की नीति के संबंध में दादाभाई नौरोजी ने स्पष्ट किया कि भारत और इंग्लैण्ड के बीच मुक्त व्यापार एक घोड़े पर चढ़े शक्तिशाली मनुष्य और एक भूखे, थके व अपंग व्यक्ति के बीच दौड़ के समान था। भारत पर लादी गई मुक्त व्यापार की नीति एकतरफा थी। दादाभाई नौरोजी जैसे राष्ट्रवादी ने अपने इस ग्रन्थ में ब्रिटिश नीति का सविस्तार वर्णन किया है तथा इस तथ्य को प्रमाणित किया कि भारतीय अर्थव्यवस्था का असन्तुलन एवं पिछड़ापन पुरानी विरासत की नहीं वरन् अंग्रेजी शासन की देन है।

**प्रॉस्परस ब्रिटिश एण्ड इंडिया** (Prosperous British and India) - यह पुस्तक 1901 ई. में अंग्रेज इतिहासकार विलियम डिग्बी द्वारा लिखी गई। यह जातीयता एवं राष्ट्रीयता से ऊपर उठने वाली एक रोचक प्रस्तुति है। इसमें भी ब्रिटिश कालीन आर्थिक व व्यापारिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है।

**बोध प्रश्न**

1. यात्रा विवरण का आधुनिक इतिहास के स्रोत के रूप में वर्णन कीजिए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

2. भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय एवं विकास का वर्णन कीजिए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

**इंडिया टुडे** (India Today) - रजनी पाम दत्त द्वारा लिखित यह ग्रन्थ मार्क्सवादी इतिहास लेखन का प्रतिनिधित्व करता है। आर.पी. दत्त (रजनी पाम दत्त) ने वर्गभेद एवं शोषण की ओर ध्यान केन्द्रित करते हुए लिखा कि स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन भी आवश्यक है। उन्होंने तथ्यों के मात्र विवरण के स्थान पर तथ्यों-यथा राजनीतिक एवं आर्थिक तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्धों पर जोर दिया। उन्होंने सामाजिक शोषण की पहचान मुख्यतया आर्थिक आधार पर की है।

**हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया** (History of British India) - हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया ग्रन्थ जेम्स मिल द्वारा लिखित छह खण्डों में प्रकाशित है। यह साम्राज्यवादी विचारधारा का एक अन्य उदाहरण है। जेम्स मिल प्रथम महान ब्रिटिश इतिहासकार था जिसने आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन के ब्रिटिशकाल के बारे में लिखा। इस ग्रन्थ को लिखने से पूर्व ही वह एक लेखक के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। 'राजनीतिक अर्थव्यवस्था' के बारे में उसके विचार अत्यधिक प्रसिद्ध हुए। इस पुस्तक को भारत की स्तरीय पुस्तकों में स्वीकार किया गया तथा लगभग सौ वर्षों तक भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में इसको सम्मिलित किया गया। इस ग्रन्थ में मिल ने प्राचीनकाल से अठारहवीं सदी के अन्त तक के भारतीय इतिहास का वर्णन किया है। ब्रिटिशकाल के बारे में लिखते हुए उसने वारेन हेस्टिंग्ज जैसे उदारवादी ब्रिटिश प्रशासकों के प्रति बहुत ही कड़ा रुख अपनाया।

**कैंब्रिज इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया खण्ड II** (Cambridge Economic History of India, Part-II)- इस ग्रन्थ के इतिहासकारों ने भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में निरन्तरता एवं परिवर्तन के तत्वों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस ग्रन्थ के इतिहासकारों का मत है कि '18वीं शताब्दी की भारतीय अर्थव्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन नहीं हुए थे तथा आर्थिक क्षेत्र में भारतीयों की भागीदारी बनी रही थी।'

**एन इन्क्वायरी इनटु दि नेचर एण्ड कॉलेज ऑफ दि वैल्थ ऑफ नेशंस** (An Enquiry into the Nature and causes of the Wealth of Nations) - अथवा **विभिन्न राष्ट्रों की संपदा : स्वरूप और विश्लेषण-** ईस्ट इंडिया कंपनी के विरुद्ध सैद्धान्तिक अभियान चलाते हुए एडम स्मिथ अपने इस ग्रन्थ में लिखते हैं कि इस प्रकार की एकाधिकार प्राप्त या अनन्याधिकारी कंपनी जिस राष्ट्र में बनाई जाती है, वहाँ असुविधाजनक होती है तथा जहाँ कार्य करती है, वहाँ के लोगों के लिये दुर्भाग्यपूर्ण होती है। इन एकाधिकारी संस्थाओं से वस्तुओं के दाम भी बढ़ जाते हैं तथा अधिकांश व्यक्तियों के लिये व्यापार-क्षेत्र बंद हो जाता है।

**मेरे समय का भारत : व्यक्ति और घटनाएँ** (Men and Events of my time in India) - सर रिचर्ड टेम्पल ने अपने इस ग्रंथ में घटनाओं को आर्थिक परिप्रेक्ष्य में भी लिखा है। उदाहरणार्थ- लार्ड कार्नवालिस के स्थायी बन्दोबस्त की प्रशंसा करते हुए टेम्पल लिखते हैं कि, "यह एक ऐसा उपाय था जो बंगाल की जनता के मध्य इंग्लैंड की जमींदारी से संबंधित संस्थाओं को स्वाभाविक बनाने में कारगर सिद्ध हुआ।"

**दि डायनामिक्स ऑफ ए रुरल सोसायटी** (The Dynamics of a Rural Society) - स्थायी बन्दोबस्त ने ग्रामीण समाज को किस सीमा तक प्रभावित किया? यह प्रश्न इतिहासकारों के मध्य वाद-विवाद का विषय रहा है। आर. ए. मुकर्जी अपने इस ग्रन्थ में इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि स्थायी बन्दोबस्त के कारण अंग्रेजों के आधीन बंगाल का ग्रामीण समाज तीन वर्गों में विभक्त हो गया था- (i) भूमिपति, (ii) आत्मनिर्भर रैयत एवं (iii) कृषक मजदूर।

**प्रिंसीपल ऑफ पॉलिटिकल इकॉनॉमी** (Principles of Political Economy) - रिकॉर्डो का यह ग्रन्थ ब्रिटिशकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। उल्लेखनीय है कि कर्मचारियों के प्रशिक्षण केन्द्र हेलीबरी कॉलेज, इंग्लैंड में अर्थशास्त्र विभाग सर्वाधिक महत्वपूर्ण था तथा इस विभाग में माल्थस, रिकॉर्डो एवं मिल के विचारों को विशेष महत्व दिया जाता था। इन विचारों में रिकॉर्डो का 'भूमि किराये संबंधित सिद्धान्त' सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ।

## 1.3 भारत में आर्थिक राष्ट्रवाद का उदय एवं विकास (The Rise and Growth of Economic Nationalism in India)

विपिन चन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ में विदेशी शासन एवं भारत के बढ़ते जा रहे पिछड़ेपन के बीच संबंध खोजने की समस्या पर विचार किया है। ब्रिटिशकालीन भारतीय अर्थव्यवस्था की जानकारी कतिपय अन्य ग्रन्थों एवं लेखों के माध्यम से भी होती है जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न है -

(i) एलीमेन्टरी आसपेक्ट्स ऑफ पीजेन्ट इनसरजेन्सी इन कॉलोनियल इंडिया- (लेखक : रणजीत सिंह गुहा)

(ii) उत्तरी भारतीय राज्य-उत्तरप्रदेश में कृषि संबंधी परिवर्तन (1818-1833)- (लेखक : आसिया सिद्दीकी)

(iii) विकास, ठहराव या अवनति : ब्रिटिश भारत में कृषि उत्पादन- (लेखक : सुमित गुहा)

(iv) दि पीजेन्ट एण्ड दि राज- (लेखक : एरिक स्टोक्स)

NOTES

(v) 'मद्रास में रैयतवाड़ी व्यवस्था'- अपने इस ग्रन्थ में नीलमणि मुखर्जी रैयतवाड़ी व्यवस्था के सन्दर्भ में लिखते हैं कि, "कहने के लिये तो यह व्यवस्था स्थायी थी, किन्तु व्यावहारिक रूप से इसमें वार्षिक लगान की सभी विशेषताएँ मौजूद थीं जिनका स्वयं मुनरो को भी अनुमान नहीं था।"

(vi) **मद्रास प्रेसीडेन्सी की कृषि संरचना** (The Agrarian Structure of Madras Presidency)- रैयतवाड़ी बन्दोबस्त के प्रभावों की समीक्षा करते हुए शारदा राजू ने अपने इस लेख में यह तर्क रखा है कि नये राजस्व समझौते और प्रशासनिक व्यवस्था से परंपरावादी ग्रामीण समाज का विघटन होने लगा।

(vii) भारत में औद्योगीकरण- (लेखक : रजत राय)

## 1.4 सारांश

**प्राइवेट इन्वेस्टमेन्ट इन इंडिया** (Private Investment in India) - ए.के. बागची कृत ब्रिटिशकाल भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर उपरोक्त ग्रन्थों से तो प्रकाश पड़ता ही है। साथ ही कतिपय अन्य स्रोतों से भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। यथा-गुमनाम लेखन, व्यक्तिगत पत्र, समकालीन अभिलेख, सार्वजनिक प्रतिवेदन आदि। व्यापार से संबंधित महत्वपूर्ण कागजातों यथा- हुंडी, विधेयक, आदेश, वसीयतनामा, कर आदि से भी समकालीन अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त होती है।

## 1.5 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. आधुनिक भारतीय इतिहास के स्रोतों का वर्णन कीजिए।
2. ब्रिटिश कालीन प्रमुख ग्रंथों का वर्णन कीजिए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. सामान्यतः इतिहास के कितने व कौन-कौन से स्रोत होते हैं?
2. इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया ग्रंथ की जानकारी लिखिए।
3. इंडिया टुडे की जानकारी का वर्णन कीजिए।

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया ग्रंथ के लेखक हैं-
   (A) आर.सी. दत्त (B) जी. शर्मा (C) वेनेजुएला (D) कर्जन।
2. पॉवर्टी एड ब्रिटिश रुल इन इंडिया किस भारतीय विचारक ने लिखा -
   (A) गांधीजी (B) दादाभाई नौरोजी (C) नाना फड़नवीस (D) नेहरू।
3. रजनी पाम दत्त द्वारा लिखित ग्रन्थ हैं-
   (A) ब्रिटिश रुल (B) इंडिया टुडे (C) भारत का शोषण (D) अकाल नीति।
4. प्राइवेट इन्वेस्टमेंट इन इंडिया के लेखक हैं-
   (A) शारदा राजू (B) रणजीत सिंह (C) ए.के. बागची (D) सुमित गुहा।

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (B), 4. (C)

## 1.33 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

# अध्याय–2 18वीं शताब्दी के मध्य में भारत की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति

## (ECONOMIC, SOCIAL & CULTURAL POSITION IN MID-EIGHTEENTH CENTURY IN INDIA)

NOTES

**इकाई की रूपरेखा**

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 मध्य 18वीं शताब्दी में ग्रामीण अर्थव्यवस्था
2.3 मध्य 18वीं शताब्दी में शहरी अर्थव्यवस्था
2.4 स्वदेशी बैंक व्यवस्था
2.5 आर्थिक स्थिति
2.6 आधुनिक भारत का इतिहास
2.7 सामाजिक दशा
2.8 सारांश
2.9 अभ्यास प्रश्न
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. 18वीं शताब्दी के मध्य में भारत की आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. 18वीं शताब्दी के मध्य में भारत की सामाजिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. 18वीं शताब्दी के मध्य भारत की सांस्कृतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 2.1 प्रस्तावना

सन् 1600 से भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ। प्रारंभ में अंग्रेज केवल व्यापार करने भारत आए थे परंतु यहाँ के अत्यधिक लाभ को देखते हुए उन्होंने भारत में साम्राज्य विस्तार करना शुरू किया। अंग्रेजों के भारत में शासन स्थापित करने में भारत की आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक स्थितियाँ भी अनेक जगह जिम्मेदार थीं। इस अध्याय में 18वीं शताब्दी के मध्य के भारत की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति का अध्ययन करेंगे।

## 2.2 मध्य 18वीं शताब्दी में ग्रामीण अर्थव्यवस्था (Rural Economy in the Mid-Eighteenth Century)

भारत प्रारम्भ से ही एक कृषि प्रधान देश रहा है। 18वीं शताब्दी के मध्य की 'कृषि अर्थव्यवस्था' को भी साधारणतया 'ग्रामीण अर्थव्यवस्था' के रूप में जाना जाता था। इस काल में सभी गाँवों की संरचना लगभग समान थी। ग्रामीण संगठन के प्रमुख अंग कृषक, अधिकारी, श्रमिक एवं सेवक थे। कृषक के भी दो वर्ग थे- भूमिधर

(जोकि भूस्वामी थे) तथा शिकमी काश्तकार। अधिकारी का कार्य गाँव में प्रत्येक क्षेत्र में सुव्यवस्था को कायम रखना होता है। अधिकारी वर्ग में मुखिया, पटवारी, सन्देशवाहक आदि आते हैं। ग्रामीण संगठन का तृतीय वर्ग कारीगरों या श्रमिकों का होता था। कारीगरों को उनके श्रम का प्रतिफल नियमित रूप से वार्षिक आधार पर दिया जाता था। श्रमिकों को अनाज के रूप में भत्ता भी देने की प्रथा थी। कारीगरों में प्रमुख थे- बढ़ई, नाई, धोबी, लुहार, चर्मकार, कुम्हार, तेली आदि।

**कृषि उत्पादन की तकनीक** - गाँवों में कृषि परम्परागत ढंग से की जाती थी। सिंचाई के लिए कृषकों को या तो मानसून पर निर्भर करना पड़ता था या फिर कुएँ थे। अठारहवीं सदी की कृषि तकनीकी रूप से पिछड़ी व जड़वत थी। तकनीकी रूप से पिछड़ी होने के कारण कृषकों को अधिक परिश्रम करना पड़ता था। किन्तु दुर्भाग्यवश कृषक को अपने परिश्रम के अनुरूप फल की प्राप्ति नहीं होती थी। इसका प्रमुख कारण राजस्व की रकम एवं वसूली के तरीके थे, किन्तु विभिन्न प्रतिकूलताओं के बावजूद भारतीय ग्राम एक बड़ी सीमा तक स्वावलम्बी थे। कृषि संबंधी प्रमुख उपज अनाज थी। इसके अतिरिक्त चना, चावल, मक्का, ज्वार व बाजरा भी बोया जाता था। उत्तरी भारत में कपास व गन्ना तथा दक्षिण भारत में ज्वार व बाजरा अधिकता में होता था। धन लाभ की दृष्टि से नील, अफीम व तम्बाकू की भी खेती की जाती थी।

## 2.3 मध्य 18वीं शताब्दी में शहरी अर्थव्यवस्था (Urban Economy during Mid-Eighteenth Century)

मध्य 18वीं शताब्दी में विदेशी आक्रमणों के कारण अधिकांश शहरी केन्द्र उजड़ चुके थे। उदाहरणार्थ- दिल्ली व मथुरा को अहमदशाह अब्दाली; आगरा को जाटों;, सरहिन्द को सिक्खों; सूरत, गुजरात व दक्षिण के नगरों को मराठों के आक्रमणों ने ध्वस्त कर दिया था। इन नगरों में सभ्य जीवन का विकास अवरुद्ध हो गया था। इसी दौरान यूरोपीय व्यापारियों के आगमन से उद्योगों की उन्नति हुई। भारतीय उद्योगों में निर्मित वस्तुयें एशिया, अफ्रीका एवं यूरोप के बाजारों की माँगें पूर्ण करने लगीं। इस प्रकार उद्योगों एवं व्यापार की प्रगति से अनेक महत्वपूर्ण नगर अस्तित्व में आये। पंजाब में मुलतान; सिन्ध के कुछ नगर, लाहौर, आगरा, दिल्ली, बंगाल में मालवा, रंगपुर व कासिम बाजार; राजस्थान में जोधपुर, जैसलमेर, पाली व अजमेर; हैदराबाद, तंजौर, बंगलौर, अहमदाबाद, पूना आदि शहरी अर्थव्यवस्था के प्रमुख केन्द्र थे।

**उद्योग एवं व्यापार** (Trade & Industry)-

मुगलों के शासन काल से ही भारत का अपने देश के अन्दर एवं यूरोप व एशिया के देशों के साथ व्यापक पैमाने पर व्यापार होता था। जिसे दो भागों में बाँटा जाता है—

**(1) आयातित वस्तुएँ** - भारत द्वारा आयात की जाने वाली वस्तुएँ थीं- अरब से सोना, कहवा, शहद एवं दवायें, चीन से रेशम, चीनी, चाय व चीनी मिट्टी, तिब्बत से सोना, ऊनी कपड़ा व कस्तूरी; फारस की खाड़ी से कच्चा रेशम, ऊन, मोती, गुलाब जल, खजूर व मेवे, इण्डोनेशियाई द्वीपों से चीनी, मसाले, शराब व इत्र, सिंगापुर से टिन, अफ्रीका से हाथी-दाँत व दवायें, यूरोप से ऊनी कपड़ा, सीसा, लोहा, ताँबा व कागज।

**(2) निर्यातित वस्तुएँ** - भारत द्वारा निर्यात की जाने वाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु सूती वस्त्र थी। भारतीय सूती वस्त्र अपनी उत्कृष्टता के लिये सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध था। ब्रिटेन में मोटे ऊनी कपड़ों के स्थान पर भारत में निर्मित सूती वस्त्रों का प्रचलन अधिक हो गया। इस स्थिति को नियंत्रित करने के लिये ब्रिटिश सरकार द्वारा कुछ कदम उठाये गये। उदाहरणार्थ सन् 1720 में एक कानून पास करके सूती वस्त्रों के प्रयोग पर पाबन्दी लगा दी गई। इसके अतिरिक्त सूती कपड़े के आयात पर भी भारी शुल्क लगा दिये गये। हॉलैण्ड को छोड़कर अन्य यूरोपीय देशों ने भी भारतीय सूती वस्त्र के आयात को प्रतिबन्धित कर दिया अथवा उस पर भारी शुल्क लगा दिये किन्तु इसके बावजूद भी अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक विदेशी बाजारों में भारतीय सूती कपड़े का अस्तित्व बना रहा। इस समय तक ब्रिटिश सूती कपड़ा उन्नत तकनीकी के आधार पर विकसित होकर प्रतिस्पर्धा में आ गया था, जिसके कारण भारतीय वस्त्र उद्योग को क्षति पहुँचनी स्वाभाविक ही थी।

**बहुमूल्य वस्तुओं का व्यापार** - भारत सूती वस्त्र के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं का भी निर्यात करता था जो कि इस प्रकार हैं- कच्चा रेशम, रेशमी वस्त्र, गेहूँ, चावल, चीनी, काली मिर्च, मसाले, औषधियाँ, लोहे का सामान, नील, रत्न एवं अफीम। कुल मिलाकर भारत का निर्यात आयात की अपेक्षा कहीं अधिक था। विदेश

व्यापार को सोने व चाँदी के आयात से सन्तुलित किया जाता था। वस्तुतः भारत 'बहुमूल्य धातुओं के कुण्ड' के नाम से जाना जाता था। इस काल में भारत विश्व व्यापार और उद्योग के प्रमुख केन्द्रों में था। **रूस के पीटर महान** ने कहा था, "भारत का वाणिज्य विश्व का वाणिज्य है और जो उस पर पूर्णतया अधिकार कर सकेगा वही यूरोप का अधिनायक होगा।"

अठारहवीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय उद्योग भी उन्नत अवस्था में थे। भारतीय दस्तकार अपनी दक्षता के लिये प्रसिद्ध थे। जैसा कि पूर्व वर्णित है कि इस काल में वस्त्र उद्योग ने विशेष प्रगति की। कपड़ा उद्योग के प्रमुख केन्द्र थे- उत्तरप्रदेश में लखनऊ, आगरा, जौनपुर और बनारस, मध्यप्रदेश में चन्देरी व बुरहानपुर, बंगाल में ढाका व मुर्शिदाबाद, बिहार में पटना, पंजाब में लाहौर व मुलतान, गुजरात में अहमदाबाद, सूरत व भड़ौच, तमिलनाडु में कोयम्बटूर व मुदरै, आन्ध्रप्रदेश में औरंगाबाद, विशाखापट्टनम, चिकाकोल व मछलीपट्टनम तथा कर्नाटक में बंगलौर। ऊनी वस्त्रों का केन्द्र कश्मीर था। भारत सूती व रेशमी वस्त्रों के अतिरिक्त चीनी, तेल, जूट, रंग, शोरा, धातुओं एवं खनिजों का भी व्यापक पैमाने पर उत्पादन करता था। इस काल में जहाज निर्माण उद्योग भी पर्याप्त रूप से विकसित हुआ। इस उद्योग से संबंधित प्रमुख केन्द्र बंगाल, आन्ध्रप्रदेश व महाराष्ट्र में थे। यूरोपीय कम्पनियों ने भी भारत में बने कई जहाज खरीदे। एक अंग्रेज पर्यवेक्षक के अनुसार, 'जहाज निर्माण में उन्होंने (भारतीयों) अंग्रेजों से जितना सीखा उससे अधिक उन्हें पढ़ाया।'

अठारहवीं सदी के मध्य में भारत के आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार में कतिपय बाधायें उत्पन्न होने लगी थीं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं -

(a) निरन्तर संघर्ष की स्थिति एवं अनेक क्षेत्रों में कानून-व्यवस्था की स्थिति भंग हो जाने से आन्तरिक एवं विदेशी व्यापार को क्षति पहुँची।

(b) स्वायत्तशासी प्रान्तीय सरकारों एवं स्थानीय सरदारों के उदय के साथ सीमा शुल्क की चौकियों में निरन्तर वृद्धि होती गई। प्रत्येक छोटे से छोटे शासक ने अपने क्षेत्र से गुजरने वाली वस्तुओं पर भारी सीमा शुल्क लगा दिये। इन सबका व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

(c) विलास की वस्तुओं का उपयोग सामन्तों द्वारा ही किया जाता था। सामन्तों के निर्धन होने पर आन्तरिक व्यापार को हानि पहुँची।

(d) अनेक राजनीतिक कारणों ने भी व्यापार और उद्योगों को क्षति पहुँचाई।

(e) व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा का सही प्रबन्ध नहीं था तथा अक्सर व्यापारियों के दलों को लूट लिया जाता था। दिल्ली व आगरा जैसे शाही शहरों के मध्य तक की सड़क भी लुटेरों से सुरक्षित नहीं थी।

(f) लूटपाट की घटनाओं ने व्यापार व उद्योग के केन्द्रों का विध्वंस किया। उदाहरणार्थ नादिरशाह ने दिल्ली में तथा अहमदशाह अब्दाली ने दिल्ली, लाहौर और मथुरा में लूटपाट की। साथ ही एक बड़ी सीमा तक इन क्षेत्रों का विध्वंस किया। इसी प्रकार आगरा को जाटों ने, सरहिन्द को सिक्खों ने एवं सूरत, गुजरात व दक्षिण को मराठों ने लूटा।

उपरोक्त कारणों से भारतीय उद्योग एवं व्यापार की पर्याप्त क्षति हुई। फिर भी भारत व्यापक विनिर्माण का देश बना रहा। वस्तुतः इस काल में भी भारतीय अर्थव्यवस्था में इतनी गिरावट नहीं आई थी जितनी कि ब्रिटिश इतिहासकारों ने दिखाने का प्रयास किया है।

**बोध प्रश्न**

1. मध्य 18वीं शताब्दी में ग्रामीण अर्थव्यवस्था का वर्णन कीजिए?

 ........................................................................................

 ........................................................................................

 ........................................................................................

2. मध्य 18वीं शताब्दी में शहरी अर्थव्यवस्था का वर्णन कीजिए?

 ........................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

3. आधुनिक भारत का इतिहास का वर्णन कीजिए?

NOTES

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 2.4 स्वदेशी बैंक व्यवस्था (Indigenous Banking)

मध्य अठारहवीं शताब्दी में भारत में बैंकर, साहूकार एवं धनी व्यापारियों के अस्तित्व के कारण धन के साधनों की पर्याप्तता थी। ग्रामीण क्षेत्र में साहूकार आवश्यकता के समय किसानों को ऋण देता था। साहूकार कई बार जालसाजी से भी काम लेते थे। कृषकों की गरीबी व अज्ञानता का फायदा उठाकर साहूकार मूल से अधिक का शर्तनामा लिखवा लेते थे। कानूनी कार्यवाही में भी कृषक की तुलना में साहूकार का पलड़ा भारी रहता था। शहरी अर्थव्यवस्था में साहूकारों की श्रेणियाँ व्यापारियों के साथ-साथ विकसित हो रही थीं। इस काल में दक्षिण भारत का नाथु कोठारी चैटी सर्वाधिक धनी व्यक्ति माना जाता था। इसी प्रकार बंगाल में जगत सेठ परिवार बैंकर के रूप में जाना जाता था। गुजरात के नाथ जी एवं दक्षिण भारत के चैटी भी बैंकर के रूप में प्रसिद्ध थे। बैंकर एवं सौदागर आधुनिक बैंकों के समान कार्य करते थे तथा हुण्डियाँ भी जारी करते थे। यद्यपि प्रारम्भ में अंग्रेज व्यापारियों ने भी इन बैंकरों से सहायता प्राप्त की थी किन्तु अंग्रेजों द्वारा राजनीतिक सत्ता हस्तगत करने के पश्चात् भारतीय व्यापारियों के बैंकिंग संबंधी कार्य समाप्त हो गये।

यद्यपि ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद आधुनिक पद्धति के बैंकों की स्थापना की गई, किन्तु साहूकारों का अस्तित्व बना रहा अर्थात बैंकों की सुविधायें देश में सर्वत्र उपलब्ध नहीं थीं। सर्वप्रथम 1806 ई. में कोलकाता में 'बैंक ऑफ बंगाल' स्थापित किया गया। 1840 ई. में 'बैंक ऑफ बॉम्बे' तथा 1843 में 'बैंक ऑफ मद्रास' की स्थापना की गई। 1935 ई. में 'रिजर्व बैंक' स्थापित किया गया। कुछ यूरोपियन व्यापारियों ने 'ज्वाइण्ट स्टॉक बैंकों' की स्थापना की।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि मध्य अठारहवीं शताब्दी की भारतीय अर्थव्यवस्था में शनैः-शनैः परिवर्तन के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे थे।

## 2.5 आर्थिक स्थिति (Economic Condition)

अठारहवीं शताब्दी का इतिहास अनेक विभिन्नताओं से भरा हुआ है। बहुत अधिक अमीरी और विलास से भरे जीवन के साथ-साथ गरीबी भी थी। सामन्तों के पास ऐश-आराम और विलास की चीजें थीं। किसान अत्यन्त गरीब थे। साधारण जनता का जीवन दुःखी था। उन्हें बढ़ते हुए करों की माँग, अधिकारियों के अत्याचार, जमींदारों और भूमिकर के ठेकेदारों की लालच भरी नजरें चैन की साँस नहीं लेने देती थीं। अन्य कठिनाइयाँ सेनाओं के कूच करने और विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा किए गए विनाश ने बढ़ा दी थीं। मुगल साम्राज्य की अवनति के कारण कानून और नियमों का पालन नहीं होता था। न ही व्यापार और उद्योग अच्छी तरह चल रहे थे। अठारहवीं सदी के अन्त तक शहरी केन्द्रों में सुनसान छाया था। कवि नजीर आगरा के विषय में लिखता है कि वहाँ बेकारी के कारण गरीबी फैल गयी थी। गरीबों की झोपड़ियों पर छतें नहीं थीं। प्रजा का सब कुछ नष्ट हो गया था। हुनर और शिल्प की कुशलता के होते हुए भी वे बेकार थे।

लाहौर, दिल्ली, आगरा, मथुरा और दक्षिण का विशाल क्षेत्र युद्धों, आक्रमणों और अन्य विपत्तियों के कारण घोर कष्टों का सामना कर चुका था। यूरोपीय व्यापारी जो भारत के तटों पर पहुँचे थे, उन्होंने इन कठिनाइयों को दूर करके लाभ पहुँचाया। उन्होंने भारतीय वस्तुएँ सोना-चाँदी देकर खरीदीं जिससे उद्योगों की उन्नति हुई। शिल्पकारों और अन्य विशेष कलाओं में निपुण कारीगरों ने मिलकर उत्तम वस्तुएँ तैयार कीं। निपुणता प्राप्त करके भारत के शिल्पकार संसार के अन्य शिल्पकारों से आगे बढ़ गए। भारत उद्योगों के संगठन और तकनीकी में पश्चिमी देशों से अधिक आधुनिक था। भारत का व्यापार बड़े सुचारु ढंग से रक्त सागर और फारस की खाड़ी के साथ हो रहा

था। भारतीय व्यापारी कन्धार, काबुल, बलख, बुखारा, काशगर, अफगानिस्तान और मध्य एशिया में जाकर रहने लगे थे। महान सम्राट पीटर का कहना था कि भारत का व्यापार संसार का व्यापार था। जो इस व्यापार पर पूरी तरह से नियंत्रण कर लेता वह योरप को भी अपने अधीन कर सकता था। मलाया, चीन, हिन्द चीन, जापान और बर्मा आदि में भी भारतीय व्यापार की वस्तुएँ पहुँचती थीं।

भारतीय गाँव आर्थिक नीति से स्वयं-निर्भर थे। उपज का बचा भाग भूमिकर के रूप में राजा के पास चला जाता था। किसानों के पास उद्योगों में बनी वस्तुएँ खरीदने के लिए धन न बचता था। गाँवों और शहरों में आपस में क्रय-विक्रय बहुत कम था। योरप की मध्य श्रेणी व्यापार, व्यवसाय और बैंकों की उन्नति के कारण दृढ़ हो गई थी। भारत की मध्य श्रेणी धन की कमी, जाति-पांति के कठोर बन्धन और शहरों और गाँवों के मध्य व्यापार न होने के कारण योरप की मध्य श्रेणी जैसी न बन सकी।

भारतीय नाव-व्यापार के समुदाय में सौदागर, बैंकर और कर्ज देने वाले धनी व्यक्ति थे। वे राजवंश के लोगों को अपनी पूँजी से ऋण देते थे परन्तु उनमें उन्नति करने की आकांक्षा न थी। पायार्ड ने भारतीय उद्योगों और संस्कृति की महत्ता की प्रशंसा की है। बन्दरगाहों में सौदागरों के जहाज और किश्तियाँ भारत में बनती थीं। इनका निर्माण ढाका, इलाहाबाद, लाहौर, थाटा, मछलीपट्टनम, कालीकट, सूरत, गोवा तथा बसीन में होता था। इनका स्तर योरप के देशों से ऊँचा था। भारत के पास अपनी बनाई हुई स्वयं-निर्भर औद्योगिक और कृषि संबंधी मशीनें थीं। बाहर से वे कच्चा रेशम, हाथी दाँत, मोती और कछुए की खाल मँगवाते थे। भारतीय उद्योग अपनी आवश्यकता पूरी करने के साथ-साथ अपना माल बाहर भी भेजते थे। भारत कीमती वस्तुओं का संग्रह करता था। वैन ट्विस्ट का कहना है कि भारत में सोने और चाँदी की खानें नहीं थीं इसलिए धातुएँ बाहर से आती थीं।

भारत अपने सूती कपड़े की उत्तमता के लिए शताब्दियों से प्रसिद्ध था। प्राचीनकाल से भारतीय वस्त्रों की खपत रोम में होती थी। भारत की समृद्धि उसके रेशम और सूत के भण्डारों से थी। उनकी प्रसिद्धि का कारण कारीगरों की सूक्ष्मता तथा निपुणता थी। मुख्यतः नील निर्यात होने वाली वस्तुओं में था। लोहा और इस्पात मछलीपट्टनम से बाहर भेजा जाता था। कोरोमण्डल के तट से सूती कपड़ा बाहर भेजा जाता था। गुजरात के बन्दरगाह से कीमती पत्थर, दवाइयाँ, संगमरमर, अफीम तथा हींग मँगवाई जाती थी। देश के व्यापार और उद्योगों के लिए भारतीय व्यापारी धन लेते थे। वे अन्य सभी प्रकार के प्रबन्ध करते थे।

देश में व्यापारिक मार्गों पर स्थित नगरों और शहरों से व्यापार होता था। पंजाब में मुल्तान, उत्तर-पश्चिम भाग में तीन प्रसिद्ध नगर, सिन्ध में बक्खर, सक्खर तथा रोहड़ी थे। वहाँ खतरी, लोहान और भाटिया सम्प्रदाय बड़े धनी व्यापारी थे। लाहौर, दिल्ली और आगरा व्यापार के मुख्य केन्द्र थे। बंगाल में मालदा, रंगपुर और कासिम बाजार व्यापारिक केन्द्र थे। राजस्थान में प्राचीन नगरें अजमेर, जोधपुर, पाल, जैसलमेर आदि में व्यापार होता था।

1595 से 1792 तक 24 बार अकाल और सूखा पड़ा। देश के एक भाग में अकाल और दूसरे में उनकी अधिकता होती थी। उस समय यातायात के साधन अच्छे नहीं थे। बंगाल में उत्तरी भारत की तुलना में अनाज सस्ता था। गुजरात में अनाज महँगा था। प्रतिदिन प्रयोग की चीजें सस्ती थीं। चीजों की कीमतों का ऊपर-नीचे जाना क्षेत्र और ऋतुओं पर निर्भर था। कृषि से उत्पन्न वस्तुओं को इधर-उधर ले जाने के लिए भारी और महँगी गाड़ियाँ थीं।

प्रत्येक गाँव और क्षेत्र खाने की सामग्री के लिए स्वावलम्बी होना चाहता था। कठिनाई के समय किसान अपनी सामर्थ्य से बाहर की कीमत पर ही खाने के लिए अनाज खरीद सकता था। वस्तुओं की कीमतों में बहुत उतार-चढ़ाव होता था। वेतन पाने वाले के लिए कीमतों का उतार-चढ़ाव बहुत महत्व रखता था। उस काल में वेतन पाने वाले लोग शहरों में रहते थे। मजदूरों, खेती करने वालों और कारीगरों को उपज का भाग मेहनत के लिए दिया जाता था। शहरों में साधारण और कुशल मजदूरों को वेतन मिलता था।

## 2.6 आधुनिक भारत का इतिहास

व्यापार में अत्यधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने शिल्पकारों के साथ सीधे संबंध स्थापित किए। उन्होंने एकाधिकार वाली वस्तुओं के दाम अपने निर्णय के अनुसार निश्चित किए। जुलाहों को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ समझौता करने की आज्ञा दी गई। अस्वीकार करने पर उन्हें सजा, जुर्माना, कैद, कोड़ों की मार सहनी पड़ती थी। कम्पनी के उच्च अधिकारी निजी व्यापार से बहुत धन कमा रहे थे। यह धन वे अत्याचार और क्रूरता से कमाते थे। कम्पनी के डायरेक्टर भी इसे स्वीकार करते थे। विनसिटर्ट

लिखता है कि अंग्रेज भारतीयों को निश्चित दर पर खरीदने और बेचने के लिए बाध्य करते थे। 1757 और 1766 के बीच भारतीयों ने कम्पनी और उसके कर्मचारियों को साठ लाख पौंड भेंट के रूप में दिया।

व्यापार के एकाधिकार, राजनीतिक भ्रष्टाचार और ऊँची भूमि कर की दर से धन वसूल करके कम्पनी अपनी सरकार को बहुत बड़ी रकम भेजती थी। सर जोन शोर ने 1797 में लिखा था कि कम्पनी राज्य और व्यापार दोनों करती थी। व्यापार से धन कमाने के साथ-साथ वे कर भी वसूल करते थे। इस धन से वे वस्तुएँ खरीद कर योरप भेजते थे, उपनिवेश दूर स्थित होने के कारण यह प्रबन्ध ठीक नहीं हो रहा था। देशवासी मेहनत करके अधिक धन कमाते थे क्योंकि उन्हें अधिक माँग की जरूरत को पूरा करना था। 1790 में कार्नवालिस ने लिखा था कि कर की ऊँची दर के अनुसार बहुत-सा धन वसूल करके बाहर भेजा जाता था। कम्पनी का व्यापार और निजी सम्पत्ति से लाभ, कृषि की अवनति और साधारणतः व्यापार की हानि से देश में सब तरफ दशा बिगड़ गई थी।

**बोध प्रश्न**

1. 18वीं सदी की आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए?

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

2. 18वीं सदी की पारिवारिक दशा का वर्णन कीजिए?

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

## 2.7 सामाजिक दशा (Social Condition)

अठारहवीं शताब्दी में उन्नति रुक गई थी। देश के विभिन्न भागों में समाज और संस्कृति का रूप एक न था। लोग धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के आधार पर बँटे हुए थे। ऊँच और नीच श्रेणी के लोगों के जीवन में बहुत अन्तर था। साधारण जनता को जीने के आवश्यक साधन भी नहीं मिलते थे, जबकि ऊँची श्रेणी के लोगों के पास देश की सारी पूँजी होती थी। जनता विवाह, उत्सव, जश्न और परिवार में अन्य समारोह मनाने में इतनी मग्न थी कि उनका ध्यान समाज को फिर ऊँचा उठाने की तरफ नहीं था। अठारहवीं सदी का समाज दो भागों में बँटा हुआ था। पहले भाग में अधिकारी शक्ति और पद के अनुसार स्थान पाते थे। दूसरे भाग में धर्म और पुराने रिवाजों के अनुसार समाज का बँटवारा होता था। पहला दोषों भरा समाज राजनीतिक दशा का प्रभाव था। दूसरा समाज हिन्दुओं में जातियों और उपजातियों का बुरा परिणाम था।

**चार जातियाँ** (Four Castes) - हिन्दू समाज चार जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में बँटा हुआ था। ब्राह्मण पुजारी, पुरोहित, धर्म-प्रचारक और गुरु के उत्तरदायित्व को निभाते थे। क्राफर्ड का मत है कि पुरानी साहित्यिक पुस्तकों का भंडार केवल ब्राह्मणों के अधिकार में होता था। वे युवकों को शिक्षा देते थे। शिक्षित और अशिक्षित सभी अन्धविश्वासी थे। ब्राह्मण इस स्थिति से लाभ उठाते थे। राजा, मंत्री और सैनिक साधारणतः क्षत्रिय होते थे। यह उनका पैतृक व्यवसाय था। नागरीदास कवि ने अपनी कविता में लिखा है कि क्षत्रिय लालची और स्वार्थी थे। उन्होंने भलाई और परोपकारी कार्य करने छोड़ दिये थे। उनकी शक्ति गरीब परन्तु सुन्दर स्त्रियों का अपहरण करने में लगती थी। वैश्य लोग दो व्यवसायों में बँटे थे, एक व्यापार और दूसरा कृषि। वैश्यों के जीवन का एकमात्र ध्येय अपने धन को ऋण पर देकर उसके सूद से अपने जीवन का निर्वाह करना था। बनियों को धन से अत्यधिक लगाव होने के कारण समाज की नजरों में उनको आदर नहीं मिलता था। शूद्रों की संख्या बहुत अधिक थी। उन्हें तीनों जातियों की सेवा करने का भार सौंपा गया था। इन चार जातियों से भी नीचे शिल्पकारों के आठ संघ अंत्यज थे। हादी, डोम और चण्डाल सबसे नीचे माने जाते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातियों

और उपजातियों में बँटे हुए थे। वे केवल अपने ही समुदाय में मिल-जुलकर खाते थे। मनुष्य की सामाजिक स्थिति शादी द्वारा सम्बन्ध, खान-पान तथा व्यवसाय पर निर्भर होती थी। रीति-रिवाजों को तोड़ने वाले का बहिष्कार किया जाता था। पंचायत उसे क्षमा माँगने पर वापस ले लेती थी।

**व्यवसाय** (Occupations) - जातियाँ व्यवसायों के आधार पर बनीं थीं। सामाजिक बंधनों के होते हुए भी ऊँच-नीच श्रेणी के लोगों तथा शिल्पकार और उत्तम श्रेणी के लोगों का एक दूसरे के साथ संबंध रहता था। हाथी दाँत का काम करने वाला, नाई, जुलाहा, रंगराज, माली, कुम्हार आदि सब अपने काम के लिए वेतन पाते थे। उन्हें निश्चित अनाज भी मिल जाता था और धन, वस्त्र भी परिवार में उत्सवों के समय दिए जाते थे। व्यापार, कृषि और सैनिक सेवा के रास्ते सबके लिए खुले थे। जाति के प्रधान और पंचायतें जुर्मानों, प्रायश्चित और बहिष्कार द्वारा नियमों का पालन करवाते थे। जातियाँ समाज में विभाजन और विघटन का कारण बनीं। इससे कई बार एक गाँव में रहने वाले हिन्दुओं में भी फूट पड़ जाती थी, किन्तु होलकर के वंश की भाँति यदि कोई जाति उच्च पद और शक्ति प्राप्त कर ले तो समाज में उसे ऊँचा स्थान पाने का अधिकार मिल जाता था। कई बार सारी जाति ही ऊँचा स्थान पाने में सफल हो जाती थी।

**परिवार** (Family) - परिवार पिता पर निर्भर होता था। उत्तराधिकार भी पिता से होता था। केरल में माँ से उत्तराधिकार निश्चित होता था। केरल के बाहर स्त्रियों को केवल माँ और पत्नी के रूप में स्थान मिलता था। उनकी व्यक्तिगत योग्यताओं का कोई सम्मान न था। भारतीय महिला का आदर पुत्र की माता बनने पर था। घर की विशेष समस्याओं में माता का ही अधिक प्रभाव होता था। पुत्री कहलाने के लिए तो लक्ष्मी थी, परन्तु उसके जन्म पर खुशी नहीं मनाई जाती थी। भाई और पिता की सम्पत्ति में उसका कोई भाग न था। अधिक पुत्रियों के होने से उत्तरदायित्व बढ़ जाता था। राजपूतों के कुछ वंशों में कन्या को जन्म लेते ही मार देते थे। छोटी आयु में शादी उनकी रक्षा हेतु कर देते थे। 18वीं शताब्दी में अस्थिरता के कारण कन्याओं के सम्मान की रक्षा के लिए उनका विवाह छोटी आयु में कर दिया जाता था। हिन्दू और मुसलमान सभी महिलाएँ पर्दा करती थीं। साधारणतः अरक्षा और अराजकता के कारण वे शिक्षा प्राप्त न कर सकती थीं। इससे उनकी मानसिक और शारीरिक उन्नति न हो सकी। बंगाल, मध्य भारत और राजपूताना में स्त्रियों को अधिक संख्या में सती किया जाता था। दक्षिण में विशेष कर पेशवा के प्रयत्नों से सती की प्रथा कुछ कम थी।

कई अन्धविश्वासों से पूर्ण रीति-रिवाज थे। हिन्दुओं का विश्वास था कि काली माता मानव बलि माँगती है। अपने आप को नष्ट करना भी एक मानव बलि के समान माना जाता था। पश्चाताप करने के लिए भी जीवन का अन्त किया जाता था। माता-पिता अपना पहला बच्चा वर पाने के लिए गंगा मैया की गोद में अर्पण कर देते थे। स्वयं को तंग करके अच्छा फल मिल सकता है ऐसा अंधविश्वास प्रचलित था।

**मुसलमान परिवार** (Muslim Family) - अठारहवीं शताब्दी में हिन्दू और मुसलमान घरों में एक जैसे रीति-रिवाज थे। सामन्त और शासक दोनों ही एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे। अमीर और शक्तिशाली मनुष्य के जीवन के सुख और वैभव में पत्नी, दासी, गायिका और नर्तकी सभी हिस्सा बँटाती थीं। मुसलमान पुरुष और स्त्री दोनों ही समाज का भरपूर अंग माने जाते थे। विवाह सामाजिक समझौता था जिसे उत्तराधिकार के समय कानूनी रूप दिया जाता था। मुस्लिम परिवार में पिता मुखिया अवश्य होता था परन्तु माता को भी उतना ही महत्व मिलता था। शादी के लिए स्वीकृति देना महिला की निजी इच्छा थी। हिन्दू धर्म के प्रभाव से तलाक लेना अच्छा नहीं समझा जाता था। अपमान के भय से तलाक के लिए जोर नहीं डाला जाता था। सम्मानित परिवार घरेलू झगड़ों और भेदभाव को भूल जाते थे।

मुसलमान महिलाओं को अलग रखने के लिए घर को दो भागों, जनाना और मरदाना में बाँटा जाता था। स्त्रियों को घर के सबसे अन्दर के भाग में रखना सम्मान का विषय माना जाता था। यह परम्परा हिन्दू और मुस्लिम उच्च घरों तक ही सीमित थी। गरीब घरों की औरतों को काम-काज करने के लिए सर्वसाधारण में निकलना पड़ता था। वे देहातों में खेती करती थीं और उपज मंडियों तक पहुँचाती थीं। शहरों में रहने वाली स्त्री घर का काम-धन्धा निपटाकर व्यवसाय में पति का हाथ बँटाती थी। मुसलमानों में अविवाहित रहना कोई दोष नहीं समझा जाता था। केवल राजपरिवार की शहजादियों और सूफी सन्तों को छोड़कर अन्य सबके लिए विवाह का उत्तरदायित्व निभाना जरूरी माना जाता था। पुराने विचारों के लोग शिया और सुन्नी मुसलमानों में विवाह की आज्ञा नहीं देते थे।

हिन्दू धर्म के प्रभाव के कारण मुसलमान भी छोटी आयु में विवाह करने लगे थे। मनुक्की का कहना है कि उनमें विवाह से पहले दुल्हन देखने की रीति न थी। शादी से पहले मेहर निश्चित होती थी। अठारहवीं शताब्दी

में यह केवल एक दिखावा रह गई थी। इनके अदा करने का कोई निश्चित समय न था। यह माफ भी कर दी जाती थी। सामाजिक विवाह स्त्रियों की मध्यस्थत्ता से होते थे। हिन्दुओं की भाँति मुसलमान भी सगाई की रस्म अदा करते थे, जबकि उनका धर्म इसकी आज्ञा नहीं देता था। कभी-कभी भिन्न-भिन्न धर्मों के लोगों में भी विवाह होते थे। अम्बर के राजा अजीतसिंह की बेटी का विवाह फरुखसियर के साथ हुआ था।

NOTES

**शिक्षा -** हिन्दू और मुसलमान दोनों की शिक्षा की प्रणाली प्रगतिशील नहीं थी। इसलिए वे शिक्षा में पीछे रह गए थे। पश्चिम के देश विज्ञान में कितना विकास कर चुके थे उन्हें जानकारी न थी। उन्हें यह भी ज्ञान न था कि देखभाल, प्रयोग और समीक्षा के नये सिद्धांत क्या हैं। पूर्वी और पश्चिमी तट पर यूरोपीय जातियों ने जहाजों को ठहराने और व्यापार करने के लिए केन्द्र बना लिए थे। परन्तु गुजरात, कोंकण, केरल और कोरोमण्डल, उड़ीसा और बंगाल के निवासियों पर इन जातियों की बुद्धि और ज्ञान का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भारतीय राजकुमारों और सामन्तों ने यूरोपीय लोगों के जानवरों, खिलौनों, पत्नियों और मद्य में कुछ रुचि ली, परन्तु उनकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति से कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं की।

हिन्दुओं के स्कूल विभागों में बँटे हुए थे। एक विभाग प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध करता था। व्यवसाय और खेती बाड़ी करने वालों के हित का ध्यान रखकर स्कूलों में शिक्षा दी जाती थी। अधिकांश अध्यापक लेखक श्रेणी के लिए जाते थे। मुर्शिदाबाद में 67 शिक्षकों में से 39 क्षत्रिय, 14 ब्राह्मण और 14 अन्य जातियों से थे। दक्षिणी बिहार में 285 शिक्षकों में से 278 क्षत्रिय और 7 दूसरी जातियों के थे। इनमें कोई भी ब्राह्मण नहीं था। एक स्कूल में केवल एक ही शिक्षक होता था। गणित, लिखाई और पढ़ाई की प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के लिए बच्चों को पाँच से दस साल का समय लगता था। पत्र लिखाना और व्यावसायिक कार्यों के लिए अर्जी लिखना और किराया-नामा इत्यादि बनाना स्कूलों में सिखाया जाता था। गणित में कृषि और व्यवसाय उपयोगी हिसाब-किताब की शिक्षा दी जाती थी। गुणा, बाँटे और माप की जानकारी प्राप्त करने पर जोर दिया जाता था। शिक्षा का उद्देश्य लाभ प्राप्त करने के लिए सीमित था।

उच्च शिक्षा के स्कूलों की स्थिति इससे भी खराब थी। इनमें शिष्य और शिक्षक दोनों ब्राह्मण थे। शिक्षा मुख्यतः धार्मिक थी। मुख्य विषय व्याकरण, साम्य-साहित्य, कानून और दर्शन थे। अधिकांश स्कूल शिक्षकों के निवासस्थान पर होते थे। शिक्षा का काल 2 से 12 और कहीं 22 वर्ष तक भी होता था। शिक्षा ऊँची जातियों के लोगों के लिए थी। साधारण जनता की आवश्यकता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता था। शिक्षा का माध्यम फारसी भाषा थी। उर्दू व किसी भारतीय बोलचाल की भाषा का प्रयोग नहीं होता था। मुसलमान जनता अज्ञान में डूबी हुई थी।

मुसलमानों की शिक्षा तीन प्रकार की थी। एक तो कुरानशरीफ को अर्थ समझे बिना याद करना। दूसरा फारसी भाषा में साहित्य, व्याकरण और गणित की शिक्षा थी। फिरदौसी, सादी, हफीज, उर्फी, जमी और खकनी आदि की कविताएँ पढ़ाई जाती थीं। गद्य में गुलिस्तान, वाकई निमत खाँ अली और बहार-ए-दानिश के लेख इत्यादि पढ़ाये जाते थे।

संस्कृत भाषा के केन्द्रों को बंगाल और बिहार में तोल अथवा चतुशपथी कहते थे। इस विद्या के केन्द्र नादिया, कस, तिरहुत तथा उत्कल थे। फारसी और अरबी के केन्द्र मदरसे कहलाते थे। फारसी राजकीय भाषा थी। इसका केन्द्र पटना था। प्राथमिक शिक्षा के स्कूलों को पाठशाला और मकतब कहते थे। इनका मन्दिर और मस्जिद से कोई सम्बन्ध न था। लिखाई, पढ़ाई और गणित पर जोर दिया जाता था। पढ़ाई के विषय आध्यात्मिक शिक्षा, सच्चाई, ईमानदारी तथा आज्ञापालन भी थे। उच्च वंशों को पढ़ाई का शौक था। स्त्रियों की शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया था।

**साहित्य** (Literature) - अठारहवीं शताब्दी में सभाओं के माध्यम से उर्दू का प्रचार भारत के सभी भागों में हो गया। उत्तरी भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में हिन्दू और मुसलमानों की सभ्य सभाओं में उर्दू बोली जाती थी। साहित्य का स्तर बहुत ऊँचा न था। कविता भावनाओं और आध्यात्मिक शिक्षा के बीच में रह जाती थी। निराशा और उदासीनता का वातावरण दिखाई देता था। कवि गुणों में श्रेष्ठ थे। वे आवेशों की पूर्ति के लिए साहित्य के श्रेष्ठ उद्देश्य और जीवन की यथार्थता को नहीं भूलते थे। भाषाओं, जातियों और व्यवस्था की भिन्नता के होते हुए भी सारा देश संस्कृति की एकता में बँधा हुआ था। वारिस शाह ने पंजाबी में 'हीर रांझा' काव्य लिखा। यह सिंधी भाषा का गौरव काल था। शाह अब्दुल लतीफ, सचल तथा सभी सिंधी भाषा के महान कवि थे। दयाराम गुजराती भाषा के कवि थे।

डॉ. वरदराजन ने तमिल साहित्य के विषय में लिखा है कि उस समय का साहित्य व्याकरण की विशेषताओं से भरा हुआ था। पहले समय के साहित्य के गुण सादगी और संयम नये साहित्य में नहीं थे। इस काल के अधिकांश कवि कहानी और उसका वर्णन दोनों में नकल करते और उसे दोहराते थे। कविता आधुनिक बन गई थी। वाक्यों, शब्दों आदि के हेर-फेर करने की कुशलता से कवि की रचना का निर्णय किया जाता था। बहुत कम ऐसे कवि मिलते थे जो अपनी योग्यता से मौलिक रचनाएँ लिखते थे।

उस काल में अनेक ऐसे विद्वान हुए जिन्हें भाषा की शैली और वर्णन पर उच्च कोटि का नियंत्रण था। उन्होंने भाषा को सुधारा, विकास किया और भविष्य की आवश्यकताओं के लिए तैयार किया। ईसाई पादरियों ने 18वीं सदी में भारत में छापाखाना लगाकर क्षेत्रीय भाषाओं में बाईबल छापी। जेगनबैलग एक डच प्रचारक ने तमिल भाषा की व्याकरण लिखी। उसने तमिल में बाईबल का अनुवाद किया। केरी, वार्ड तथा मार्शमन बैप्टिस्ट सुधारकों ने सीरमपुर में छापाखाना लगाकर बंगला भाषा में बाईबल छापी।

**कला** (Art) - दिल्ली में आश्रय न मिलने के कारण कलाकार हैदराबाद, लखनऊ, मुर्शिदाबाद तथा जयपुर चले गए। 1784 में आसफ-उद-दौला ने इमामबाड़ा बनवाया। पर्सी ब्रॉउन का मत है कि इस इमारत में ऊपर की दिखावट है। इसमें आध्यात्मिक खूबियाँ नहीं हैं। बहुत से मुगल कलाकारों ने कश्मीर, लखनऊ, हैदराबाद और पटना जाकर उन्नति की। चित्रकारी की नई शैलियों ने प्रसिद्धि पाई। कांगड़ा और राजपूत चित्रकारी में नई विशेषताएँ थीं। मुहम्मद शाह के शासनकाल में गायन विद्या का प्रचार हुआ।

**विज्ञान** (Science) - 18वीं शताब्दी में भारत तकनीकी और विज्ञान में पश्चिमी देशों से बहुत पीछे रह गया। शासकों ने केवल युद्ध की तकनीकी में रुचि ली। इस असावधानी के लिए देश को बहुत हानि हुई।

**धार्मिक स्थिति** (Religious Condition) - हिन्दुओं के तीन प्रसिद्ध देवता थे- ब्रह्मा, विष्णु और महेश। इन्हें उत्पत्ति, शक्ति और संहार का रूप दिया जाता था। ब्रह्मा की किसी देवता से श्राप मिलने के कारण साधारणतः पूजा नहीं होती थी। हिन्दू धर्म के लोग शिव और विष्णु की उनकी पत्नियों (पार्वती और लक्ष्मी) सहित पूजा करते थे। उनमें श्रद्धा रखने वालों के तीन समुदाय शैव, वैष्णव और शाक्त थे। ये तीनों ही हिन्दू धर्म के अन्तर्गत थे। अधिकांश साधारण लोग शिव की पूजा करते थे। शिव का रूप तांडव था। उसे प्रेम और श्रद्धा नहीं भाती थी। वह दानी भी नहीं माना जाता था। असावधानी करने पर शिव की तीसरी आँख खुल जाती थी और अग्नि वर्षा करती थी। घूमार, शिल्पकार, शिकारी, बढ़ई, लोहार और धोबी सब उसके भक्त होते थे। युद्ध का नारा हर-हर महादेव होता था। वह महान् शक्ति का देने वाला था। आम विश्वास था कि वह ऊँचे पहाड़ों, सुनसान स्थानों और घने जंगलों में रहने वाला था। राजपूत अधिकतर शिव के भक्त थे। गुजरात और बुंदेलखंड में भी राजपूतों ने शिव के मन्दिर बनवाये।

हिन्दुओं में एक अन्य समुदाय शाक्त था। यह विश्वास था कि देवता ने अपना कठिन प्रशासकीय कार्य अपनी अर्धांगिनी को सौंप रखा था। एक महान देवी, महादेवी की असंख्य नामों और रूपों में पूजा की जाती थी। उत्तरी भारत में देवी की अनेक रूपों में पूजा होती थी। वाममार्ग को मानने वाले शराब, माँस, मद्य और शरीर के अनेक रूपों में प्रदर्शन में विश्वास करते थे।

उत्तरी भारत में देवियों की पूजा महा माता के रूप में की जाती थी। गौरी माता बहुत दयालु और वरदान देने वाली थी। युवतियाँ उसकी पूजा योग्य पति और सन्तुष्ट जीवन पाने के लिए करती थीं। राजपूत लोग शक्ति, दुर्गा, भवानी से साहस और बल पाते थे। अधिकतर शिव की पूजा होती थी। उनकी देवी माता के नाम महामाया, कालीमाता, चमुण्डा तथा शीतला था। सूर्य, गणेश अथवा गणपति की पूजा होती थी। गणेश को शुभ भाग्य का देवता मानते थे। पाँच भक्तिपूर्ण पूजाओं को मिलाकर पंचायत पूजा कहते थे।

अठारहवीं सदी में सूर्य, जो सर्वशक्तिमान और अपार सुख देने वाला था, उनकी पूजा हिन्दू करते थे। वे प्रातः सूर्य को अर्घ्य देते थे। सूर्य ग्रहण के समय उसे मुक्त कराने के लिए प्रार्थना करते थे। गायत्री मन्त्र सूर्य के प्रकाश को पाने के लिए श्रद्धापूर्वक पढ़ा जाता था। प्रकृति की भी पूजा होती थी। कृषक और जंगलों में रहने वाले लोग बुरे मौसम की मुसीबतें, गर्मी, सर्दी, वर्षा और अकाल की यातनाएँ सहते थे। गंगा और यमुना की पूजा भी महान माता की तरह होती थी। उनके दोनों किनारों पर पवित्र नगर बसे थे। पीपल और तुलसी के पेड़ों को पवित्र माना जाता था।

**समुदाय** (Sects) - शैव और वैष्णव समुदायों में भिन्न-भिन्न लोगों को संगठित किया गया था। इसका उद्देश्य एक व्यक्ति को केवल शिव या विष्णु की आराधना में लगाना था। जोगियों का एक प्रसिद्ध समुदाय था।

NOTES

वे वेदान्त की शिक्षा देते थे। वे सादे जीवन और कठोर तपस्या में विश्वास करते थे। उनकी एक शाखा कनफटा की थी। जोगियों की अन्य शाखाएँ मुँडिया थी जिनके सिर के बाल पूरी तरह साफ होते थे। गोसाईं, संन्यासी तथा डन्डी भी कुछ शाखाएँ थीं।

**गरीबदास** (1717-1778) एक जाट था जो गृहस्थ साधु था। केशवदास भी इसकी शाखा का था। रामचरण ने रामस्नेहियों का समुदाय बनाया। इसमें केवल साधु ही थे। 1734 में शिवनारायण ने शिवनारायणी के समुदाय की स्थापना की थी। अठारहवीं शताब्दी के मुसलमानों को प्रभावित करने वाले तीन कारण थे। पहला साम्राज्य का पतन, दूसरा वाहदत-उल-वजह के सिद्धान्त और तीसरा हिन्दू धर्म। मुसलमानों का राज्य इस्लामी था और शरियत का पालन करना उनका कर्त्तव्य था। वास्तव में वे इस समय शरियत को नहीं मानते थे।

ज्योतिष में भी लोगों का विश्वास था। यात्रा पर जाने से पहले और नए वस्त्र पहनने के लिए ज्योतिषियों से पूछा जाता था। 13 नवम्बर बुरा गिना जाता था। 5 और 52 को हिन्दू उपयोगी और पवित्र मानते थे। लोगों का विश्वास था कि दान देने से बीमारियाँ और दुःख दूर हो जाते हैं। राजा की गद्दी पर बैठने और परिवार में किसी सदस्य के बीमार होने पर बन्दियों को मुक्त किया जाता था।

**व्रत** (Fast) - लम्बे समय और विभिन्न यातनाओं के साथ व्रत रखे जाते थे। निर्जल एकादशी को पानी भी नहीं पीते थे। कृष्ण के जन्म पर जन्माष्टमी का व्रत रखा जाता था। नागपंचमी को नागों के सम्मान में और शिवरात्रि को शिव की पूजा करने के लिए व्रत रखते थे। विष्णु तथा सत्यनारायण की पूजा पूर्ण चन्द्रमा के दिन होती थी। शिव की त्रिपुरासुर पर विजय को कार्तिक पूर्णिमा के दिन मनाने के लिए व्रत रखते थे।

जनता में होली, तीज, भाईदूज और रक्षा-बन्धन को त्यौहार मनाने की प्रथा थी। होली हिन्दू और मुसलमान दोनों मनाते थे। मथुरा और वृन्दावन की होली बहुत प्रसिद्ध थी। हिन्दू दशहरा और दीवाली भी मनाते थे। इस्लाम धर्म विलास के विरुद्ध था इसलिए मुसलमान बहुत कम उत्सव मनाते थे। ईद-उल-अजहा अथवा ईद-उल-कुरबान और ईद-उल-फितर मनाई जाती थी। एक महीने के व्रत के बाद ईद-उल-फितर मनाते थे। इस महीने को रमजान कहते थे। ईद तीन दिन मनाई जाती थी। नौ-रोज और मुहर्रम भी मनाए जाते थे। नौ-रोज ईरानियों का नए वर्ष का दिन होता था। उस दिन बादशाह अपने सामन्तों से भेंट लेता था। मुख्यतः शिया लोग मुहर्रम मनाते थे। शबे-बरात के दिन मुसलमान रोशनी करते और पटाखे तथा फुलझड़ियाँ चलाते थे।

## 2.7 सारांश

इस प्रकार अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि समाज की स्थिति सामान्यतः अनुकूल ही थी, परंतु जैसे-जैसे अंग्रेजों का साम्राज्य दृढ़ होता गया वैसे-वैसे भारत की स्थिति बिगड़ती चली गयी।

## 2.9 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. 18वीं शताब्दी के मध्य में ग्रामीण अर्थव्यवस्था की स्थिति का वर्णन कीजिए।
2. 18वीं शताब्दी के मध्य भारत की आर्थिक स्थिति का वर्णन कीजिए।
3. 18वीं शताब्दी के मध्य भारत की सामाजिक दशा का उल्लेख कीजिए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. 18वीं शताब्दी के मध्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
2. 18वीं शताब्दी के मध्य की शहरी अर्थव्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
3. स्वदेशी बैंक व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?
4. 18वीं शताब्दी में आर्थिक स्थिति किस प्रकार थी।
5. 18वीं शताब्दी के मध्य की सामाजिक दशा की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

NOTES

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. भारत में अंग्रेजों का आगमन हुआ-
   (A) 1600 से (B) 1900 से (C) 1800 से (D) 1700 से।
2. 18वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय उद्योग-धंधे -
   (A) पिछड़ी अवस्था में थे (B) उन्नत थे
   (C) वितरित थे (D) इनमें से कोई नहीं।
3. सर्वप्रथम कोलकाता में 'बैंक ऑफ बंगाल' कब स्थापित हुई -
   (A) 1850 में (B) 1840 में (C) 1806 में (D) 1870 में।
4. 18वीं शताब्दी की आयातित वस्तुएँ हैं-
   (A) सोना (B) कहवा (C) शहद (D) उपरोक्त सभी।
5. 18वीं शताब्दी की निर्यातित वस्तुएँ हैं-
   (A) सूती वस्त्र (B) ऊनी कपड़े (C) रेशम (D) उपरोक्त सभी।
6. 18वीं शताब्दी में भारतीय समाज चार जातियों में विभाजित था -
   (A) ब्राह्मण (B) क्षत्रिय (C) वैश्य और शूद्र (D) उपरोक्त सभी।

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (C), 4. (D), 5. (D), 6. (D)

## 2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

# अध्याय-3 ब्रिटिशों की साम्राज्यवादी नीति व बंगाल में प्रभुत्व

## (EXPANSION POLICY OF BRITISHERS AND BRITISH SUPREMACY IN BENGAL)

**इकाई की रूपरेखा**

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 विदेशी साम्राज्य की विस्तार नीति
3.3 बंगाल की राजनीतिक स्थिति
3.4 बंगाल में अंग्रेजों का आगमन
3.5 सिराज-उद्-दौला और अंग्रेज
3.6 क्लाइव का दूसरी बार गर्वनर के रूप में बंगाल में आना (1765-97)
3.7 बंगाल में दोहरी शासन व्यवस्था
3.8 नंदलाल चटर्जी के अनुसार
3.9 सारांश
3.10 अभ्सास प्रश्न
3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. ब्रिटिशों की साम्राज्यवादी नीति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. बंगाल की राजनीतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. बंगाल में दोहरी शासन व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 3.1 प्रस्तावना

15वीं शताब्दी के बाद भारत में विदेशियों (यूरोपियनों) का आगमन शुरू हुआ। 16वीं शताब्दी के बाद ब्रिटिश, फ्रांसीसी, डच एवं पुर्तगाली भारत पहुँचे, जिसमें से केवल ब्रिटिश ही भारत में अपनी जड़ों को मजबूत कर पाए। 1757 में प्लासी के युद्ध से ब्रिटिशों ने भारत में साम्राज्यवादी नीति का श्रीगणेश कर भारत में अपनी जड़ें मजबूत करना शुरू कर दीं।

## 3.2 ब्रिटिशों की साम्राज्य विस्तार नीति (1600-1756)

ब्रिटिश प्राचीन समय से ही साम्राज्यवादी नीति के समर्थक रहे। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए सितम्बर 1599 में लॉर्ड मेयर की अध्यक्षता में एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, जिसमें भारत के साथ सीधे व्यापार करने के लिए एक संस्था बनाने का निश्चय किया गया। 31 दिसम्बर, 1600 को महारानी एलिजाबेथ ने पूर्वी प्रदेशों के साथ व्यापार करने वाले लन्दन के व्यापारियों की कम्पनी तथा उनके गवर्नर को एक अधिकार-पत्र प्रदान किया।

इस अधिकार-पत्र के कारण लन्दन कम्पनी को व्यापार का अबाध प्राधिकार मिला कि वे पूर्वी प्रदेशों तथा एशिया व अफ्रीका के भागों में तथा उनके साथ एशिया, अफ्रीका, अमेरिका के किसी भी द्वीप, बन्दरगाह, शरण-स्थान, खाड़ी, नगर, कस्बों व स्थानों तथा अन्तरीय बोना एस्प्रैंजा से मिगेलन की सीमाओं से पार के प्रदेशों में तथा उनके साथ व्यापार कर सकते हैं। आरम्भ में लन्दन कम्पनी ने अलग-अलग यात्राएँ संगठित कीं। वास्तव में जो कार्य किया गया वह यह था कि बहुत से लोगों ने यात्रा के लिए धन संग्रह किया तथा सफलता से जो लाभ हुआ वह आपस में बाँट दिया गया। चन्दा देने वालों की कमी न थी क्योंकि कम्पनी को प्राप्त लाभ अत्यधिक थे। कुछ अवस्थाओं में तो यह लाभ 500% तथा 600% था। 1612 में कप्तान बैस्ट ने सूरत के समीप स्वाली पुर्तगाली नौका समुदाय (जहाजी बेड़ों) को पराजित किया। इस विजय का यह परिणाम निकला कि पुर्तगाली प्रभाव कम हो गया तथा अंग्रेज कम्पनी को सूरत में कारखाना खोलने की अनुमति प्राप्त हो गई। 1615 में सर टामस रो को इंग्लैंड के सम्राट जेम्स प्रथम की ओर से जहाँगीर के दरबार में भेजा गया। उसे मुगल सम्राट की ओर से अंग्रेजी कम्पनी के लिए कुछ व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त हो गईं। 1622 में ईरान नरेश की सहायता से अंग्रेजों ने पुर्तगालियों के आर्मूज पर कब्जा कर लिया। अंग्रेजों ने आराम गाँव तथा मसूलीपट्टम में अपने व्यापार केन्द्र स्थापित किए। 1640 में अंग्रेजों ने मद्रास में एक जगह खरीदी। उन्हें फोर्ट सेंट जॉर्ज नामक स्थान पर रक्षित कारखाने खोलने की अनुमति भी प्राप्त हो गई। 1633 में बालासोर तथा हरिहरपोर में कारखाने स्थापित किए गए। 1651 में हुगली में एक कारखाना स्थापित किया गया। 1661 में लन्दन कम्पनी को चार्ल्स द्वितीय द्वारा नाममात्र 10 पौण्ड वार्षिक किराए पर बम्बई (मुम्बई) का द्वीप प्राप्त हो गया।

1714 में कोलकाता, चेन्नई तथा मुम्बई प्रेजिडेन्सियों की ओर से जॉन सरमन के नेतृत्व में सम्राट फर्रुखसियर के दरबार में एक संयुक्त प्रतिनिधिमण्डल भेजा गया। विलियम हैमिल्टन की सहायता से, जिसने सम्राट को एक रोग से अच्छा किया था, सरमन जुलाई 1717 में तीन फरमान प्राप्त करने में सफल हो गया। इन राजाज्ञों से 3000 रुपये वार्षिक के बदले कम्पनी ने बंगाल में बिना किसी कर के व्यापार करने के अधिकार को दृढ़ कर दिया गया। अंग्रेज कम्पनी को इच्छानुसार कोठियाँ बनाने तथा कोलकाता के आस-पास अतिरिक्त प्रदेशों को किराए पर लेने की अनुमति मिल गई। केवल मद्रास के लिए कम्पनी को कुछ किराया देना होता था। गुजरात प्रान्त में सूरत के स्थान पर सब प्रकार के करों के सम्बन्ध में कम्पनी को 10,000 रुपया वार्षिक देने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। अंग्रेजी कम्पनी द्वारा मुम्बई में टंकित रुपये के सिक्कों का सारे मुगल साम्राज्य में प्रचलन हो गया। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि सरमन द्वारा प्राप्त सुविधाओं तथा रियायतों के कारण अंग्रेजी कम्पनी के प्रभुत्व तथा सम्पन्नता में वृद्धि हो गई।

लन्दन कम्पनी को इंग्लैंड में गृहयुद्ध के कारण धक्का लगा, किन्तु क्रामवैल के समय में उसे लाभ हुआ। 1623 में अम्बोयना के हत्याकाण्ड के कारण कम्पनी को 85,000 पौण्ड क्षतिपूर्ति के प्राप्त हुए। 1657 के अधिकार-पत्र के अधीन कम्पनी को ज्वाइण्ट-स्टाक की आवश्यकता हुई। हण्टर के शब्दों में, "लन्दन कम्पनी को एक मध्ययुगीन तथा दुर्बल व्यापारी संस्था के स्थान पर आधुनिक उत्साहपूर्ण तथा पथ-प्रदर्शक संयुक्त स्कंध समवाय (Joint Stock Company) का रूप मिल गया।" 1657 के अधिकार-पत्र के अनुसार कोई भी व्यक्ति कम्पनी का सदस्य बन सकता था जो 5 पौण्ड प्रवेश के रूप में तथा कम से कम 100 पौण्ड कम्पनी के स्टाक में देने के लिए प्रस्तुत हो। जो व्यक्ति 1000 पौण्ड अथवा उससे अधिक का स्टाक रखते थे, वे ही समितियों के सदस्य चुने जा सकते थे।

1661 में चार्ल्स के पुनर्स्थापन के पश्चात् चार्ल्स द्वितीय ने एक नया अधिकार-पत्र जारी किया। कम्पनी को अपने कारखानों की सुरक्षा के लिए सैनिक जहाज, सैनिक तथा गोलाबारूद भेजने का अधिकार दिया गया। वे किले भी बना सकते थे। उन्हें सेनापति तथा अफसर चुनने का भी अधिकार था तथा वे अपने अधिकार से कमीशन भी प्रदान कर सकते थे। वे किलों पर अपनी शक्ति का उपयोग कर सकते थे तथा शासन कर सकते थे। 1683 के अधिकार-पत्र ने कम्पनी को किसी भी अन्य शक्ति के साथ युद्ध अथवा शान्ति रखने के पूर्ण अधिकार प्रदान किए। कम्पनी को इस बात का भी पूर्ण अधिकार दिया गया कि वह एक दृढ़ सेना की भर्ती कर सके, उसे शस्त्रों से सुसज्जित, शिक्षित तथा पूर्णरूप से शक्तिशाली कर सके। अधिकार-पत्र द्वारा कम्पनी को इस बात का भी अधिकार दिया गया कि ऐसे न्यायालय का निर्माण किया जाए, जिसमें दीवानी कानूनों में निपुण एक व्यक्ति हो तथा कम्पनी द्वारा नियुक्त दो सहकारी शामिल हों। 1686 के अधिकार-पत्र द्वारा कम्पनी को इस बात का भी अधिकार दिया कि वह एडमिरल (Admiral) तथा अन्य समुद्री अधिकारियों को नियुक्त कर सके। कम्पनी को इस बात का सामान्य अधिकार दिया गया कि वह सिक्कों के टंकन का कार्य भी कर सकती है।

इस प्रकार धीरे-धीरे कंपनी सरकार को भारत में विविध अधिकार मिलते चले गए और सन् 1600 में आए कुछ ब्रिटिश व्यापारियों ने 1756 तक भारत में अपनी स्थिति बहुत मजबूत कर ली।

## 3.3 बंगाल की राजनीतिक स्थिति

NOTES

भारत का सबसे अधिक साधन सम्पन्न प्रदेश बंगाल था और औरंगजेब के समय तक यह मुगलों के अधीन था। बंगाल की सम्पन्नता ने अंग्रेजों को उसकी ओर आकर्षित किया। औरंगजेब के शासन काल में बंगाल, बिहार और उड़ीसा मुगल साम्राज्य के तीन अलग-अलग सूबे थे और 1705 में औरंगजेब ने मुर्शीद कुली जफर खाँ को बंगाल का सूबेदार बनाया था। उसने अपना मुख्यालय ढाका से मुर्शिदाबाद स्थानान्तरित कर लिया क्योंकि उसे ही उड़ीसा की सूबेदारी भी मिल गई थी। औरंगजेब की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारियों की दुर्बलता को देखकर मुर्शीद कुली जफर खाँ ने अपने आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया। बंगाल का नवाब जिसने स्वयं को बंगाल का स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया था, उसकी जनता में कोई खास छवि नहीं थी, क्योंकि जनता की निष्ठा मुगल सम्राट के प्रति थी न कि नवाब के प्रति।

मुर्शीद कुली खाँ की मृत्यु 1727 में हुई। उसके बाद बंगाल का नवाब उसका दामाद शुजा-उद-दीन खाँ बना। इसने बिहार को भी अपने क्षेत्र के अधीन कर लिया और 1732 में अलवर्दी खाँ को वहाँ का उपराज्यपाल (नायब नाजिम) नियुक्त किया। 1739 में शुजा की मृत्यु हो गई। उसके बाद उसका पुत्र सरफराज खाँ गद्दी पर बैठा, परन्तु अलीवर्दी खाँ ने षड्यंत्र करके 1740 में गिरिया के युद्ध में उसकी हत्या करवा दी और स्वयं बंगाल, बिहार और उड़ीसा का नवाब बन बैठा। मुगल सम्राट ने भी उसे मान्यता दे दी। अलवर्दी खाँ के कुशल प्रशासन तथा जमींदारों पर कठोर नियंत्रण करने से राज्य की हालत अच्छी हो गई। उसने अंग्रेजों से अच्छे संबंध रखे, बल्कि उसने यह प्रयत्न किया कि यूरोपियन कंपनियाँ बंगाल के व्यापार पर हावी न हो जाएँ। उसने उनको नियंत्रण में रखा, यही कारण है कि दो कर्नाटक युद्ध उसके समय में हुए, परन्तु अलवर्दी खाँ की योग्यता और कुशलनीति के कारण दोनों कंपनियों के मध्य बंगाल में युद्ध न हो सके। उसे अपने शासन के लगभग प्रत्येक वर्ष मराठों के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। अप्रैल, 1756 में अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हो गई। उसने मरने से पहले ही अपनी छोटी बेटी के पुत्र **सिराज-उद-दौला** को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। अतः वह उसके मरने के बाद बंगाल का नवाब बना, परन्तु उसकी दूसरी पुत्री के पुत्र शौकत जंग ने सिराज-उद-दौला के खिलाफ पूर्णिया में विद्रोह किया। अलीवर्दी खाँ की बड़ी बेटी **घसीटी बेगम** ने उसका समर्थन किया। इधर अंग्रेज भी सिराज-उद-दौला के सिंहासनारोहण के खिलाफ थे अतः शौकत जंग अंग्रेजों की मदद ले सकता था।

## 3.4 बंगाल में अंग्रेजों का आगमन

भारत में अंग्रेजों का आगमन एक व्यापारिक कंपनी के रूप में हुआ था और सूरत को उन्होंने अपने व्यापार का केन्द्र बनाया था। इसके बाद वे मद्रास में बसे और तत्पश्चात् उन्होंने बंगाल को अपना व्यापारिक केन्द्र बनाया। कंपनी को 1639 में मद्रास, 1651 में हुगली और 1669 में मुंबई में व्यापारिक कोठियाँ बनाने की अनुमति मिली थी। बंगाल में अपने व्यापार के विस्तार के पीछे कई कारण थे-

- अंग्रेज यह जानते थे कि मराठों का प्रभाव पश्चिम और दक्षिण में अधिक है तथा पूर्वी तट पर कम।
- दूसरा बंगाल अधिक उपजाऊ क्षेत्र था।
- तीसरा, यह कि बंगाल का सूती वस्त्र पूरे विश्व में प्रसिद्ध था।

उपर्युक्त कारणों से अंग्रेजों ने बंगाल में अपने व्यापार को फैलाने की नीति को क्रियान्वित किया। 1696 में उन्होंने 12,000 रुपये वार्षिक के भुगतान के बदले बंगाल में तीन गाँवों- सुतानट्टी, गोविन्दपुर और कौलिकोना की जमींदारी प्राप्त की। बाद में इन तीन गाँवों को मिलाकर जॉब चारनॉक ने कोलकाता नगर की स्थापना की और इस तरह 1696 में अंग्रेजों ने इन तीनों गाँवों की किलेबन्द प्रारंभ की और फोर्ट विलियम नामक किला बनाया। अब आधुनिक कोलकाता नगर का जन्म हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापार बंगाल में निरंतर विकसित हो रहा था। अतः उन्हें सरकारी सहायता और रियायतों की आवश्यकता हुई और अंग्रेजों ने 1717 में मुगल सम्राट फर्रुखसियर ने 3000 की वार्षिक चुंगी देकर एक फरमान ले लिया था। इस फरमान से कंपनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा में आयात-निर्यात कर मुक्त व्यापार करने की छूट मिल गई थी। कंपनी को अपने माल के आवागमन के लिए

दस्तक (अनुमति-पत्र) देने की भी अनुमति मिल गई थी। यह सुविधा सिर्फ कंपनी द्वारा आयात-निर्यात की जाने वाली वस्तुओं पर ही दी गई थी। इसके अलावा कंपनी के कर्मचारियों को व्यक्तिगत रूप से व्यापार करने की छूट भी मिली हुई थी, परन्तु कर्मचारियों का व्यापार फरमान के अन्तर्गत नहीं आता था। उन्हें अन्य व्यापारियों की ही तरह कर देना होता था, परन्तु कंपनी के कर्मचारी 1717 के फरमान की अपने अनुसार व्याख्या करके अपने लाभ के लिए उसका इस्तेमाल करते रहते थे। इस कारण कंपनी और बंगाल के नवाब के बीच यह फरमान हमेशा वैमनस्य का कारण बना रहता था। फरमान की गलत व्याख्या से बंगाल को राजस्व की हानि होती थी। इसके अलावा कंपनी के कर्मचारियों ने दस्तक प्रथा का करों से बचने तथा व्यक्तिगत हित में गलत उपयोग किया। मुर्शीद कुली खाँ से लेकर अलीवर्दी खाँ तक सबने फरमान की गलत व्याख्या का विरोध किया और उन्होंने कंपनी को एक निश्चित राशि शाही खजाने में देने के लिए मजबूर किया। इसके साथ ही दस्तक के दुरुपयोग को भी समाप्त करने का प्रयास किया।

अलीवर्दी खाँ बंगाल में स्वतंत्र शासक की तरह राज्य कर रहा था। वह मुगलों की अधीनता नाम मात्र के लिए मानता था। उसने 1740 से 1756 तक राज्य किया और अपने शासन के दौरान उसने यूरोपीय व्यापारियों से अपेक्षा की कि वे व्यापार के संबंध में उससे फरमान लिया करें। इसके साथ ही उसने यूरोपीय व्यापारियों पर अपना पूरा नियंत्रण बनाए रखा। उसने हमेशा यह प्रयत्न किया कि यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ बंगाल की राजनीति में हस्तक्षेप न करें और एक व्यापारी की तरह ही रहें। यद्यपि वह एक पराक्रमी सेनानायक था तथापि वह मराठों के आक्रमणों से परेशान रहता था। इसलिए उसने मराठों से एक संधि की जिसके अनुसार उसने उड़ीसा का अधिकांश भाग मराठों को दे दिया और 12 लाख रुपए प्रतिवर्ष चौथ देना भी स्वीकार किया।

उसके शासनकाल में बंगाल ने बहुत आर्थिक प्रगति की। वहाँ के व्यापार में हिन्दू व्यापारियों का बहुत बड़ा भाग था। यही कारण है कि उसके शासनकाल में कुछ बड़े व्यापारियों का सम्मान बहुत अधिक था। इनमें प्रमुख थे- राय दुर्लभ, जगत सेठ, मेहताबराय और स्वरूपचंद्र राय, राजा रामनारायण, राजा माणिकचंद आदि। जगत सेठ और राय दुर्लभ तो बैंकर के रूप में प्रतिष्ठित थे। ये हिन्दू व्यापारी जब यूरोपीय लोगों के संपर्क में आये तो इन्हें व्यापार में और अधिक लाभ हुआ। उनके शासनकाल में बंगाल से न केवल कृषि पदार्थों का बल्कि सूती और रेशमी वस्त्रों का भी काफी मात्रा में निर्यात होने लगा।

कंपनी और अलीवर्दी खाँ के आपसी संबंध अच्छे नहीं थे, इसके कारण थे-

- पहला यह कि व्यापारिक सुविधाओं को लेकर दोनों में विवाद था।
- दूसरा कंपनी की बढ़ती हुई राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं का होना। चूँकि कंपनी को कर्नाटक में हुए फ्रांसीसी कंपनी के साथ संघर्ष में जो सफलता मिली थी उससे उसकी बंगाल में भी राजनीतिक महत्वाकांक्षाएँ उभरने लगीं थीं।
- तीसरा यह कि अलीवर्दी खाँ ने इनके राजनीतिक विस्तार को रोकने के लिए इन्हें बंगाल में किलेबंदी करने की अनुमति नहीं दी थी।

10 अप्रैल, 1756 में अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हो गई। उसके कोई पुत्र नहीं था, तीन पुत्रियाँ थीं। अलीवर्दी खाँ अपने बाद होने वाले सत्ता संघर्ष से परिचित था। अतः उसने मरने से पहले ही अपनी सबसे छोटी पुत्री के पुत्र सिराजउद्दौला को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। इस कारण उसके मरने के बाद कोई सत्ता संघर्ष नहीं हुआ और सिराज को आसानी से बंगाल का सिंहासन मिल गया।

**बोध प्रश्न**

1. बंगाल की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए?

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

2. बंगाल में अंग्रेजों के आगमन का वर्णन कीजिए?

.......................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

NOTES

## 3.5 सिराज-उद्-दौला और अंग्रेज

सिराज एक स्वेच्छाचारी और विलासी प्रवृत्ति का राजा था। उसके खिलाफ शौकत जंग गद्दी हथियाने के लिए प्रयत्नशील था और उसका समर्थन हिन्दू राजा राजभल्लभ भी कर रहा था और उसकी मौसमी घसीटी बेगम तो उसके पक्ष में थी। इधर अंग्रेजों ने भी सिराज को हटाने के लिए शौकत जंग का समर्थन किया क्योंकि सिराज अंग्रेजों को व्यापारिक फरमान के अनुसार व्यापार नहीं करने दे रहा था। सिराज ने मुगल सम्राट के फरमान के अनुसार ही व्यापार करने पर बल दिया, जबकि अंग्रेज नवाब के आदेशों का उल्लंघन करके विशेषाधिकारों का प्रयोग करना चाहते थे। अंग्रेजों ने कोलकाता आने वाली समस्त भारतीय वस्तुओं पर भी कर लगाना प्रारम्भ कर दिया और बिना नवाब की अनुमति लिए ही अपने किलों को सशस्त्र बनाने का कार्य भी करने लगे। इस बात की जानकारी मिलते ही सिराज ने अंग्रेजों की सशस्त्र किला व्यवस्था को ध्वस्त करने का आदेश दिया और इसी तरह का आदेश उसने चन्दननगर स्थित फ्रांसीसियों के किले के संबंध में भी दिए ताकि दोनों कंपनियों के बीच संघर्ष न हो सके। सिराज का लक्ष्य था कि दोनों कंपनियाँ भारत में व्यापारिक गतिविधियों तक ही सीमित रहें। दोनों ही कंपनियों ने नवाब की आज्ञा का पालन नहीं किया। अंग्रेजों ने तो नवाब के आदेश के खिलाफ व्यापारिक गतिविधियों को चलाने का निश्चय किया और बंगाल में पूर्ण मुक्त व्यापार करने की अनुमति माँगी। इन सारी गतिविधियों के कारण सिराज को यह बात समझ में आ गई कि यदि अंग्रेजों को अभी नियंत्रित नहीं किया गया तो वे आगे खतरा बन सकते हैं। अतः उसने बंगाल में अंग्रेजों पर विविध प्रतिबंध लगा दिए परंतु अंग्रेज सिराजुउद्दौला की बात न माने और बंगाल में खुला व्यापार करने लगे।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि सिराजुद्दौला ने कासिम बाजार में अंग्रेजी कारखाने पर अधिकार कर लिया तथा कोलकाता के नगर पर भी अधिकार जमा लिया। 146 व्यक्तियों को, जिनमें एक स्त्री थी, पकड़ लिया गया तथा उन्हें रात्रि के समय एक बहुत छोटे से कमरे में बन्द कर दिया गया। गर्मी इतनी अधिक थी तथा स्थान इतना कम था कि उनमें से 123 व्यक्ति दम घुट जाने के कारण मर गए। उनमें से केवल 23 व्यक्ति बचे और उनमें से एक हालवेल था। यह दुर्घटना "ब्लैकहोल" के नाम से विख्यात है। जब ब्लैकहोल दुर्घटना का समाचार मद्रास (चेन्नई) पहुँचा तो वहाँ के अंग्रेज भड़क उठे। शीघ्र ही एडमिरल वाट्सन तथा क्लाइव को बंगाल भेजा गया ताकि वे ब्लैकहोल दुर्घटना का बदला ले सकें। वे बिना किसी कठिनाई के कोलकाता पर अधिकार करने में समर्थ हुए। सिराजुद्दौला ने कोलकाता पर आक्रमण किया और उस युद्ध से कोई निश्चिय न हो सका। अन्त में शान्ति स्थापित की गई तथा नवाब ने अंग्रेजी कम्पनी को पुनः सुविधा दी। उनको इस बात की भी अनुमति प्रदान की गई कि वे कोलकाता में दुर्ग बना सकते हैं। सप्तवर्षीय युद्ध छिड़ने के कारण अंग्रेजों ने फ्रांसीसियों से चन्द्रनगर छीन लिया। यद्यपि दिखावे के तौर पर क्लाइव ने सिराजुद्दौला के साथ समझौता कर लिया था, तथापि उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि वह ब्लैकहोल दुर्घटना का बदला लेगा और तब ब्रिटिशों द्वारा पहली बार भारत में साम्राज्य के विस्तार के लिए युद्ध किया गया जिसे प्लासी का युद्ध कहते हैं।

**प्लासी का युद्ध** (Battle of Plassey)

भारत में अंग्रेजों ने 23 जून, 1757 के प्लासी के युद्ध के साथ अपने शासन स्थापना की शुरुआत की और विविध युद्ध नीतियाँ तथा संधियाँ करते आगे बढ़ते गए और अपने युद्ध कौशल, बुद्धिमत्ता, इत्यादि गुणों के कारण अंग्रेज जो कि कुछ ही लोग भारत में व्यापारी बनकर आए थे भारत के वास्तविक सत्ताधारी बन गए।

(1) दुर्भाग्य से अंग्रेजों को ऐसे भारतीयों का सहयोग प्राप्त हो गया जो अपने स्वार्थों के कारण देशद्रोह करने के लिये तैयार हो गये। ऐसे व्यक्तियों में अमीरचन्द, मीर जाफर तथा यारलतीफ खाँ मुख्य थे।

(2) बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला अंग्रेजों के मार्ग में एक रोड़ा थे। वह उनके व्यापारिक एवं राजनैतिक उद्देश्य पूर्ण नहीं होने देना चाहते थे। अंग्रेज चाहते थे कि सिराजुद्दौला के स्थान पर किसी ऐसे व्यक्ति को बंगाल का नवाब बना दिया जाये जो उनके हाथों में कठपुतली बनकर रहे।

(3) कर्नाटक में फ्रांसीसियों के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने के पश्चात् अंग्रेज बंगाल में अपनी सत्ता को दृढ़तापूर्वक स्थापित करना चाहते थे। अपने इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अंग्रेजों ने प्लासी के युद्ध की योजना बनाई।

(4) कोलकाता पर अंग्रेजों के आक्रमण और अलीनगर की सन्धि के पश्चात् अंग्रेजों की शक्ति और साहस काफी बढ़ चुका था। वे समझते थे कि युद्ध में नवाब को हरा देना कठिन नहीं है। इसी प्रकार चन्द्रनगर में फ्रांसीसियों को पराजित कर देने के कारण भी अंग्रेजों की स्थिति सुदृढ़ हो चुकी थी।

इस प्रकार नवाब सिराजुद्दौला के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के लिए अंग्रेज अथवा उनका गवर्नर राबर्ट क्लाइव ही पूर्णतः उत्तरदायी था।

राबर्ट क्लाइव सिराजुद्दौला को बंगाल की गद्दी पर से उतारने की योजना को पूर्ण करने में लग गया और उसके पूर्ण होते ही उसने अपनी सेना को कूच करने की आज्ञा प्रदान की और नवाब सिराजुद्दौला को एक पत्र लिखा जिसमें उस पर विभिन्न प्रकार के आरोप लगाये। जब सिराजुद्दौला को यह पत्र प्राप्त हुआ तो उसने भी अपनी सैनिक तैयारियाँ करना आरम्भ कर दी और अपनी सेना को लेकर **प्लासी** नामक स्थान पर पहुँच गया। क्लाइव ने प्लासी के लिए प्रस्थान किया। नवाब के अधीन 50,000 सैनिक थे, जिनको देखकर क्लाइव घबरा गया, परन्तु उसे उसी समय समाचार मिला कि मीर जाफर अंदर ही अंदर अंग्रेजों से मिल चुका है। जब वह इस परिस्थिति पर विचार कर रहा था तभी उसको मीर जाफर का सन्देश मिला जिसमें उसे आगे बढ़ने के लिए आदेश था, उस समाचार के मिलते ही उसने नवाब की सेना पर आक्रमण करने का निश्चय किया। 23 जून, 1757 ई. को प्रातःकाल प्लासी का युद्ध प्रारम्भ हुआ। मीरमर्दन व फ्रांसीसियों ने अंग्रेजों का बड़ी वीरता से साहस के साथ सामना किया, जब सिराजुद्दौला को मीरमर्दन की मृत्यु का समाचार ज्ञात हुआ तो उसने मीर जाफर से अंग्रेजों पर आक्रमण करने को कहा, किन्तु उसने युद्ध में भाग नहीं लिया और चुपचाप तमाशा देखता रहा। जब सिराजुद्दौला ने यह देखा तो वह बड़ा भयभीत हुआ और उसने भागने का निश्चय किया। वह युद्ध क्षेत्र से भागा किन्तु कुछ समय बाद बन्दी बना लिया गया और मीर जाफर के पुत्र मीरन के आदेशानुसार उसका वध कर दिया गया। उसके मृतक शरीर को हाथी पर रखकर नगर में घुमाया गया। इस प्रकार षड्यन्त्रकारियों को अपने कार्यों में सफलता प्राप्त हुई। देशद्रोहियों तथा षड्यन्त्रकारियों को देश तथा नवाब के साथ विश्वासघात करने पर नवाब की 50,000 सेना क्लाइव की 3,000 सेना के सामने पराजित हुई और भारत भूमि को दुर्दिनों का सामना करना पड़ा।

**प्लासी के युद्ध का महत्व एवं परिणाम–** प्लासी का युद्ध अंग्रेज इतिहासकारों के अनुसार निर्णायक युद्ध था और युद्ध में विजयी होने के कारण क्लाइव की गणना विश्व के महान् सेनापतियों में की जाने लगी, किन्तु वास्तव में—

(1) शासन की वास्तविक सत्ता नवाब के हाथ में न रहकर क्लाइव के हाथ में आ गई। इसी कारण क्लाइव को भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है।

(2) मीर जाफर ने क्लाइव को 30,000 पौण्ड वार्षिक आय की जागीर प्रदान की। उसने अन्य पदाधिकारियों को भी बहुमूल्य भेंट प्रदान की।

(3) फ्रांसीसियों को कर्नाटक के तृतीय युद्ध में परास्त करने में सफल हुए अब वे अपनी कुटिल नीति का प्रयोग उत्तरी भारत के अन्य प्रदेशों में भी कर सकते थे।

(4) उनके प्रतिद्वन्द्वियों को बड़ा आघात पहुँचा। अंग्रेजों के अधिकार में बंगाल जैसा उपजाऊ प्रदेश आ गया।

(5) अंग्रेजों की प्रतिष्ठा में बड़ी वृद्धि हुई।

(6) सिराजुद्दौला के स्थान पर मीर जाफर नवाब घोषित किया गया, जिसने अंग्रेजों को विशेष सुविधाएँ प्रदान कीं।

(7) वरन् यह तो एक विशाल गहरे षड्यन्त्र का प्रदर्शन था, किन्तु उनके द्वारा ही अंग्रेज सफल हुए और भारत की राजश्री उनके हाथ में आने लगी। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि इस युद्ध का महत्व केवल राजनीतिक दृष्टि से था।

(8) इस युद्ध का सैनिक दृष्टि से कोई मूल्य नहीं है और न ही उनका क्लाइव सम्बन्धी दावा ही सत्य है। वास्तव में यह युद्ध था ही नहीं।

अंग्रेजी कम्पनी द्वारा एक हिन्दुस्तानी प्रान्त के गवर्नर के पराजय तथा अपमान ने इसकी प्रतिष्ठा तथा शक्ति में वृद्धि कर दी। इसके अतिरिक्त प्लासी के युद्ध ने बंगाल के पूर्ण भ्रष्ट राजनीतिक जीवन का पर्दाफाश किया। इससे यह पता चलता है कि हिन्दू लोग प्रान्त में मुस्लिम शासन से पूर्ण रूप से असन्तुष्ट थे तथा किसी भी ऐसे व्यक्ति का साथ देने को तैयार थे, जो मुस्लिम शासन की समाप्ति के लिए समर्थ हो।

**बक्सर का युद्ध** 1764 (Battle of Buxar)–

प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल की नवाबी मीर जाफर को उसकी द्रोहिता के उपलक्ष में प्रदान कर दी गई, परन्तु मीर जाफर को यह नवाबी महँगी पड़ी क्योंकि क्लाइव ने मीर जाफर के पूरे शासन को चूस लिया। उसने आर्थिक रूप से मीर जाफर को लगभग दिवालिया कर दिया। क्लाइव 1760 में इंग्लैण्ड चला गया और उसके स्थान पर हालबैल अस्थायी गवर्नर की हैसियत से आया। मीर जाफर से जब धन प्राप्त होने की कोई सम्भावना न रही तो हालवैल ने उस पर अनेक दोष लगाकर हटाने की योजना बनाई। 27 सितम्बर, 1760 को कम्पनी और मीर जाफर के दामाद मीर कासिम के मध्य एक समझौता हुआ। 14 अक्टूबर को अंग्रेजों ने मीर जाफर को गद्दी छोड़ने के लिए बाध्य किया। मीर कासिम द्वारा 15 हजार पेंशन निश्चित कर दी गई। मीर जाफर के समय की अनेक समस्याओं को मीर कासिम ने सुलझाया। उसने अंग्रेजी ऋण भी अदा किया और जिन व्यक्तियों को वेतन प्रदान नहीं किया गया था उसका भी प्रबन्ध किया। उसने सैनिक सुधार भी किये। आरम्भ में मीर कासिम व अंग्रेजों के संबंध ठीक रहे, परन्तु धीरे-धीरे सम्बन्ध बिगड़ने लगे। आर्थिक प्रश्न को लेकर मीर कासिम और अंग्रेजों के सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो गया। चूँकि मीर कासिम महत्वाकांक्षी व्यक्ति था इसलिए अंग्रेजों से उसकी पट न सकी। अंग्रेजों ने फिर मीर जाफर से एक समझौता कर अपने हितों को स्वीकार करवाया और उसे शासक बनाने का प्रयत्न प्रारम्भ हुआ। ऐसी दशा में मीर कासिम से संघर्ष अनिवार्य हो गया।

**बक्सर के युद्ध के कारण–** मीर कासिम और अंग्रेजों के मध्य 22 अक्टूबर, 1764 को बक्सर का युद्ध हुआ। इस युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

(1) अंग्रेजों की व्यापारिक नीति से मीर कासिम परेशान हो गया था। मुगल सम्राट द्वारा दी गई सुविधाओं का अंग्रेज गलत रूप से प्रयोग करने लगे थे। इससे बंगाल के व्यापारिक क्षेत्र में हानि हो रही थी। मीर कासिम ने अंग्रेजों की इस प्रकार की नीति को बदलने को कहा, परन्तु अंग्रेज तैयार नहीं हुए। कम्पनी के अधिकांश कर्मचारी दी हुई सुविधा का अनुचित लाभ उठाकर चुँगी बचाकर व्यापार करने लगे थे। इसमें भारतीय व्यापारियों को हानि हो रही थी, क्योंकि उन्हें चुंगी देनी पड़ती थी और इस प्रकार उनका माल महँगा हो जाता था। जब अंग्रेजों ने अपनी हरकतें समाप्त नहीं कीं तो मीर कासिम ने सभी व्यापार पर से चुँगी हटा दी। इस प्रकार सब व्यापारी अंग्रेजों को समान दर पर माल बेचने लगे। अंग्रेजों को इससे हानि हुई और उन्होंने मीर कासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र करना आरम्भ कर दिया।

(2) समझौते के आधार पर मीर जाफर ने अंग्रेजों को अनेक आर्थिक एवं राजनीतिक सुविधाएँ प्रदान कीं। मीर जाफर को अंग्रेजों द्वारा नवाब बनाने के प्रयत्न को मीर कासिम बर्दाश्त न कर सका और वह लड़ने को तैयार हो गया।

(3) अंग्रेज समझ गये कि मीर कासिम उनके हाथ से निकल गया है। उसको गद्दी से उतारने के लिए उन्होंने फिर पुराने नवाब मीर कासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना आरम्भ किया।

(4) मीर कासिम को इस रात्रि के आक्रमण पर बड़ा क्रोध आया, परन्तु उसने अपनी सेना सहित पन्ना की ओर प्रस्थान किया। इसी बीच मुंगेर के किलेदार ने रिश्वत लेकर मुंगेर को शत्रुओं के हवाले कर दिया। अंग्रेजों ने पटना में भी रिश्वत देकर कार्य निकालना प्रारम्भ किया। उन्होंने पुलिस तथा अन्य को बन्दीगृह से निकालने का प्रयास किया। मीर कासिम ने एलिस तथा अन्य को मरवा डाला। इस घटना को **पटना हत्याकाण्ड** कहा गया है। इससे दोनों दल पूर्ण युद्ध को तैयार हो गये।

**युद्ध की घटनाएँ–** उपरोक्त कारणों के उत्पन्न होने से युद्ध होना अवश्यम्भावी हो गया। मेजर मुनरो को पटना की सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया। अवध के नवाब वजीर और मीर कासिम में युद्ध सम्बन्धी समझौता हो गया। 15 सितम्बर, 1764 को दोनों की सेनाओं में युद्ध प्रारम्भ हो गया। अंग्रेजों ने दिल्ली सम्राट शाहआलम को अपनी ओर मोड़ने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य में उन्हें सफलता भी मिली। नवाब के अनेक अधिकारी भी अंग्रेजों से मिल गये। ऐसी परिस्थिति में भी मीर कासिम मैदान छोड़कर भाग गया। 12 वर्ष इधर-उधर फिरने के पश्चात् दिल्ली में सन् 1777 में उसकी मृत्यु हो गई।

**युद्ध के परिणाम–** (1) मीर जाफर नवाब बना। (2) बंगाल तथा बिहार में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हुआ। (3) शुजाउद्दौला की शक्ति को धक्का पहुँचा। (4) सम्राट पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। (5) बंगाल के नवाब के यहाँ अंग्रेजी रेजीडेंट को रखा गया। (6) मीर कासिम से हुए युद्ध की क्षति मीर जाफर ने

पूरी की। (7) शुजाउद्दौला से कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले छीने। (8) मुगल सम्राट द्वारा कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी प्राप्त हुई।



विभिन्न इतिहासकारों ने बक्सर के युद्ध को अति महत्वपूर्ण बताया है। निश्चय ही इस युद्ध ने भारतीय इतिहास को नया मोड़ प्रदान किया। इस युद्ध ने अंग्रेजों को पूर्णरूप से भारत में स्थायित्व दिया। अंग्रेजों का प्रभाव मुगल राज्य तक आ गया और अंग्रेज बंगाल के कानूनी स्वामी माने गये। भारत में एक यूरोपीय जाति की सत्ता स्थापित हुई।

**इलाहाबाद की सन्धि–** बक्सर की विजय के पश्चात् अंग्रेजी सेनाएँ अवध की ओर बढ़ीं। उन्होंने बनारस और अवध पर अधिकार कर लिया। नवाब शुजा ने मराठों और रूहेलों की सहायता से अंग्रेजों को अवध से खदेड़ने की कोशिश की, लेकिन सफलता नहीं मिली। 1765 में उसने अंग्रेजों के समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। दोनों के बीच राजा सिताबराय की मध्यस्थता में एक सन्धि हुई, जिसे **इलाहाबाद की सन्धि** कहा जाता है।

**सन्धि की शर्तें–** इस सन्धि के अनुसार निम्न शर्तें तय हुईं–

(1) युद्ध के समय दोनों एक-दूसरे की सहायता करेंगे।

(2) धन लेकर कम्पनी हर समय नवाब को सैनिक सहायता प्रदान करेगी।

(3) अवध के नवाब को उसका राज्य लौटा दिया जायेगा।

(4) अवध के नवाब ने कम्पनी को युद्ध की क्षतिपूर्ति के लिये 50 लाख रुपये देने का वचन दिया।

(5) नवाब से कड़ा और इलाहाबाद के जिले लेकर मुगल-सम्राट शाहआलम को दे दिये गये।

(6) बनारस के राजवंश को स्वीकार कर लिया गया और वह अवध राज्य के अधीन माना गया।

(7) अवध के नवाब ने यह भी विश्वास दिलाया कि वह मीर कासिम और सुमरु को अपने राज्य में आश्रय प्रदान नहीं करेगा।

**इलाहाबाद की सन्धि का प्रभाव–** यह समझौता बहुत अधिक स्थायी सिद्ध हुआ। लार्ड डलहौजी द्वारा अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने से पूर्व तक अवध एक मध्यस्थ राज्य के रूप में बना रहा। इस प्रकार इस सन्धि के द्वारा अंग्रेजों ने अवध के साथ निकटतम सम्बन्ध बनाये रखा, जिससे मराठे उसको उनके विरुद्ध प्रयोग नहीं कर सके, वरन् उसको उनके विरुद्ध संरक्षक के रूप में प्रयोग किया जा सके। इससे अंग्रेजों का बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राजस्व पर कानूनी अधिकार स्थापित हो गया और बंगाल के नवाब, अवध के नवाब तथा दिल्ली के सम्राट उनके पूर्ण नियंत्रण में आ गये।

## 3.6 क्लाइव का दूसरी बार गवर्नर के रूप में बंगाल में आना, 1765-97 (Clive's Second Governorship of Bengal)

क्लाइव का कार्यकाल इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि उसने उन राजनीतिक तथा प्रशासकीय समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझाया जो कम्पनी के सामने 1765 में थीं। स्थिति पर पूर्ण नियन्त्रण के कारण सब विरोधी शान्त हो गए और कम से कम कुछ समय के लिए शान्ति का वातावरण उत्पन्न हो गया। प्रशासकीय सुधार कुछ कठिन थे। सुविधापूर्ण व्यवस्था तथा अन्य कारणों से कम्पनी के नियमित कर्मचारियों का नैतिक पतन हो चुका था। इस प्रकार की एक प्रथा चल पड़ी थी कि बंगाल सरकार में जब कभी कोई परिवर्तन होता था तब कम्पनी के कर्मचारियों को उपहार मिलते। मीर जाफर के पुत्र निजामुद्दौला के गद्दी पर बैठने के अवसर पर 1765 में मन्त्रियों तक से उपहार लिए गए। इस सम्बन्ध में सबसे बुरी बात यह हुई कि यह सब कुछ तब हुआ जब कम्पनी की ओर से ऐसी विशेष आज्ञाएँ निकलीं कि किसी प्रकार की भेंट न ली जाए तथा प्रत्येक कर्मचारी से इस प्रकार की प्रसंविदा पर हस्ताक्षर लिए गये कि वे भविष्य में कोई उपहार अथवा भेंट नहीं लेंगे। कर्मचारियों की यह धारणा थी कि चूँकि स्वयं क्लाइव पहले उपहार ग्रहण करता रहा है, वह उनके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही न कर सकेगा, किन्तु उनका यह विचार ठीक नहीं था। क्लाइव कम्पनी की आज्ञा को मनवाने के लिए दृढ़-संकल्प था। वह इस बात को बिल्कुल भूल गया कि वह जागीर से तीस हजार पौण्ड वार्षिक प्राप्त कर रहा है। क्लाइव ने समस्त नागरिक तथा फौजी कर्मचारियों से माँग की कि वे ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों पर हस्ताक्षर करें कि वे भेंट स्वीकार नहीं करेंगे। उन्होंने

ऐसा यह सोचकर किया कि क्लाइव कुछ समय के पश्चात् शिथिल हो जाएगा तथा अपनी आज्ञाओं में तदनुसार सुधार कर देगा, किन्तु कम्पनी के कर्मचारियों ने देखा कि क्लाइव कम्पनी के प्रति अपने कर्तव्यों को भली-भाँति निभाने में वस्तुतः प्रस्तुत है। जब क्लाइव कोलकाता आया, तब उसने देखा कि कम्पनी के उच्चाधिकारियों की बहुत कमी है। इसका कारण यह था कि कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन बहुत कम थे तथा योग्य व्यक्ति इन हालात में काम करने को तैयार नहीं थे। उसने देखा कि निम्नाधिकारी समस्त मुख्य पदों पर काम कर रहे हैं तथा भारतीय व्यापारियों को अपने पत्र बेचकर लाभ कमा रहे हैं। क्लाइव को यह भी पता चला कि तीन वर्ष से क्लर्क के रूप में कार्य करता हुआ एक व्यक्ति किसी विभाग का सचिव पद सम्भाले हुए है। फौज का कोषाध्यक्ष भी केवल एक क्लर्क ही था। लार्ड क्लाइव की इच्छा थी कि वह गैर-सरकारी व्यापार को इस प्रकार नियन्त्रित करे कि प्राप्त हुए लाभ में से अधिक वेतन दिए जाएँ तथा योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति हो। यद्यपि क्लाइव की इच्छा यह थी कि कम्पनी के कर्मचारियों के वेतन बढ़ा दिये जाएँ, किन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल न हो सका, क्योंकि कम्पनी के डायरेक्टरों ने इस बात का विरोध किया।

कम्पनी के कर्मचारियों की ओर से उसके सुधारों के सम्बन्ध में दृढ़ अवरोध चल रहा था। जब क्लाइव तत्कालीन लालच के विरुद्ध गरजा तथा उसने यह घोषणा की कि "भावना की प्रत्येक चिनगारी तथा सार्वजनिक भावना अमर्यादित तथा अनियमित लिप्सा में समाप्त हो गई," उस समय वे समझ न सके कि क्लाइव स्वयं बोर्ड से ऊपर कैसे है। उन्होंने एक संगठन बनाया। क्लाइव द्वारा किए गए नियन्त्रणों तथा भोजों का बहिष्कार किया गया। स्मृति-पत्र तैयार किए गए, किन्तु जब कम्पनी के कर्मचारियों ने देखा कि क्लाइव हठी है, तो उन्होंने उसके सामने घुटने टेक दिए। लॉर्ड क्लाइव को सैनिक प्रशासन की ओर भी ध्यान देना पड़ा। ऐसा करने में उसे एक कठिन स्थिति का सामना करना पड़ा। कई वर्षों से अंग्रेजी कम्पनी इस बात का प्रयत्न कर रही थी कि वह अपने फौजी अधिकारियों के भत्ते अथवा युद्ध-क्षेत्र के भत्तों को कम कर दे। वे भत्ते इसलिए दिए जाते थे कि युद्ध-क्षेत्र में दैनिक जीवन की आवश्यकताओं पर फौजी शिविरों की अपेक्षा अतिरिक्त व्यय होता है। दुगुने भत्तों का आरम्भ कर्नाटक के युद्धों में हुआ था। किन्तु जब अंग्रेजी कम्पनी को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दीवानी का अधिकार प्राप्त हुआ, तो सैनिकों को दुगुने भत्तों के देने का उत्तरदायित्व कम्पनी पर पड़ा। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि कम्पनी के डायरेक्टरों ने इस सम्बन्ध में व्यय कम करने की आज्ञाएँ दी हों।

लॉर्ड क्लाइव ने इस सम्बन्ध में एक विस्तृत योजना बनाई। कम्पनी के दोस्तों को तीन ब्रिगेडों में बाँटा गया। प्रत्येक भाग में यूरोपीय पैदल सेना की एक टुकड़ी, एक तोपखाने की टुकड़ी, सिपाहियों की छह बटालियन तथा हिन्दुस्तानी घुड़सवारों का एक दस्ता था। एक फौजी कमान मुंघेर में थी, दूसरी बाँकीपुर में तथा तीसरी इलाहाबाद में। क्लाइव ने आज्ञा दी कि मुंघेर अथवा पटना की छावनियों में रहने वाले अधिकारी उन अधिकारियों की अपेक्षा आधे भत्ते लेंगे, जो त्रिचनापल्ली में लेते थे। जब वे युद्ध-भूमि में होते थे, तब उन्हें बंगाल तथा बिहार की सीमाओं में उचित भत्ता दिया जाता। किन्तु यदि वे सीमा पार करके अवध चले जाएँ, तब उन्हें दुगुने भत्ते प्राप्त करने का अधिकार था।

आर्थिक कठिनाई के समय कम्पनी के कर्मचारियों की सहायता के लिए क्लाइव ने, "लार्ड क्लाइव निधि" के नाम से निधि चालू की। पेंशन की पद्धति शुरू होने से पूर्व इस निधि से कर्मचारियों को काफी फायदा हुआ। यह निधि मीर जाफर द्वारा क्लाइव को दी जाने वाली 5 लाख रुपये की धनराशि से चलाई गई थी।

**बोध प्रश्न**

1. प्लासी के युद्ध का वर्णन कीजिए।

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

2. बक्सर के युद्ध के कारण लिखिए?

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

## 3.7 बंगाल में दोहरी शासन व्यवस्था 1765 (Dual Government in Bengal)

बक्सर के युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात क्लाइव ने बंगाल प्रांत में दोहरी शासन व्यवस्था को स्थापित किया। इस व्यवस्था के पूर्व बंगाल में नवाब जो पहले सूबेदार कहलाते थे और दिल्ली सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में बंगाल पर शासन करते थे, उनको दीवानी तथा निजामत दोनों कार्य करना पड़ता था। दीवानी के अन्तर्गत मालगुजारी का वसूल करना, उसका व्यय करना और दीवानी से सम्बन्धित मुकदमों का निर्णय करना था। निजामत के अन्तर्गत सैनिक शक्ति और फौजदारी-सम्बन्धी मुकदमों का निर्णय करना था। सन् 1765 ई. के फरवरी मास में निजामत के कार्यों पर कम्पनी का अधिकार हो गया था और अगस्त, 1765 ई. में कम्पनी को मुगल सम्राट शाहआलम से बंगाल की दीवानी प्राप्त हुई थी। इस प्रकार दोनों दीवानी और निजामत पर कम्पनी का अधिकार स्थापित हो गया, परन्तु उस समय कम्पनी की स्थिति ऐसी नहीं थी कि वह इस प्रकार प्राप्त हुए पूर्ण उत्तरदायित्व को सम्भालने में सफल हो सकती थी। इसलिए उसने अपने अधिकार से सेना, कोष विदेशी नीति तथा विदेशी व्यापार को अपने हाथ में ले लिया, परन्तु लगान वसूल करना और न्याय करने का काम उसने अपने हाथ में रखने के स्थान पर भारतीय पदाधिकारियों को सौंपा, यद्यपि ये कर्मचारी कम्पनी के ही अधीन थे। बंगाल के नवाब को 53 लाख रुपया वार्षिक पेंशन देकर शासन-भार से मुक्त कर दिया गया था। रजा खाँ को बंगाल में और सिताबराय को बिहार में नवाब नाजिम के पद पर नियुक्त किया गया। रजा खाँ का मुर्शिदाबाद और सिताबराय का पटना केन्द्र बनाया गया। इन दोनों की नियुक्ति तथा इनको पद से अलग करने का अधिकार कम्पनी के हाथ में था। मालगुजारी वसूल करने पर निजामत का समस्त व्यय मुगल सम्राट और बंगाल के नवाब को पेंशन दी जाती थी और जो शेष धन बचता वह कम्पनी के अधिकार में रहता था। इसके द्वारा समस्त शक्ति पर कम्पनी का अधिकार हो गया। नवाब के कर्मचारियों के हाथ में बहुत थोड़ी शक्ति रही। इसी को क्लाइव द्वारा स्थापित **दोहरा शासन** कहते हैं।

**दोहरे शासन के लाभ** (Advantages of Dual Government)–

दोहरे शासन के निम्नलिखित लाभ हुए–

(1) **कम्पनी के उद्देश्य की स्पष्टता–** इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि कम्पनी का मुख्य उद्देश्य व्यापार करना था न कि शासन करना।

(2) **कम्पनी की आर्थिक स्थिति में सुदृढ़ता–** इस दोहरे शासन से कम्पनी की व्यापारिक तथा आर्थिक स्थिति बिना उत्तरदायित्व बढ़े हुए दृढ़ बन गई।

(3) **भारतीय कर्मचारियों का सहयोग–** मालगुजारी वसूल करने तथा न्याय करने के लिए भारतीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई। इस प्रकार कम्पनी को भारतीय पदाधिकारियों का सहयोग प्राप्त हो गया।

(4) **विदेशी जातियों की ईर्ष्या से छुटकारा–** यदि बंगाल का प्रशासन कम्पनी अपने ही हाथों में रखती तो विदेशी जातियाँ (फ्रांसीसी, डच तथा पुर्तगाली) ईर्ष्या के कारण इसे सहन नहीं करती और घोर विरोध करती।

(5) **कम्पनी को सुविधा–** सन् 1765 में कम्पनी को निजामत तथा दीवानी दोनों के अधिकार प्राप्त हो गये। उन दोनों को सम्भालना कम्पनी के लिए कठिन कार्य था, क्योंकि इन कर्मचारियों को प्रशासन का कोई ज्ञान नहीं था। अतः दोहरे शासन की स्थापना से कम्पनी का कार्य-भार हल्का हो गया और बंगाल पर उनका पूर्ण नियन्त्रण भी रह सका।

(6) **अंग्रेजी शासन की स्थापना–** इस दोहरे शासन से भारत में अंग्रेजी राज्य की नींव पड़ गई। बंगाल में अब नवाब की शक्ति केवल नाममात्र की ही रह गई थी। दीवानी तथा निजामत के अधिकार कम्पनी के हाथ में पहुँच गए।

**दोहरे शासन के दोष (आलोचनाएँ)** (Disadvantages of Dual Government)

इसके मुख्य दोष इस प्रकार हैं–

(1) **भारतीय उद्योग-धन्धों का विनाश**–कंपनी या प्रभुत्व स्थापित हो जाने के परिणामस्वरूप बंगाल के व्यापार पर भी उसका एकाधिकार हो गया। व्यापार में भी कंपनी के कर्मचारी मनमानी तथा लूट-खसोट करने लगे, देश के उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये।

(2) **नवाबी शासन में हस्तक्षेप–** कंपनी के कर्मचारी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए हर प्रकार का उत्पीड़न करते और नवाब के कर्मचारियों के काम में वे ही बाधायें डालने लगे।

(3) **आर्थिक उत्पीड़न–** मालगुजारी के वसूल करने में बड़ी कठोरता से कार्य किये जाने लगे। जमींदारी नीलामी द्वारा खरीदी जाती थी, जो सबसे अधिक बोली देता था वही उसका मालिक बन जाता था।

(4) **उत्तरदायित्व का अभाव–** सम्पूर्ण शक्तियाँ कम्पनी के हाथ में थीं, किन्तु उसने अपने अधिकारियों को भारतीय अधिकारियों को सौंप दिया और कम्पनी उन कर्मचारियों के कार्यों के लिए स्वयं उत्तरदायी नहीं थी। इस प्रकार के अभाव में पदाधिकारियों की शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई वे उसका दुरुपयोग करने लगे और उनके अत्याचार बढ़ने लगे। इस प्रकार बंगाल में द्वैध शासन में कृषि तथा उद्योग-धंधे नष्ट हो गए तथा जनता कंपनी के कर्मचारियों के अत्याचारों के कारण त्राहि-त्राहि करने लगी। इसके विनाशकारी दोषों के कारण इसे सन् 1772 में वारेन हेस्टिंग्ज ने समाप्त कर दिया।

1772 में वारेन हेस्टिंग्ज की नियुक्ति इसलिए की गई ताकि वह द्वैध शासन को समाप्त कर दे। उस समय तक डायरेक्टरों ने इस बात का निर्णय कर लिया था कि द्वैध शासन को समाप्त कर देना चाहिए और राज्य का सारा भार अपने कन्धों पर ले लेना चाहिए। ऐसा करने के लिए कम्पनी ने सारे अधिकार हेस्टिंग्ज को दे दिए। द्वैध शासन के समाप्त होने से बंगाल का सारा भार अंग्रेजों के कन्धों पर आ गया। मुहम्मद रजा खाँ और राजा शिताब राय को गिरफ्तार किया गया। उन पर मुकदमे भी चलाए गए और अन्त में उनको छोड़ दिया गया। यह सारा तमाशा इसलिए किया गया ताकि शासन की बागडोर आसानी से अंग्रेजों के हाथों में आ जाए। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बंगाल का द्वैध शासन एक बहुत आवश्यक चीज थी। इसकी थोड़ी देर के लिए स्थापना अंग्रेजों के अपने हित में थी। ऐसा करने से अंग्रेज कम्पनी एक बड़ी कठिनाई से बच गई। जब समय अनुकूल हुआ तो द्वैध शासन समाप्त कर दिया गया।

## 3.8 डॉ. नन्दलाल चटर्जी के मतानुसार

"क्लाइव द्वारा संस्थापित द्वैध शासन बेतुका और अव्यावहारिक था। वह भूल गया कि शक्ति का विभाजन अराजकता तथा गड़बड़ के बिना असम्भव था। बंगाल प्रान्त की दीवानी व्यवस्था के धारण करने से एक उत्तरदायी प्रशासक की कार्य-कुशलता की अपेक्षा कार्य-कुशल योजना बनाने वाले व्यक्ति के चातुर्य का ही प्रदर्शन होता था। यह एक स्वार्थ सिद्ध करने का तरीका था, जो पद के आनन्द लूटने के लिए ही बनाया गया था। परन्तु उसकी मूलभूत कर्तव्य-भावनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया था। द्वैध-शासन का जन्मदाता क्लाइव था और उसको खत्म करने वाला वारेन हेस्टिंग्ज था। यह सदैव के लिए नहीं बनाया गया था। यह तो अन्तरिम योजना थी। यह एक प्रकार की ऐसी व्यवस्था थी जो काम चलाने के लिए बनाई गई थी। इसका उद्देश्य 1765 में अंग्रेजों के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना था। यह अंग्रेजों की प्रतिभा की उपज थी, जो इस बात में विश्वास करते हैं कि धीरे-धीरे आगे बढ़ जाए। इसमें गलतफहमी की सम्भावना बनी रहती है, लेकिन अन्त में उद्देश्य की प्राप्ति हो जाती है। डॉ. नन्दलाल चटर्जी का कहना है कि क्लाइव ब्रिटिश भारत की नियमित डाक प्रणाली का वास्तविक संस्थापक था। उसने उन नींवों को स्थापित किया, जिन पर उसके उत्तराधिकारियों ने आधुनिक डाक प्रणाली का बाद में निर्माण किया। उसके द्वारा आरम्भ की गई डाक प्रणाली मुख्य रूप से पुराने डाक संगठन का ही विकसित रूप था, जिसमें घुड़सवार अथवा रनर डाक एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते थे तथा एक दूसरे को पहुँचाते थे। केवल इस बात की आवश्यकता थी कि रनर्स का योग्य तथा स्थायी कर्मचारी वर्ग संगठित किया जाए तथा क्लाइव ने यह कार्य डाक-मार्गों के जमींदारों के सुपुर्द किया। उनसे डाक ले जाने के लिए रनर्स की माँग की। उनके लगान पर उतनी छूट कर दी गई, जितना व्यय उन लोगों को दौड़ाने वाले हरकारों को रखने पर होता था।

**क्लाइव का मूल्यांकन** (Evaluation of Clive)

## 3.7 सारांश

भारत में क्लाइव के कार्यों के सूक्ष्म परीक्षण से पता चलता है कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति उसकी सेवाएँ महान् हैं। 1751 में अर्काट की सुरक्षा तथा उसके हस्तगत करने का श्रेय उसे ही प्राप्त हुआ। लारैन्स के

सहयोग से उसने डूप्ले की सब योजनाओं को व्यर्थ कर दिया। जनरल लारैन्स से उसे युद्ध-विद्या की तथा साण्डर्स से उसे कूटनीति की शिक्षा मिली। 1756 में उसने घरिया के सशक्त लुटेरों को कुचलने में मराठों का साथ दिया। प्लासी पर विजय के कारण उसने बंगाल में ब्रिटिश शक्ति की नींव रखी तथा उसके विस्तार के लिए भूमि तैयार की। वह न केवल एक महान् योद्धा था, वरन् एक महान् प्रशासक तथा राजनीतिज्ञ भी था। बर्क के कथानुसार, "उसने भारत में ब्रिटिश राज्य की गहरी नींव डाली। उसने स्वयं कठिनाइयाँ झेलकर आने वाले शासकों के लिए स्पष्ट मार्ग का निर्माण किया जिस पर चलकर कम प्रतिभा वाले उत्तराधिकारी भी अपनी मंजिल पर पहुँच सकें।"

लार्ड क्लाइव भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का संस्थापक था। बंगाल के निवासियों के नाश का भी कारण था। भ्रष्टाचार, दमन तथा कुशासन-व्यवस्था जिनके कारण वहाँ की प्रजा अनेक वर्षों तक पीड़ित रही— का एक बड़ा कारण वह स्वयं था। उसकी धनलिप्सा का उन्माद इतनी सीमा तक बढ़ गया था कि अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ। बंगाल का कोष कुछ लुटेरे लोगों द्वारा लूट लिया गया। ऐसी स्थिति में उन्हें कोई भी वश में न कर सकता था। उसने नवाब को कठपुतली के समान इतना शक्तिहीन तथा अधिकार-हीन कर दिया कि वह किसी का हित नहीं कर सकता था तथा उत्तरदायित्व से दूर भागता था। उसकी योजनाओं में कुछ भी मौलिकता तथा नवीनता नहीं थी। उसकी सफलता का कारण परिस्थितियों तथा धोखाधड़ी का संयोग मात्र है, प्रतिभा का नहीं। **लार्ड कर्जन** के कथनानुसार, "युद्ध के अच्छे पारखी कप्तान के समान महान व्यक्तियों से ऐसा सुना गया है कि फौजी प्रतिभा में वह मार्लबरो के समान था तथा टुरेन से भी बढ़कर था तथा प्रशासक व राजनीतिज्ञ के रूप में तो वह और भी महान् था क्योंकि वह उन लोक सेवाओं का वास्तविक संस्थापक था, जो डेढ़ शताब्दी से भी अधिक समय से भारत में अंग्रेजी राज्य की कीर्ति का कारण बनी रहीं।"

## 3.10 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. ब्रिटिशों की साम्राज्य विस्तार की नीति से आप क्या समझते हो? बंगाल की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. बंगाल में अंग्रेजों के आगमन से आप क्या समझते हो? विस्तार से बताइए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. ब्रिटिशों के साम्राज्य विस्तार नीति की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
2. बंगाल की राजनीतिक स्थिति बताईए।
3. सिराज-उद्-दौला और अंग्रेज पर टिप्पणी लिखिए।
4. प्लासी के युद्ध से आप क्या समझते हो?
5. प्लासी के युद्ध का महत्व बताईए।
6. बक्सर के युद्ध के कारण लिखकर महत्व बताईए।
7. बंगाल की दोहरी शासन व्यवस्था 1765 से आप क्या समझते हो?
8. दोहरे शासन के लाभ बताईए।

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. सन् 1600-1756 के साम्राज्यवाद नीति के समर्थक थे-
   (A) ब्रिटिश (B) पुर्तगाली (C) तुर्की (D) इनमें से कोई नहीं।
2. औरंगजेब ने मुर्शीद कुली जफर खाँ को बंगाल का सूबेदार कब बनाया -
   (A) 1720 में (B) 1705 में (C) 1815 में (D) 1730 में।
3. मुर्शीद कुली खाँ की मृत्यु कब हुई-
   (A) 1750 में (B) 1727 में (C) 1717 में (D) 1721 में।

**NOTES**

4. प्लासी का युद्ध कब हुआ-

   (A) 1760 में (B) 1780 में (C) 1757 में (D) 1725 में।

5. प्लासी के युद्ध के परिणाम -

   (A) क्लाईव को 30,000 पौण्ड की वार्षिक आय की जागीर प्रदान हुई

   (B) अंग्रेजों की प्रतिष्ठा बढ़ी

   (C) अंग्रेजों के अधिकार में बंगाल आ गया

   (D) उपरोक्त सभी।

6. बक्सर का युद्ध कब हुआ-

   (A) 1750 में (B) 1764 में (C) 1780 में (D) 1740 में।

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (B), 4. (C), 5. (D), 6. (B)

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

## 3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

# अध्याय–4 अंग्रेज-मराठा युद्ध
## (ANGLO-MARATHA WARS)

NOTES

**इकाई की रूपरेखा**

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 प्रथम अंग्रेज मराठा युद्ध
4.3 द्वितीय अंग्रेज मराठा युद्ध (1803-1804)
4.4 तृतीय अंग्रेज माराठा युद्ध (1817-1819 ई.)
4.5 महादजी सिंधिया का मूल्यांकन
4.6 नाना फड़नवीस का मूल्यांकन (1742-1800 ई.)
4.7 मराठा और ब्रिटिश संबंध विवेचनात्मक अध्ययन
4.8 सारांश
4.8 अभ्सास प्रश्न
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. द्वितीय अंग्रेज-मराठा युद्ध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. तृतीय अंग्रेज-मराठा युद्ध का वर्णन कर सकेंगे।
4. मराठा और ब्रिटिश संबंध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 4.1 प्रस्तावना

भारत में मुगल साम्राज्य के खंडहरों पर मराठों ने अपना साम्राज्य बनाया। उन्हीं परिस्थितियों का अंग्रेजों ने भी लाभ उठाया। सन् 1772 में पेशवा माधवराव की मृत्यु के बाद मराठों के उत्तराधिकारियों में संघर्ष प्रारंभ हो गया। पूना में माधवराव की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई नारायणराव पेशवा बना, परन्तु उसका चाचा रघुनाथराव स्वयं पेशवा बनने की इच्छा रखता था। अतः 1773 ई. में रघुनाथराव ने नारायणराव की हत्या कर दी और स्वयं पेशवा बनने का प्रयत्न किया, परन्तु उसकी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। नारायणराव की विधवा पत्नी गर्भवती थी, परंतु आगे चलकर उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम माधवराव नारायण रखा गया और जिसे मराठा सरदारों ने नाना फड़नवीस के नेतृत्व में पेशवा स्वीकार कर लिया। इससे निराश होकर रघुनाथराव अंग्रेजों से मिला और उनसे सहायता पाने का प्रयत्न किया और 7 मार्च, 1775 को रघुनाथराव ने अंग्रेज सरकार के साथ एक संधि की जिसे सूरत की संधि कहते हैं। जिसके अनुसार- (A) अंग्रेज, रघुनाथराव (राधोबा) को पेशवा बनाने हेतु 2500 सैनिकों से सहायता करेंगे। (B) इन सैनिकों का व्यय रघुनाथराव वहन करेगा। (C) सालसीट, बेसीन तथा समीपवर्ती टापू अंग्रेजों को प्राप्त होंगे। (D) मराठे बंगाल तथा कर्नाटक पर आक्रमण करना बन्द कर देंगे। (E) पूना दरबार से राघोबा द्वारा सन्धि करने पर अंग्रेज भी सम्मिलित किये जायेंगे। आलोचकों का मत है कि वास्तव में यह सूरत की संधि ही प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध की पृष्ठभूमि का कारण थी।

## 4.2 प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध (1775-1782)

अंग्रेजों ने रघुनाथराव से सूरत की संधि करने के पश्चात कर्नल कीटिंग के नेतृत्व में 18 मई, 1775 को मराठा सेना से आरास में युद्ध कर उसे परास्त किया। इस प्रकार आंतरिक संघर्ष ही मराठों की हार का कारण बना। कलकत्ता की कौंसिल ने बम्बई सरकार की इस कार्यवाही का अनुमोदन नहीं किया। उसने इसे अनधिकारपूर्ण चेष्टा बतलाया तथा सूरत की सन्धि को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और लेफ्टिनेन्ट उपटन को पूना दरबार से सन्धि के लिये भेजा। परिणामस्वरूप कोलकाता की अंग्रेज सरकार तथा पूना दरबार के मध्य 1 मार्च, 1776 ई. को पुरन्दर की सन्धि सम्पन्न हो गयी।

**पुरन्दर की संधि की शर्तें** - इस संधि की निम्न शर्तें थीं- (a) अंग्रेजों तथा मराठों में प्रत्येक स्थान पर शान्ति स्थापित रहेगी। (b) अंग्रेजों को केवल सालसीट प्राप्त होगा। (c) पूना दरबार राघोबा को 25,000 रुपये प्रतिमाह पेन्शन के रूप में देगा और वह गुजरात चला जायेगा।

बम्बई की सरकार ने पुरन्दर सन्धि को महत्व नहीं दिया तथा राघोबा को संरक्षण प्रदान करती रही। इसी समय यूरेप की राजनीति में गम्भीर परिवर्तन हुआ। अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम प्रारम्भ हो गया, फ्रांस ने अमेरिका की सहायता की तथा अंग्रेजों के प्रभाव को प्रत्येक क्षेत्र से समाप्त करने का निश्चय किया। नाना फड़नवीस से फ्रांसीसियों के संबंध घनिष्ठ हो गये, इससे अंग्रेज सशंकित हो उठे। अतः बम्बई सरकार ने पुनः हस्तक्षेप किया और नवम्बर 1778 ई. में अंग्रेज सेना को सामयिक लाभ प्राप्त करने के लिए भेजा। यह अंग्रेज सेना बुरी तरह पराजित हुई, फलस्वरूप बम्बई की सरकार को पूना दरबार से बादगाँव का समझौता (1779 ई.) करने के लिए विवश होना पड़ा।

वारेन हेस्टिंग्ज ने इस अपमानजनक समझौते का अनुमोदन नहीं किया तथा अंग्रेजों की प्रतिष्ठा हेतु गोडार्ड के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सेना बंगाल से प्रस्थान करने की आज्ञा दी। इस सेना ने फरवरी 1780 ई. में अहमदाबाद पर और दिसम्बर 1780 ई. में बेसीन पर अधिकार कर लिया।

अक्टूबर 1781 ई. में सिन्धिया ने अंग्रेजों से सुलह कर लिया और तदुपरान्त पूना दरबार से समझौता सम्पन्न करा दिया। सिन्धिया की मध्यस्थता से पूना दरबार और अंग्रेजों में 17 मई, 1782 ई. को सालबाई की सन्धि सम्पन्न हो गयी।

**सालबाई की संधि** - इस संधि की शर्तें निम्न प्रकार थीं- (a) सालसीट अंग्रेजों को प्राप्त हो गया। (b) अंग्रेजों ने राघोबा का पक्ष त्याग दिया। पूना दरबार ने उसकी पेंशन की व्यवस्था कर दी। (c) सिन्धिया को यमुना नदी के पश्चिम की भूमि पुनः प्राप्त हो गयी। (d) बम्बई तथा दक्षिण में एक-दूसरे के विजित क्षेत्र पुनः वापस कर दिये गये।

लार्ड डावेल के अनुसार इस युद्ध और संधि से अंग्रेजों को साम्राज्य की दृष्टि से कोई अधिक महत्व नहीं हुआ। उन्हें केवल इससे सालसीट प्राप्त हुआ जबकि उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ बहुत बढ़ गयीं। इसी संधि के फलस्वरूप मराठों तथा कंपनी के बीच अगले 20 वर्षों तक शान्ति बनी रही।

## 4.3 द्वितीय अंग्रेज-मराठा युद्ध (1803-1804)

जिस समय लार्ड वेलेजली गवर्नर जनरल बनकर भारत आया तब मराठे आंतरिक कलह के शिकार थे। सिन्धिया और होल्कर परस्पर एक दूसरे के शत्रु थे। बाजीराव द्वितीय पेशवा निर्बल प्रकृति का षड्यन्त्रकारी व्यक्ति था। वह मराठों का नेतृत्व करने की क्षमता नहीं रखता था। ऐसी परिस्थितियों में यह बिल्कुल सम्भव नहीं था कि मराठे, अंग्रेजों के विरुद्ध संगठित होकर कोई कार्यवाही कर सकेंगे। यह बात वेलेजली पूर्णरूप से समझ चुका था। अतः वह प्रारम्भ से ही मराठा शक्ति के विनाश के लिए कृतसंकल्प था। टीपू के साथ युद्ध में भी मराठों ने कम्पनी की कोई सहायता नहीं की थी। अतः टीपू के विनाश के उपरान्त अब मराठों की बारी थी। इस पृष्ठभूमि तथा इन कारणों के अतिरिक्त द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध का मुख्य कारण मराठों का आन्तरिक संघर्ष था, जिसमें अंग्रेजों को मराठों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त हुआ था।

1800 ई. में नाना फड़नवीस और मृत्यु के उपरान्त पूना दरबार षड्यंत्रों का केन्द्र बन गया। पेशवा और सिंधिया ने इस अवसर पर अपने शत्रुओं के विरुद्ध परस्पर सहायता देने का एक-दूसरे को आश्वासन दिया। इससे

पारस्परिक शत्रुता को और भी प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। तदुपरान्त मालवा में सिन्धिया तथा होल्कर के मध्य संघर्ष आरम्भ हो गया। इसी समय विठ्ठू जी होल्कर का वध कर दिया गया। उसका भाई जसवन्तराव होल्कर, अपने भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए मालवा से दक्षिण के लिये प्रस्थान कर गया तथा 25 अक्टूबर, 1892 ई. को उसने पूना के निकट एक युद्ध में पेशवा और सिन्धिया की संयुक्त सेनाओं को पराजित कर दिया। पूना पर होल्कर का अधिकार हो गया तथा पेशवा को सिंहगढ़ भाग जाना पड़ा। जब सिंहगढ़ में भी उसकी स्थिति संकटापन्न हो गई तो उसने बेसीन में शरण प्राप्त की। होल्कर ने पेशवा की गद्दी पर विनायकराव को बैठा दिया। भागा हुआ पेशवा बाजीराव द्वितीय ने निराश होकर अंग्रेजों से सहायता की याचना की कि जिससे उसे पुनः पेशवा की गद्दी प्राप्त हो सके। फलस्वरूप 31 दिसम्बर, 1802 ई. को बाजीराव द्वितीय ने वेलेजली की सहायक सन्धि स्वीकार कर ली तथा प्रख्यात बेसीन की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिए।

**बेसीन की संधि की शर्तें -** इस संधि की शर्तें निम्नलिखित थीं– (a) बाजीराव द्वितीय तथा अंग्रेज कम्पनी ने एक-दूसरे की सुरक्षा का आश्वासन दिया। (b) बाजीराव द्वितीय की सहायतार्थ 6000 सैनिक तथा तोपखाना देने का आश्वासन अंग्रेजों ने दिया। (c) बाजीराव द्वितीय ने इस सहायक सेना के व्यय के लिये 26 लाख रुपये वार्षिक आय की भूमि देने का आश्वासन दिया। (d) किसी अन्य यूरोपियन से संबंध न रखने का आश्वासन बाजीराव द्वितीय ने दिया। (e) किसी अन्य राज्य से संबंध बिना अंग्रेजों की अनुमति से बाजीराव द्वितीय नहीं रखेगा। (f) सूरत अंग्रेजों को प्रदान कर दिया।

इस प्रकार बेसीन की सन्धि द्वारा पेशवा बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेज कम्पनी का संरक्षण और सहायता प्राप्त की तथा अपनी स्वतंत्रता को खो दिया। परन्तु इस संधि से ही अंग्रेजों को सर्वोच्चता प्राप्त नहीं हो गई, सर्वोच्चता हेतु उन्हें संघर्ष करना पड़ा था। आर्थर वेलेजली का कथन इस दृष्टिकोण से अधिक समीचीन है- "यह एक ऐसी सन्धि थी जो सिफर के बराबर थी।" वास्तव में इस सन्धि मात्र से अंग्रेजों को कोई लाभ नहीं हुआ था। समस्त मराठों ने इस सन्धि को अपना अपमान समझा तथा अपनी स्वतंत्रता का अपहरण अनुभव किया। उन्होंने अपने मतभेदों को भुलाकर संयुक्त होकर अंग्रेजों का विरोध करने का निश्चय किया, यद्यपि यह प्रयास सफल नहीं हो सका। बाजीराव द्वितीय स्वयं भी इस संधि से संतुष्ट नहीं था, उसने स्वतः ही मराठों में अंग्रेजों के विरुद्ध पत्र-व्यवहार किया। अगस्त 1803 ई. में युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध की योजना अंग्रेजों द्वारा निश्चित तथा स्पष्ट कार्यक्रम के अनुसार थी। मराठों ने किसी निश्चित कार्यक्रम की योजना निर्धारित नहीं की थी। अंग्रेजों की उत्तर भारत की सेना का नेतृत्व जनरल लेक तथा दक्षिण भारत की सेना का नेतृत्व आर्थर वेलेजली कर रहे थे। अंग्रेजों ने मराठों को संगठित नहीं होने दिया। मराठों ने भी अपनी सेनाओं को संयुक्त करने का कोई प्रयास नहीं किया। पाँच माह के संघर्ष में अंग्रेजों ने दो मुख्य मराठा सरदार सिन्धिया तथा भोंसले को पराजित कर दिया। दिसम्बर 1803 ई. में भोंसले से देवगाँव की सन्धि और सिन्धिया से सुर्जीअर्जुन गाँव की सन्धि सम्पन्न हो गयी। इन सन्धियों से विस्तृत भू-प्रदेश अंग्रेजों को प्राप्त हुआ तथा दोनों ने अंग्रेजों की सर्वोच्चता को स्वीकार किया और अंग्रेज रेजीमेण्ट रखने को तैयार हुए। अब अंग्रेजों की स्थिति सुदृढ़ हो गई थी, परन्तु मराठों में संघर्ष पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ था। अतः अप्रैल 1804 ई. में होल्कर को जनरल लेक ने फरुखाबाद के युद्ध में पराजित किया, परन्तु होल्कर को सन्धि करने के लिए विवश नहीं किया जा सका तथा इसी समय वेलेजली को भारत से वापस बुला लिया गया। वेलेजली का उत्तराधिकारी कार्नवालिस तथा उसका उत्तराधिकारी सर जार्ज बार्लो ने मराठों से सन्तोषपूर्ण समझौते की नीति अपनायी। फलस्वरूप शान्ति की स्थापना की गयी। होल्कर के राज्य में हस्तक्षेप न करने का आश्वासन अंग्रेजों ने दिया तथा नम्रता की नीति अपनायी। मराठा सरदारों को इस कारण पुनः अपनी शक्ति को सुदृढ़ करने का अवसर प्राप्त हो गया, परन्तु यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि वेलेजली की मराठा नीति तथा द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध अंग्रेजों के लिये विशेष लाभदायक सिद्ध हुए थे।

**बोध प्रश्न**

1. पुर-दर की संधि का वर्णन कीजिए।

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2. वेसीन की संधि की शर्तें लिखिए?

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

NOTES

## 4.4 तृतीय अंग्रेज-मराठा युद्ध (1817-1819 ई.)

वारेन हेस्टिंग्स ने जब पदभार संभाला तो उसका प्रथम कार्य भरोसे को समाप्त करना था क्योंकि उसने यह अनुभव कर लिया था कि अंग्रेजों को अपनी सर्वोच्चता के लिये मराठों से युद्ध करना पड़ेगा। जब उसने पिंडारियों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की थी, तभी उसने मराठा शक्ति से भी युद्ध करने का निश्चय कर लिया था, परन्तु उसका प्रयत्न था कि एक साथ पिंडारियों तथा मराठों से युद्ध करना पड़ा। उसका यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ और उसके साथ ही दोनों शक्तियों से युद्ध करना पड़ा।

19वीं सदी के आरम्भ में मराठों की स्थिति सन्तोषप्रद नहीं थी। मराठे जार्ज बार्लो और लार्ड मिन्टो के समय में अंग्रेज कम्पनी द्वारा अपनायी गयी "हस्तक्षेप न करने की नीति" का भी लाभ उठा पाने में असमर्थ हुए थे और विगत दो आंग्ल-मराठा युद्धों से भी कुछ सीख न सके थे। उनमें एकता का अभाव था। पेशवा बाजीराव द्वितीय अपने सलाहकार त्रिम्बकजी के हाथ की कठपुतली मात्र था। वह शासन में आयोग्य सिद्ध हो चुका था। दौलतराव सिन्धिया की वित्त व्यवस्था सोचनीय थी। उसका सेना पर नियंत्रण भी नहीं था। जसवंतराव होल्कर की मृत्यु हो चुकी थी। उसकी पत्नी तुलसीबाई और पठान सरदार अमीर खाँ व्यवस्था स्थापित करने में असमर्थ सिद्ध हुए थे, जसवन्तराव होल्कर का पुत्र मल्हारराव द्वितीय नाबालिक था। रघुजी भोंसले द्वितीय की आन्तरिक स्थिति में सम्मिलित नहीं होना चाहता था। इस प्रकार मराठे, अंग्रेजों की शक्ति का मुकाबला करने में पूर्णतः अशक्त थे। दूसरी ओर पेशवा बाजीराव द्वितीय आंग्ला-मराठा युद्ध के पश्चात से अंग्रेजों से अत्यधिक असन्तुष्ट था क्योंकि उसे पूर्णतः अंग्रेजों ने अपना वशवर्ती बना रखा था। उसने भोंसले, सिन्धिया तथा होल्कर के पास अपने प्रतिनिधि भेजकर अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान किया। अंग्रेजों के मित्र गायकवाड़ से अहमदाबाद क्षेत्र की माँग की और जब गायकवाड़ का दूत गंगाधर शास्त्री इस संबंध में बातचीत के लिये पूना पहुँचा तो उसका वध करा दिया। अंग्रेज रेजीडेण्ट एलफिन्सटन ने इसके लिए पेशवा के सलाहकार त्रिम्बकजी को उत्तरदायी ठहराया तथा बाजीराव द्वितीय से त्रिम्बकजी की माँग की। पेशवा ने विवश होकर त्रिम्बकजी को अंग्रेजों को सौंप दिया, किन्तु त्रिम्बकजी लगभग एक वर्ष पश्चात बन्दीगृह से भाग निकला। इसके लिये भी अंग्रेजों ने पेशवा को उत्तरदायी बतलाया। इस प्रकार पेशवा तथा अंग्रेजों के मध्य संघर्ष प्रारम्भ हो गया। 1817 ई. में जब बाजीराव द्वितीय ने मराठा संघ को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया तो लॉर्ड हेस्टिंग्ज ने भी 'हस्तक्षेप न करने की नीति' को त्यागकर संघर्ष की तैयारी प्रारम्भ कर दी थी। हेस्टिंग्ज के संकेत पर एलफिन्सटन ने बाजीराव द्वितीय को 13 जून, 1817 ई. को एक कठोर सन्धि पर हस्ताक्षर के लिये विवश किया जिसे पूना की संधि कहते हैं।

**पूना की संधि की शर्तें** - इस संधि की निम्नलिखित शर्तें थीं– (a) बाजीराव ने त्रिम्बकजी को अंग्रेजों को सौंपने का आश्वासन दिया व तब तक अपने परिवार को बन्धक रखना स्वीकार किया। (b) उसने मराठा संघ के प्रमुख का पद त्याग दिया तथा यह आश्वासन दिया कि बिना अंग्रेज रेजीडेण्ट की अनुमति के किसी विदेशी व्यक्ति से सम्पर्क नहीं रखेगा। (c) मराठा सरदार ने गायकवाड़ से सभी स्वत्व त्याग दिया। (d) कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र अंग्रेजों को प्रदान कर दिए।

इसी प्रकार की सन्धि भोंसले से सम्पन्न की गई, जिसे नागपुर दरबार की सन्धि कहते हैं। गायकवाड़ से पुनः सन्धि करके अंग्रेजों ने उसे अपना वशवर्ती ही बना लिया। इसी समय दौलतराव सिंधिया से सन्धि की गई जिसे ग्वालियर की संधि कहते हैं। इस प्रकार ये सभी सन्धियाँ तृतीय अंग्रेज-मराठा युद्ध का कारण बनीं। अन्ततोगत्वा तृतीय मराठा युद्ध पेशवा बाजीराव द्वितीय के विद्रोह से आरम्भ हुआ। सभी मराठा सरदार अपमान से त्राण पाने के लिए व्यग्र थे। उन सभी ने विवशता से सन्धियाँ की थीं। 5 नवम्बर, 1817 ई. को पेशवा बाजीराव द्वितीय ने किरकी की रेजीडेन्सी पर आक्रमण किया और उसे जला दिया। यह तृतीय मराठा युद्ध का प्रारम्भ था। उसी समय आप्पा साहब भोंसले ने नागपुर में और मल्हारराव ने इन्दौर में अंग्रेजों के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र उठा लिये, परन्तु सभी को अंग्रेजों के समक्ष पराजित होना पड़ा। पेशवा बाजीराव द्वितीय की कोरेगाँव और अस्थी में जनवरी-

फरवरी 1818ई. को पूर्ण पराजय हो गई। जून 1818 ई. में उसने आत्मसमर्पण कर दिया। पेशवा का पद समाप्त कर दिया गया तथा अंग्रेजों ने उसके सम्पूर्ण राज्य पर अधिकार कर लिया। पेशवा बाजीराव द्वितीय को आठ लाख रुपया पेंशन देकर बिठूर (कानपुर के समीप) भेज दिया गया।

**मराठों के पतन के कारण -** विद्वानों का मत है कि सन् 1600 के बाद भारत में आए अंग्रेजों ने भारत का शासन मुगलों से प्राप्त नहीं किया था अपितु मराठों से प्राप्त किया था, क्योंकि औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य शीघ्रता से पतन को प्राप्त होता चला गया एवं उसका स्थान तेजी से उठती हुई मराठा शक्ति ने ग्रहण किया। जब अंग्रेज अपनी सुरक्षा के लिये फ्रांसीसियों से संघर्षरत थे तथा बंगाल के नवाब के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहे थे, उस समय भारत की भाग्य विधाता मराठा शक्ति ही थी। सम्पूर्ण भारत पर मराठों का आतंक छाया हुआ था और वे प्रायः भारत के प्रत्येक क्षेत्र से चौथ तथा सरदेशमुखी कर वसूल करते थे। गुजरात से बंगाल तक और पंजाब से कुमारी अन्तरीप तक मराठा शक्ति स्थापित थी। मुगल सम्राट उनका पेन्शनभोगी था। राजस्थान, अवध, मालवा, बुन्देलखण्ड, महाराष्ट्र आदि उनके प्रत्यक्ष नियंत्रण में थे। इस प्रकार भारत में मराठों की शक्ति सर्वश्रेष्ठ थी। अंग्रेज ही मराठों के उत्तराधिकारी बने। यह महान् मराठा शक्ति अंग्रेजों के प्रथम प्रहार से ही धराशायी हो गयी। वारेन हेस्टिंग्ज के समय में मराठा शक्ति की दुर्बलतायें परिलक्षित हुईं। उनके राज्य सीमित हो गये तथा उनके राज्यों में अंग्रेजों की सेनायें नियुक्त कर दी गयीं। इस प्रकार सम्पूर्ण भारत को आतंकित करने वाले मराठे अंग्रेजों के दास बन गये। मराठों के पतन के निम्नलिखित कारण थे—

**(1) मराठों की आन्तरिक दुर्बलतायें -** मराठों में एकता का अभाव था। मराठा राज्य एक संघ राज्य था। इस संघ राज्य में प्रत्येक शक्तिशाली सरदार स्वतंत्र रीति, नीति से कार्य करता था। नाममात्र की एकता भी पेशवा माधवराव की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गयी थी। पेशवा निर्बल हो गये थे। सिन्धिया, होल्कर, भोंसले तथा गायकवाड़ आदि सरदार स्वतंत्र शासक की भाँति व्यवहार करने लगे थे। वे अपने स्वार्थों के लिये परस्पर संघर्षरत थे। अतः अंग्रेजों को इनके आन्तरिक संघर्ष में हस्तक्षेप करने का अवसर प्राप्त होता चला गया। इस प्रकार मराठों का पारस्परिक संघर्ष, एकता का अभाव और एक केन्द्रित राज्य की कमी उनकी सबसे बड़ी दुर्बलतायें बन गयीं जिससे उनका पतन हो गया। मराठों का लक्ष्य केवल धन लूटना था। इस प्रकार का राज्य नागरिकों की निष्ठा प्राप्ति नहीं कर सकता है। जदुनाथ सरकार ने इस दुर्बलता को प्रकट करते हुए कहा है कि महाराष्ट्र के नागरिकों में भी वास्तविक एकता न थी जो भी थी वह नाममात्र को और दिखावे की थी और इसी कारण वह दुर्बल थी। महाराष्ट्र का धार्मिक और राष्ट्रीय आन्दोलन जिसने महाराष्ट्र को, मुगल साम्राज्य को समाप्त करने की शक्ति प्रदान की थी, अब अपनी शक्ति खो चुका था।

मराठों की यह दुर्बलतायें उन्नीसवीं सदी में स्पष्ट हो गयीं जब उन्हें संगठित यूरोपीय जाति से संघर्ष करना पड़ा। जिस समय मराठों को अंग्रेजों से संघर्ष करना पड़ा, मराठे अपने जातीय गुणों को भी भूल चुके थे। समानता, सादगी, कर्मठता, संयम और कठोर जीवन आदि ने उनको मुगलों के विरुद्ध सफलता प्रदान की थी, उन्हें महान बनाया था, परन्तु अब उनमें इन गुणों का पूर्ण अभाव हो गया था। सामन्त प्रथा तथा ऊँच-नीच की भावना से उनकी सामाजिक एकता का ह्रास हो गया था। वे अपने आदर्शों से दूर हो गये थे। लूटमार तथा उत्तर भारत की सम्पत्ति ने उन्हें विलासप्रिय बना दिया था। उनके प्रमुख नेताओं का नैतिक पतन हो गया था।

**(2) मराठों की सैन्य व्यवस्था का दुर्बल होना -** अंग्रेजों की अपेक्षा मराठों की सैन्य-व्यवस्था निश्चय ही दुर्बल थी। यूरोपीय सैनिक प्रणाली अपनाने के कारण मराठों को विभिन्न जातियों के सैनिक भर्ती करने पड़े जिससे उनकी सेना की राष्ट्रीय भावना लुप्त हो गयी और उनमें वह शक्ति न रही जो शिवाजी के समय थी। वेलेजली ने लिखा था कि मराठों ने अपनी परम्परागत गुरिल्ला युद्ध पद्धति को त्याग दिया था जो उनकी पराजय का कारण बन गया था। इसके अतिरिक्त घुड़सवार सेना के संगठन और उपयोग पर बल देना, मराठा सैन्य-व्यवस्था की अन्य दुर्बलता थी। परन्तु उनकी दुर्बलता का मुख्य कारण यूरोपियन युद्ध के तरीकों और हथियारों को अपनाकर उनकी पूर्णता को प्राप्त न करना था।

**(3) अकुशल नेतृत्व -** अठारहवीं सदी के अन्त तक सभी कुशल मराठा सरदारों की मृत्यु हो गयी थी। महादजी सिन्धिया की 1794 ई. में, अहिल्याबाई होल्कर की 1795 ई. में, पेशवा सवाई माधवराव की 1795 ई. में, तुकोजी होल्कर की 1797 ई. में और नाना फड़नवीस की 1800 ई. में मृत्यु हो गयी थी। इन कुशल नेताओं के पश्चात दुर्बल पेशवा बाजीराव द्वितीय, स्वार्थ दौलतराव सिन्धिया अपनी महत्वाकांक्षा से पीड़ित जसवन्तराव होल्कर जैसे अकुशल नेता मराठों को प्राप्त हुए जिनमें योग्यता तथा चरित्र दोनों की कमी थी। दूसरे पक्ष में इन्हीं

के समकालीन एलफिन्सटन, माल्कम, आर्थर वेलेजली, जनरल लेक, लॉर्ड वेलेजली, लॉर्ड हेस्टिंग्ज सदृश योग्य अंग्रेज थे जो राजनीतिक तथा सैनिक सभी मामलों में मराठों से अधिक कुशल थे।

**(4) मराठा राज्य की आर्थिक व्यवस्था का सोचनीय होना -** मराठों ने अपने राज्य की आर्थिक व्यवस्था पर गम्भीरता से कभी भी दृष्टिपात नहीं किया। एक विस्तृत साम्राज्य के पश्चात् भी मराठों ने कृषि, उद्योग तथा व्यापार की प्रगति के लिये कोई कार्य नहीं किया। इस प्रकार राज्य का आर्थिक ढाँचा सुदृढ़ न हो सका। मराठों की आय का मुख्य साधन जबरदस्ती से वसूल की गयी चौथ और सरदेशमुखी तथा लूटमार बनी रही। मराठा राज्य की प्रजा सम्पन्न न बन सकी और न राज्य समृद्धशाली हो सका। ऐसा राज्य जिसकी आय का साधन केवल लूट-पाट हो, स्थायी नहीं हो सकता था।

NOTES

**(5) अंग्रेजों की कूटनीति तथा गुप्तचर व्यवस्था का श्रेष्ठ होना -** निःसंदेह अंग्रेज कूटनीति में मराठों से अधिक श्रेष्ठ थे। उन्होंने सदैव यह प्रयत्न किया कि मराठा सरदारों की संयुक्त शक्ति से उन्हें युद्ध न करना पड़े और अपने इस प्रयत्न में वे सफल रहे। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय मराठा युद्धों में उनकी कूटनीति सफल थी। अपनी कूटनीति से वे सम्पूर्ण भारत के राज्यों को एक-एक कर पराजित करते रहे। मराठों में इस प्रकार की श्रेष्ठ कूटनीति का अभाव रहा। अंग्रेजों की गुप्तचर व्यवस्था भी मराठों से श्रेष्ठ थी। अपनी श्रेष्ठ गुप्तचर व्यवस्था के द्वारा अंग्रेज, मराठों की शक्ति, सैन्य-संचालन, उनके पारस्परिक संबंधों आदि सभी की जानकारी प्राप्त कर लेते थे, परन्तु मराठे, अंग्रेजों की शक्ति, नीति तथा व्यवहार से सर्वथा अनभिज्ञ ही बने रहे। अतः अंग्रेजों की कूटनीति तथा गुप्तचर व्यवस्था का श्रेष्ठ होना, मराठों की पराजय का पाँचवाँ मुख्य कारण था।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त यह तथ्य भी विचारणीय है कि अंग्रेज स्वतंत्रता, समानता, राष्ट्रीयता तथा साम्राज्यवाद के विचारों से प्रभावित होकर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे थे। मराठे ऐसे किसी भी उत्सावर्धक विचार की कल्पना तक नहीं कर सके।

## 4.5 महादजी सिन्धिया का मूल्यांकन (1727-1794 ई.)

महादजी सिन्धिया ने मराठा राज्य की स्वामीभक्ति से अकथनीय सेवा की थी। उसने मराठा राज्य तथा प्रभाव को उत्तर भारत में स्थापित कर दिया था। महादजी का जीवन परिश्रमयुक्त जीवन था। उसने प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध में अंग्रेजों को पराजित कर दिया था। उसका वैयक्तिक जीवन कलंकहीन तथा पवित्र था।

महादजी सिन्धिया की मृत्यु से मराठों का सबसे योग्य योद्धा, अत्यन्त दूरदर्शी शासक खो गया। जीवन में उसके दो मुख्य उद्देश्य थे– प्रथम, एक राज्य का निर्माण करना और दूसरा, अंग्रेजों से प्रतिस्पर्धा करना। इन दोनों उद्देश्यों में उसे सफलता प्राप्त हुई थी। उसके द्वारा स्थापित राज्य आज भी है। "महादजी सिन्धिया एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व के रूप में उत्तर भारत में छाया रहा। उसमें स्वाभाविक नम्रता तथा सभी के लिये सम्मान की भावना विद्यमान थी। वह अपने समय का सबसे महान् तथा सफल सेनापति था।"

**बोध प्रश्न**

1. पूना की संधि की शर्तें लिखिए?

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

2. महादजी सिंधिया का मूल्यांकन कीजिए?

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

## 4.6 नाना फड़नवीस का मूल्यांकन (1742-1800 ई.)

नाना फड़नवीस गम्भीर प्रकृति का अध्ययनशील तथा संयमी व्यक्ति था। वह शासन की समस्त बातों की जानकारी रखता था तथा बड़े परिश्रम से शासन के कार्य संचालित करता था। वह न्यायप्रिय तथा व्यवहार में स्पष्ट था। कठोर स्वभाव के कारण अधिकांश मराठों का उसे समर्थन प्राप्त नहीं था। वह सैन्य-संचालन की इस कमी को कूटनीति से हल कर लिया करता था। "नाना फड़नवीस की मृत्यु के साथ ही ब्राह्मण राज्य का अन्त हो गया व पूना का पतन हो गया।" सर रिचार्डटेम्बल ने भी लिखा है- "इस महान् मंत्री की मृत्यु से मराठा राज्य की ईमानदारी और कुशलता समाप्त हो गयी।"



## 4.7 मराठा और ब्रिटिश सम्बन्ध विवेचनात्मक अध्ययन

पेशवा नारायण राव की हत्या (1773 ई.) के उपरान्त मराठों के आपसी संघर्ष तथा अंग्रेजों की महत्वाकांक्षाओं ने आंग्ल-मराठा संघर्ष की पृष्ठभूमि निर्मित कर दी। 1775 ई. में पेशवा बनने की महत्वाकांक्षा संजोये रघुनाथ राव (राघोवा) तथा अंग्रेजों के मध्य सूरत की सन्धि सम्पन्न हुई। इसी सन्धि के फलस्वरूप प्रथम आंग्ला-मराठा युद्ध हुआ, युद्ध का यह दौर 1775 ई. से 1782 ई. में सालबाई की सन्धि (अंग्रेज तथा महादजी सिन्धिया के मध्य) से प्रथम आंग्ल-मराठा युद्ध समाप्त हो गया तथा दोनों पक्षों ने एक-दूसरे के विजित क्षेत्र वापस कर दिए। अंग्रेज-मराठों के संघर्ष का दूसरा दौर फ्रांसीसी भय से संलग्न था, क्योंकि फ्रांसीसियों का पूना दरबार में प्रभाव बढ़ रहा था। अतः अंग्रेज-मराठों को नियंत्रित करने के लिए प्रयत्नरत हुए। मराठों के आपसी संघर्ष से त्रस्त (जसवन्तराव होल्कर से भयभीत) षड्यंत्रकारी पेशवा बाजीराव द्वितीय ने पूना से भागकर बेसीन में शरण ली और 1802 ई. में अंग्रेजों से एक सन्धि (बेसीन की सन्धि) सम्पन्न की। सन्धि के अनुसार -

(i) पेशवा बाजीराव द्वितीय ने अंग्रेजी संरक्षण स्वीकार कर अंग्रेज कम्पनी की सेना को पूना में रखना स्वीकार किया,

(ii) पेशवा बाजीराव द्वितीय ने सूरत नगर अंग्रेज कम्पनी को दे दिया,

(iii) पेशवा बाजीराव द्वितीय ने निजाम से चौथ प्राप्त करने का अधिकार त्याग दिया और अपने विदेशी मामले कम्पनी के अधीन कर दिए।

मराठों के लिए यह सन्धि अपमानजनक थी अतः उनका क्षुब्ध होना स्वाभाविक था, इसी पृष्ठभूमि में मराठों ने द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1803-1806 ई.) का सूत्रपात करते हुए भोसले ने 1803 ई. में युद्ध प्रारम्भ कर अंग्रेजों को चुनौती दी, भोंसले शीघ्र पराजित हो गया तथा उसने 1803 ई. में अंग्रेजों से देवगाँव की सन्धि की, इस सन्धि द्वारा उसने कटक व वर्धा नदी के पश्चिमी क्षेत्र अंग्रेजों को सौंप दिए। सिन्धिया ने भी 1803 ई. में सुरजी अर्जुनगाँव की सन्धि करके गंगा-यमुना के क्षेत्र अंग्रेजों को सौंप दिए। होल्कर भी 1804 ई. में पराजित हुआ और उसने राजपुर घाट की सन्धि करके शान्ति पुनः स्थापित की, 1805 ई. में कार्नवालिस ने सिन्धिया के साथ पुनः सन्धि कर वापस ग्वालियर और गोहद के दुर्ग तथा चम्बल के उत्तर का क्षेत्र अंग्रेजों ने सन्धि कर उसके विजित क्षेत्र वापस कर दिए।

## 4.8 सारांश

लॉर्ड हेस्टिंग्स के भारत में गवर्नर जनरल बनकर आने के पश्चात् (1813 ई.) अंग्रेजी नीति का लक्ष्य मराठा प्रभाव को पूर्णतः समाप्त करना निश्चित हुआ, इसी नीति के अंतर्गत सिन्धिया के साथ नवम्बर, 1817 ई. में ग्वालियर की सन्धि की गई। पेशवा बाजीराव द्वितीय के साथ जून 1817 ई. में पूना की सन्धि की गई जिसके अनुसार पेशवा ने मराठा संघ की अध्यक्षता त्याग दी और कुछ सामरिक महत्व के क्षेत्र अंग्रेजों को सौंप दिए। नागपुर के भोंसले ने मई 1816 ई. में सहायक सन्धि स्वीकार कर ली। इन समस्त सन्धियों से क्षुब्ध पेशवा, भोंसले होल्कर ने अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया जो तृतीय आंग्ल-मराठा युद्ध (1817-1818 ई.) कहलाता है। अंग्रेजों ने त्वरित कार्यवाही कर किरकी में पेशवा की, सीताबाल्दी में भोंसले की और महीदपुर में होल्कर की सेनाओं को पराजित कर मराठों की सैन्य शक्ति समाप्त कर दी। पेशवा बाजीराव द्वितीय ने कोरगाँव (जनवरी, 1818 ई.), अप्टी (फरवरी, 1818 ई.) में अन्तिम संघर्ष कर अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया, अंग्रेजों ने पेशवा पद

को समाप्त कर बाजीराव द्वितीय को पेंशन देकर कानपुर के निकट बिठूर भेज दिया। इस प्रकार 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते लगभग अंग्रेजों ने संपूर्ण मराठा शासन को ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन कर लिया।

## 4.9 अभ्यास प्रश्न

NOTES

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. अंग्रेज-मराठा युद्ध की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. मराठों के पतन के कारण बताइए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. अंग्रेज-मराठा युद्ध से आप क्या समझते हो?
2. प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध पर टिप्पणी लिखिए।
3. द्वितीय अंग्रेज-मराठा युद्ध पर टिप्पणी लिखिए।
4. मराठों के पतन के कोई दो कारण बताइए।

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. माधवराव की मृत्यु के पश्चात् पेशवा बना -

   (A) नारायणराव (B) रघुनाथराव (C) फड़नवीस (D) कर्नल।
2. सूरत की संधि हुई-

   (A) 1750 में (B) 1775 में (C) 1780 में (D) 1720 में।
3. प्रथम अंग्रेज-मराठा युद्ध प्रारंभ हुआ-

   (A) 1760 में (B) 1725 में (C) 1775 में (D) 1790 में।
4. सालबाई की संधि की शर्तें -

   (A) सालसीट अंग्रेजों को प्राप्त हो गया

   (B) अंग्रेजों ने राघोवा का पक्ष त्याग दिया

   (C) सिन्धिया को यमुना नदी के पश्चिम की भूमि पुनः प्राप्त हुई -

   (D) उपरोक्त सभी।
5. नाना फड़नवीस की मृत्यु कब हुई -

   (A) 1800 में (B) 1780 में (C) 1795 में (D) 1820 में।

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (C), 4. (D), 5. (A)

## 4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

# अध्याय–5 अंग्रेज-मैसूर युद्ध
## (ANGLO-MYSORE WARS)

NOTES

**इकाई की रूपरेखा**

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 अंग्रेज-मैसूर संबंध
5.3 प्रथम अंग्रेज-मैसूर युद्ध (1766-1769)
5.4 द्वितीय अंग्रेज मैसूर युद्ध (1780-1784)
5.5 तृतीय अंग्रेज मैसूर युद्ध (1790-1792)
5.6 चतुर्थ अंग्रेज मैसूर युद्ध (1799 ई.)
5.7 हैदरअजी का चरित्र और मूल्यांकन
5.8 टीपू सुल्तान का चरित्र तथा मूल्यांकन
5.9 सारांश
5.10 अभ्सास प्रश्न
5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 5.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. अंग्रेज-मैसूर युद्ध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. हैदरअली के चरित्र का मूल्यांकन कर सकेंगे।
3. टीपू सुल्तान के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।
4. अंग्रेज मैसूर संबंध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 5.1 प्रस्तावना

1757 के प्लासी युद्ध और 1764 के बक्सर के युद्ध के बाद अंग्रेजों ने प्रत्यक्ष युद्ध कर भारत में अपना साम्राज्य फैलाना शुरू कर दिया।

## 5.2 अंग्रेज-मैसूर सम्बन्ध (Relation of Anglo-Mysore State)

दक्षिण के मैसूर-राज्य में बुदीकोट नामक स्थान पर 1721 ई. में हैदरअली का जन्म हुआ। सर्वप्रथम हैदरअली के पिता फतह मुहम्मद ने सैनिक-सेवा को स्वीकार किया। अपनी योग्यता से मैसूर-राज्य में एक फौजदार के पद को प्राप्त किया। 1728 ई. में फतह मुहम्मद की मृत्यु हो गयी जबकि हैदरअली केवल सात वर्ष का था। इससे हैदरअली के परिवार की स्थिति अत्यन्त खराब हो गयी और हैदरअली अपनी युवा अवस्था में बड़ी कठिनाई से राज्य में सैनिक सेवा को प्राप्त करके अपने परिवार की स्थिति को सँभाल सका। जिस समय हैदरअली ने अपने सैनिक जीवन को आरम्भ किया उस समय मैसूर का राजा कृष्णराज था, परन्तु वह केवल नाममात्र का शासक था। राज्य में वास्तविक शक्ति सर्वाधिकारी नन्दराज के हाथों में थी। कर्नाटक के युद्धों ने हैदरअली के उत्थान में

**NOTES**

बहुत सहायता की। नासिरजंग के कत्ल होने और मुजफ्फरजंग के हैदराबाद के निजाम बनने के अवसर पर हैदरअली के कर्मचारियों को नासिरजंग के खजाने का कुछ हिस्सा हाथ लग गया जिससे हैदरअली को पर्याप्त सहायता मिली। उसने फ्रान्सीसियों के युद्ध के तरीकों को समझा और अपने सैनिक को उसी प्रकार शिक्षा देनी आरम्भ की। नन्दराज उसकी योग्यता से प्रभावित हुआ और उसे लेकर त्रिचनापल्ली पर आक्रमण करने के लिए गया। वहाँ पर हैदरअली ने युद्ध का अनुभव प्राप्त किया। सौभाग्य से उसके हाथों में अंग्रेजों की कुछ तोपें भी आ गयीं। 1755 ई. में उसे डिण्डगिल का फौजदार नियुक्त किया गया। वहाँ रहकर हैदरअली ने अपनी सेना में वृद्धि की और आसपास की भूमि को लूटकर धन एकत्र किया और 1760 ई. में राज्य की शासन-शक्ति को अपने अधिकार में कर लिया। उसने अपनी स्थिति को दृढ़ करने में एक वर्ष और लगाया तथा 1761 ई. में मैसूर-राज्य का सर्वेसर्वा बन गया। हैदराबाद और कर्नाटक के उत्तराधिकार के युद्धों, पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों की पराजय तथा दक्षिण में अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों की कट्टर शत्रुता ने हैदरअली को अपनी शक्ति और राज्य का विस्तार करने की सुविधा प्रदान की। धीरे-धीरे उसके आसपास के क्षेत्रों जैसे बेदनूर, कनारा आदि पर अधिकार कर लिया और बल्लापुर, रायदुर्ग, चित्तलदुर्ग आदि के सरदारों को अपना आधिपत्य स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। इस प्रकार अपनी योग्यता और साहस से हैदरअली एक साधारण स्थिति से उठकर मैसूर-राज्य में प्रधान के पद पर पहुँच गया। 1764 ई. में पेशवा माधवराव ने हैदरअली को एक युद्ध में परास्त किया और 1765 ई. में हैदरअली को मराठों से सन्धि करके उन्हें अपना कुछ भू-क्षेत्र तथा 28 लाख रुपये प्रति वर्ष देने का वादा करना पड़ा। 1765 ई. में निजाम ने अंग्रेजों की सहायता लेकर हैदरअली पर आक्रमण किया। मराठे भी इस सन्धि में सम्मिलित हो गये और इस प्रकार 1766 ई. से हैदरअली और अंग्रेजों का संघर्ष आरम्भ हुआ।

## 5.3 प्रथम अंग्रेज-मैसूर युद्ध (1766-1769 ई.)

(1) **निजाम की अंग्रेजों द्वारा पराजय–** हैदरअली ने मराठों और निजाम से मुक्त होकर अपनी समस्त शक्ति अंग्रेजों के विरुद्ध प्रयोग करने का निश्चय किया। अंग्रेजों ने भी पूर्ण शक्ति से हैदरअली और निजाम का सामना किया। सितम्बर 1766 में स्मिथ के नेतृत्व में अंग्रेज इन दोनों की सम्मिलित सेनाओं को चंगामा घाट तथा त्रिनोमली के स्थानों पर परास्त करने में सफल हुए। इस पराजय के कारण निजाम ने हैदरअली का साथ छोड़ दिया और उसने 23 फरवरी, 1768 को अंग्रेजों से सन्धि कर ली। इसी प्रकार निजाम के साथ मद्रास-सरकार द्वारा की गई यह सन्धि अंग्रेजों और मैसूर राज्य के बीच स्थायी झगड़े का कारण बनी।

(2) **अंग्रेज और हैदरअली में सन्धि–** सन् 1768 में हैदरअली पुनः अकेला रह गया, परन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा और वह अंग्रेजों से तत्परता से युद्ध करता रहा। उसने मुम्बई सरकार की एक सेना को परास्त करके मंगलौर पर अधिकार कर लिया और मार्च 1769 में मद्रास (चेन्नई) पर आक्रमण किया तथा 4 अप्रैल, 1769 को मद्रास सरकार को एक सन्धि करने के लिए बाध्य किया।

(3) **मैसूर पर मराठों का आक्रमण–** मराठों और हैदरअली में भी अधिक दिनों तक सन्धि नहीं रह सकी। उन्होंने 1771 में मैसूर राज्य पर आक्रमण किया। हैदरअली ने अंग्रेजों से सहायता नहीं ली। इस समय हैदरअली की भी यह स्थिति नहीं थी कि वह अकेला मराठों का सामना कर सकता। अतः जब वह अंग्रेजों की सहायता न मिलने से निराश हो गया तो उसने मराठों को बहुत अधिक धन दिया तथा 36 लाख रुपया तथा 14 लाख वार्षिक कर देने का वचन दिया। हैदरअली की अंग्रेजों ने किसी प्रकार से सहायता नहीं की। हैदरअली पराजित हुआ और अंग्रेजों पर से उसका विश्वास उठ गया और अंग्रेज मैसूर शासन के घोर शत्रु बन गए।

## 5.4 द्वितीय अंग्रेज-मैसूर युद्ध (1780-1784)

वारेन हेस्टिंग्स के समय में मद्रास की अंग्रेज-सरकार ने पुनः राजनीति में रुचि प्रदर्शित की। उसने 1768 ई. में कर्नाटक के नवाब को तंजौर का राज्य प्राप्त करने में सहायता दी थी और सलाबतगंज से जो निजाम का एक सम्बन्धी था गुन्टूर का जिला छीन लिया था। यही नहीं बल्कि उसने निजाम को 1768 में की गयी सन्धि के अनुसार उत्तरी-सरकार के जिलों के बदले में सात लाख रुपया प्रति वर्ष देने के वादे को भी पूरा करने से इन्कार किया। इस कारण हैदराबाद का निजाम अंग्रेजों से असन्तुष्ट हो गया। हैदरअली भी अंग्रेजों से असन्तुष्ट था। अंग्रेजों ने उसे 1769 की सन्धि के अनुसार 1771 में मराठा-आक्रमण के अवसर पर सहायता नहीं दी थी। इस प्रकार उस समय हैदराबाद का निजाम अंग्रेजों से असन्तुष्ट था, हैदरअली अंग्रेजों से बदला लेने की सोच रहा था और मराठों

से अंग्रेजों का प्रथम युद्ध आरम्भ हो चुका था। इस कारण इन तीनों शक्तियों ने मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध एक गुट बना लिया और एक निश्चित योजना के अनुसार यह निश्चय किया गया कि मराठे बरार और मध्य-भारत से होते हुए अंग्रेजों पर उत्तर में आक्रमण करेंगे, निजाम उत्तरी-सरकार पर आक्रमण करेगा और हैदरअली मद्रास और उसके आस-पास के अंग्रेजी भू-प्रदेश को विजय करेगा। इस प्रकार द्वितीय मैसूर-युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हो गयी।

जुलाई 1780 में 83,000 सैनिकों और 100 तोपों को लेकर हैदरअली ने कर्नाटक के मैदान में प्रवेश किया। मद्रास-सरकार ने एक सेना कर्नल बेली और दूसरी सेना बक्सर के युद्ध के विजेता सर हेक्टर मुनरो के नेतृत्व में हैदरअली को आगे बढ़ने से रोकने के लिए भेजी। हैदरअली के पुत्र टीपू ने इन दोनों सेनाओं को मिलने से रोका। कांजीवरम के निकट बेली से उसका मुकाबला हुआ जिससे बेली को सेना सहित काट डाला गया। मुनरो जो कांजीवरम में बेली के आने की प्रतीक्षा कर रहा था इतना घबरा गया कि वह वहाँ से तुरन्त वापस चल दिया और उसने मद्रास (चेन्नई) में जाकर शरण ली। 1780 के नवम्बर और दिसम्बर माह तक हैदरअली ने अर्काट पर अधिकार कर लिया तथा अंग्रेजों की स्थिति बहुत दुर्बल हो गयी। सैनिक पराजय के अतिरिक्त वह अंग्रेजों की एक बड़ी नैतिक पराजय थी। मद्रास-सरकार की सेनाएँ असहाय हो चुकी थीं और समुद्र-तट को छोड़कर सम्पूर्ण कर्नाटक पर हैदरअली का अधिकार हो गया था। ऐसी स्थिति में वारेन हेस्टिंग्स ने बड़ी दृढ़ता से कार्य किया। उसने बंगाल से एक बड़ी सेना सर आयर-कूट के नेतृत्व में मद्रास भेजी। उसने कूटनीति का भी सहारा लिया और हैदरअली को उसने मित्रों से पृथक् करने का प्रयत्न किया। वह इस प्रयत्न में सफल हुआ। उसने भौंसले और सिन्धिया से हैदरअली की सहायता न करने की स्वीकृति ले ली और निजाम को गुन्टूर का जिला देकर उससे हैदरअली से पृथक् होने की स्वीकृति ले ली। इस प्रकार हैदरअली अंग्रेजों से युद्ध करने के लिए अकेला रह गया।

1781 में आयर-कूट ने हैदरअली को पोर्टोनोवा के युद्ध में परास्त किया। इससे अंग्रेजों की स्थिति में कुछ सुधार हुआ और टीपू ने वाण्डेवाश का घेरा उठा लिया। उसी समय कर्नल पीयर्स के नेतृत्व में एक अन्य सेना बंगाल से पहुँच गयी। इन दोनों सेनाओं ने मिलकर पोलीलूर के युद्ध में हैदरअली का मुकाबला किया, परन्तु इस युद्ध में कोई निर्णय न हुआ। सितम्बर 1781 में आयर-कूट ने हैदरअली को सोलिंगपुर के युद्ध में परास्त किया और नवम्बर में अंग्रेजों ने नागापट्टनम पर अधिकार कर लिया। परन्तु इसके पश्चात् अंग्रेजों की पराजय शुरू हो गयी। तंजौर पर घेरा डालकर टीपू ने उसे अपने अधिकार में कर लिया। 1782 के आरम्भ में एडमिरल सफ्रिन के नेतृत्व में एक फ्रान्सीसी जल-बेड़ा हैदरअली की सहायता के लिए मद्रास पहुँचा और करीब 2,000 फ्रान्सीसी सैनिक भी उसने भारत में उतार दिये। उस अवसर पर अंग्रेजों को कुछ अन्य असफलताओं का भी मुकाबला करना पड़ा। फ्रान्सीसियों ने कुडालोर और त्रिनोपाली के बन्दरगाहों पर अधिकार कर लिया और आयर-कूट का अर्नी पर अधिकार करने का प्रयत्न तथा मुम्बई-सरकार का मालाबार पर आक्रमण करने का प्रयत्न असफल हुआ। वर्षा आरम्भ होने पर युद्ध कुछ शिथिल हो गया। अंग्रेज मद्रास वापस चले गये, फ्रान्सीसी कुडालोर में जम गये और हैदरअली अर्काट के निकट पड़ा रहा। ऐसी स्थिति में 7 दिसम्बर, 1782 को कैन्सर से हैदरअली की मृत्यु हो गयी। हैदरअली की मृत्यु से द्वितीय मैसूर-युद्ध समाप्त नहीं हुआ। उसका पुत्र टीपू उससे भी अधिक महत्वाकांक्षी सिद्ध हुआ और वह युद्ध करता रहा। उसने मुम्बई सरकार द्वारा भेजे गये ब्रिगेडियर मैथ्यूस को न केवल मंगलौर और बेदनूर पर आक्रमण करने से ही रोक दिया बल्कि उसे बहुत सैनिकों के साथ कैद भी कर लिया। परन्तु उसी अवसर पर यूरोप में इंग्लैण्ड और फ्रान्स में सन्धि हो गयी तथा फ्रान्सीसी इस संघर्ष से पृथक् हो गये। वह टीपू की एक बड़ी हानि थी। 1783 में अंग्रेजों को पुनः सफलता मिली। अंग्रेजों ने पालघाट और नवम्बर 1783 में कोयम्बटूर पर अधिकार कर लिया। परन्तु जब कर्नल फुलर्टन मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टम की ओर बढ़ रहा था तभी मद्रास-सरकार ने उसे वापस बुला लिया। मद्रास का गवर्नर मैकार्टने सन्धि के लिए उत्सुक हो रहा था क्योंकि मद्रास-कौंसिल के पास आर्थिक साधनों की अत्यधिक कमी हो गयी थी। उधर टीपू भी शान्ति का इच्छुक था।

**7 मार्च, 1784 को मंगलौर की सन्धि** से यह युद्ध समाप्त हुआ। इस सन्धि के द्वारा दोनों पक्षों ने एक-दूसरे को जीते हुए सभी प्रदेश वापस कर दिये और कैदियों को भी वापस कर दिया।

**बोध प्रश्न**

1. प्रथम अंग्रेज-मैसूर युद्ध का वर्णन कीजिए।

.......................................................................................

NOTES

..............................................................................................................

..............................................................................................................

2. द्वितीय अंग्रेज-मैसूर युद्ध का वर्णन कीजिए?

..............................................................................................................

..............................................................................................................

..............................................................................................................

## 5.5 तृतीय अंग्रेज-मैसूर युद्ध (1790-92)

मैसूर का तीसरा युद्ध अंग्रेजों तथा मैसूर के शासक टीपू सुल्तान के मध्य लड़ा गया था। इस युद्ध के अनेक कारण थे—

(1) सन् 1857 में टीपू सुल्तान तथा अंग्रेजों के बीच मंगलौर की सन्धि के अनुसार शान्ति स्थापित हो गई थी, परन्तु यह शान्ति अस्थायी सिद्ध हुई। यथार्थ में टीपू सुल्तान तथा अंग्रेज दोनों को ही एक-दूसरे पर विश्वास नहीं था। इसी कारण दोनों ही शान्तिपूर्ण ढंग से एक-दूसरे के विरुद्ध युद्ध की तैयारी कर रहे थे। इन परिस्थितियों में युद्ध को नहीं रोका जा सकता था।

(2) यूरोप में सन् 1789 में फ्रांस की राज्य क्रान्ति प्रारम्भ हो जाने के कारण इंग्लैंड को आशंका थी कि उनका किसी भी समय फ्रांस से संघर्ष आरम्भ हो सकता है। टीपू अंग्रेजों पर दबाव डालने के उद्देश्य से इस स्थिति का लाभ उठाना चाहता था। उसने फ्रांस से सहायता प्राप्त करने के उद्देश्य से सन् 1787 ई. में अपने राजदूत भी फ्रांस भेजे। इससे टीपू को कोई लाभ हुआ अथवा नहीं, परन्तु अंग्रेजों के हृदय में सन्देह अवश्य पैदा हो गया।

(3) टीपू के फ्रांसीसियों से गठबन्धन करने के प्रयासों को देखकर लार्ड कार्नवालिस ने उसे भी अन्य राजनीतिक शक्तियों से अलग करके अकेला करने का प्रयास किया। उसने इन दोनों से अलग-अलग सन्धियाँ भी कर लीं।

(4) गुन्टूर के मामले के कारण भी अंग्रेजों और टीपू के मतभेदों में और कटुता आ गई। हैदराबाद के निजाम तथा टीपू सुल्तान दोनों के लिए वह समुद्र तट पर पहुँचने का एक ही साधन था। द्वितीय मैसूर युद्ध की समाप्ति के समय वारेन हेस्टिंग्ज ने हैदराबाद के निजाम को यह प्रदेश वापस कर दिया था, परन्तु लार्ड कार्नवालिस ने इस प्रदेश का महत्व समझकर हैदराबाद के निजाम से इस प्रदेश को वापस ले लिया। इसके बदले में हैदराबाद के निजाम को यह आश्वासन दिया गया कि टीपू सुल्तान ने निजाम के जिन प्रदेशों पर विजय प्राप्त कर ली है, अंग्रेज उन्हें वापस दिलाने का प्रयास करेंगे।

(5) टीपू का विचार था कि उसका समुद्र तक पहुँचना बहुत आवश्यक था, क्योंकि उसी स्थिति में वह फ्रांसीसियों की सहायता प्राप्त कर सकता था। गुन्टूर के हाथ से निकल जाने पर उसने समुद्र तक पहुँचने के विचार से त्रावनकोर के हिन्दू राजा पर आक्रमण कर दिया। वहीं के हिन्दू शासक को अंग्रेजों का संरक्षण प्राप्त था। अतः अंग्रेजों ने उसकी सहायता की और इस प्रकार सन् 1790 में तृतीय मैसूर युद्ध आरम्भ हुआ। यह युद्ध सन् 1792 में समाप्त हुआ।

इस युद्ध में हैदराबाद के निजाम और मराठों ने अपने-अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए अंग्रेजों के साथ सहयोग किया। आरम्भ में अंग्रेजों को कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। जनरल मीडोज एक वर्ष तक प्रयत्न करके भी कुछ प्राप्त न कर सका। टीपू के युद्ध कौशल की इससे अधिक प्रशंसा नहीं की जा सकती। विवश होकर कार्नवालिस ने अगले वर्ष स्वयं ही सेना का संचालन किया। सन् 1791 में बंगलौर पर अधिकार करने के बाद वह टीपू की राजधानी श्रीरंगापट्टम के अत्यन्त निकट पहुँच गया। इसी बीच वर्षा ऋतु आरम्भ हो गई तथा अंग्रेजों की रसद समाप्त हो गई, अतः गवर्नर जनरल को कुछ समय के लिये युद्ध स्थगित करना पड़ा तथा पीछे हटना पड़ा। बरसात के उपरान्त दिसम्बर में पुनः युद्ध आरम्भ हो गया और टीपू ने आगे बढ़कर कोयम्बटूर पर अधिकार कर लिया, परन्तु उसका साहस और वीरता प्रतिकूल परिस्थितियों, संगठित शत्रुओं तथा समाप्त हो रहे साधनों के

कारण अधिक समय तक न ठहर सका। मार्च 1792 ई. में टीपू ने विवश होकर अंग्रेजों से सन्धि कर ली। तृतीय मैसूर युद्ध की समाप्ति मार्च 1792 की श्रीरंगपट्टम की सन्धि के साथ हुई। इस सन्धि की प्रमुख धाराएँ निम्न प्रकार थीं–

(1) टीपू को लगभग अपने आधे राज्य से वंचित होना पड़ा। इस राज्य को मराठों, निजाम और अंग्रेजों ने आपस में बाँट लिया।

(2) अंग्रेजों को पश्चिम में मालाबार, दक्षिण में डिण्डीगुल तथा पूर्व में बारामहल के प्रदेश मिले। इन भागों को प्राप्त करके अंग्रेजों ने मैसूर को तीन ओर से घेर लिया।

(3) कृष्णा नदी के मैदान तक के मैसूर के प्रदेश पर निजाम का अधिकार हो गया और मराठों को तुंगभद्रा नदी तक के मैसूर के प्रदेश प्राप्त हुए।

(4) टीपू ने कुर्ग के राजा की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया। कुर्ग के शासक ने बाद में अंग्रेजों की प्रभुसत्ता स्वीकार कर ली।

(5) टीपू ने लगभग 30 लाख पौण्ड राशि युद्ध की क्षतिपूर्ति के रूप में दी।

(6) उसके दो पुत्रों को अंग्रेजों ने अपने पास बन्धक के रूप में रख लिया।

## 5.6 चतुर्थ अंग्रेज-मैसूर युद्ध (1799 ई.)

तृतीय मैसूर-युद्ध में टीपू का जो अपमान और पराजय हुई थी वह उसे भूलने वाला न था और न वह उस समय तक अपनी पराजय स्वीकार करने को तैयार था। उसने किले की किलेबन्दी को दृढ़ करना आरम्भ किया, अपनी घुड़सवार व पैदल सेना की संख्या और शिक्षा में उन्नति की, विद्रोही सरदारों को दबाया और कृषि की उन्नति करने का प्रयत्न किया। 1796 में नाममात्र के मैसूर के हिन्दू राजा की मृत्यु हो गयी और टीपू ने उसके अल्पायु पुत्र को नाममात्र के लिए भी गद्दी पर बिठाने से इन्कार कर दिया। उसने अंग्रेजों के विरुद्ध मित्रता प्राप्त करने के लिए अरब, काबुल, टर्की और मॉरीशस में अपने राजदूत भेजे और इनमें से उसे फ्रान्सीसियों की थोड़ी सहायता भी प्राप्त हुई। इस प्रकार यह निश्चित था कि टीपू अंग्रेजों को भारत से निकालने और अपने अपमान का बदला लेने के लिए दृढ़-संकल्प था। लॉर्ड वैलेजली के लिए टीपू के ये कार्य शत्रुतापूर्ण थे। वह साम्राज्यवादी था, फ्रान्सीसी प्रभाव को भारत से पूर्णतया नष्ट करना उसका एक लक्ष्य था और शत्रु-राज्यों में मैसूर का राज्य ऐसा था जिसे सम्भवतया सरलता से समाप्त कर सकता था। इस कारण वैलेजली ने सर्वप्रथम टीपू को समाप्त करने का लक्ष्य बनाया। 1 सितम्बर, 1798 को निजाम ने सहायक सन्धि को स्वीकार कर लिया और अंग्रेजों का मित्र बन गया। मराठों ने वैलेजली को कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया। तब भी अपने पक्ष को दृढ़ रखने के लिए वैलेजली ने अपनी तरफ से पेशवा को यह लालच दिया कि मैसूर के जीते हुए प्रदेशों में से आधा भाग वह पेशवा को दे देगा। इस प्रकार अपनी स्थिति को दृढ़ करके वैलेजली ने मैसूर पर आक्रमण करने की योजना बनायी और 1799 में मैसूर पर आक्रमण आरम्भ कर दिया।

जनरल हैरिस और आर्थर वैलेजली के नेतृत्व में एक सेना ने फरवरी में वैलोर से चलकर मार्च 1799 में मैसूर पर आक्रमण किया। पश्चिम से एक दूसरी सेना ने जनरल स्टुअर्ट के नेतृत्व में मैसूर पर आक्रमण किया। जनरल स्टुअर्ट ने टीपू को सीदासीर और जनरल हैरिस ने टीपू को मालवेली के युद्ध में परास्त किया। टीपू को श्रीरंगपट्टम के किले में शरण लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। 17 अप्रैल, 1799 को श्रीरंगपट्टम का घेरा डाल दिया गया और 4 मई, 1799 को उस पर अधिकार कर लिया गया। टीपू अपने किले की दीवार पर युद्ध करता हुआ मारा गया और उसके पुत्र ने अंग्रेजों के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इस युद्ध से 33 वर्ष पूर्व स्थापित मैसूर का मुस्लिम राज्य समाप्त हो गया। अंग्रेजों ने उसकी कुछ भूमि कुछ शर्तों पर पेशवा को देनी चाही, परन्तु उसने लेने से इन्कार कर दिया। निजाम को उत्तर-पूर्व में अपनी सीमाओं के निकट का भू-प्रदेश प्राप्त हुआ जिसमें गूटी, गुरुमकोण्डा और उसके किले को छोड़कर चित्तलदुर्ग के जिले सम्मिलित थे। अंग्रेजों ने पश्चिम में कनारा, दक्षिण-पश्चिम में बाईनाद, कोयम्बटूर और दारापुरम के जिले तथा श्रीरंगपट्टम को सम्मिलित करते हुए पूर्व में दो अन्य जिले प्राप्त किये। टीपू के परिवार के सदस्य वैलोर के किले में भेज दिये गये जहाँ वे बन्दी की भाँति रहे। इस प्रकार अंग्रेजों के शत्रु-राज्य मैसूर का अन्त हुआ।

## 5.7 हैदरअली का चरित्र और मूल्यांकन (Character and Evaluation of Haider Ali)

हैदरअली एक जन्मजात सैनिक, योग्य घुड़सवार, कुशल सेनापति और अच्छा कुटनीतिज्ञ था। साधारण नायक की स्थिति से उठकर वह मैसूर का सेनापति और अन्त में वहाँ का सर्वेसर्वा बन गया। वह एक साहसी सैनिक था और युद्ध के अवसर पर अपने सैनिकों के साथ किसी भी खतरे को उठाने हेतु तत्पर रहता था। उसमें घुड़सवार-सेना का नेतृत्व करने की अद्वितीय योग्यता थी। उसने यूरोपियन युद्ध-नीति की उपयोगिता को देखकर फ्रान्सीसियों से सहायता लेने का निश्चय किया था और तोपखाने का प्रयोग भी अच्छे प्रकार से सीखा था। वह शिक्षित न था परन्तु उसकी बुद्धि कुशाग्र और स्मरण-शक्ति तीक्ष्ण थी। वह एक ही समय में कई बातों की ओर ध्यान दे सकता था। वह प्रातःकाल अपने सभी गुप्तचरों से एक साथ उनकी खबरें सुनता था और आवश्यकतानुसार सभी को आदेश देता था। हिन्दुओं को उसके राज्य में पूर्ण सुरक्षा थी और वह हिन्दू विद्वानों तथा मन्दिरों को दान देता था। वह एक अच्छा कुटनीतिज्ञ था और अनेक अवसरों पर उसने अपने शत्रुओं में फूट डालने में सफलता प्राप्त की थी। उसके सार्वजनिक लाभ के कार्यों में 'दरिया दौलत' नाम का भवन, 'लाल बाग' और 'गन्जम शहर' का निर्माण उल्लेखनीय है। व्यक्तिगत मामलों में हैदरअली को कीमती गहनों का शौक तो न था, परन्तु अच्छे वस्त्रों का शौक उसे अवश्य था। इस प्रकार एक शासक, सैनिक और सेनापति की दृष्टि से हैदरअली पूर्णतया योग्य था। जिन परिस्थितियों में हैदरअली ने मैसूर-राज्य का निर्माण किया वे पर्याप्त कठिन थीं। मराठा-सरदार दक्षिण में एक नवीन और शक्तिशाली मुस्लिम राज्य को सहन नहीं कर सकते थे, हैदराबाद का निजाम अपनी सीमाओं के निकट एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण नहीं होने देना चाहता था और अंग्रेज इस कारण उसके शत्रु बन गये थे कि उसने आरम्भ से ही फ्रान्सीसियों से सहायता ली थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेज दक्षिण में एक नवीन शक्ति के उदय को अपनी सुरक्षा और विस्तार के लिए उचित नहीं मानते थे। इस कारण हैदरअली को आरम्भ से ही भारत की इन प्रबल शक्तियों से मुकाबला करना पड़ा और इन परिस्थितियों में भी जिस मैसूर-राज्य का उसने निर्माण किया वह उसकी योग्यता का प्रमाण था। अंग्रेजों के विरुद्ध उसने दो युद्ध किये। प्रथम युद्ध में उसने पूर्ण सफलता पायी और द्वितीय युद्ध के मध्य में ही उसकी मृत्यु हो गयी। इस कारण यह भी नहीं माना जा सकता कि अंग्रेजों के विरुद्ध उसने असफलता पायी, परन्तु अपनी एक दुर्बलता को वह अवश्य समझता था और वह थी नौ-सेना की कमी। नौ-सेना की सहायता से अंग्रेजों को विभिन्न स्थानों से सहायता प्राप्त हो जाती थी, इसे हैदरअली समझता था। सम्भवतया इसी कारण उसने निरन्तर फ्रान्सीसियों से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। हैदरअली के जीवन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट है कि वह एक सफल व्यक्ति सिद्ध हुआ था।

**बोध प्रश्न**

1. हैदर अली का चरित्र और मूल्यांकन का वर्णन कीजिए?

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

2. चतुर्थ अंग्रेज-मैसूर युद्ध (1799) का वर्णन कीजिए?

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

## 5.8 टीपू सुल्तान का चरित्र तथा मूल्यांकन (Character and Evaluation of Tipu Sultan)

टीपू के चरित्र के विषय में तत्कालीन और आधुनिक इतिहासकारों ने विरोधी मत प्रकट किये हैं। उसके विपक्ष के इतिहासकारों ने लिखा है कि वह कठोर, और धर्मान्ध शासक था। उसे अपनी योग्यता का बहुत घमण्ड था और वह विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, इन्जीनियरिंग, सैनिक व्यवस्था, व्यापार आदि सभी के विषय में अपने मत

प्रकट किया करता था जबकि उसे इनका पर्याप्त ज्ञान न था। अभिमान के कारण ही उसने 'खुतबा' मुगल बादशाह के नाम से नहीं बल्कि अपने नाम से पढ़वाना आरम्भ कर दिया था। उसे स्थानों और नियमों को बदलने की सनक थी और वह अनावश्यक ही उनके नामों में परिवर्तन किया करता था। उसे मनुष्य के चरित्र का ज्ञान न था और वह उनके बारे में उचित निर्णय नहीं ले सकता था। हिन्दुओं के प्रति उसका व्यवहार कठोर था। टीपू में राजनीतिक दूरदर्शिता की कमी थी। इसी कारण अपने पड़ोसी-राज्यों से सहायता प्राप्त करने के स्थान पर उसने दूरस्थ फ्रान्स और अन्य मुस्लिम राज्यों से सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसके बारे में यह कहा गया है : "हैदरअली एक साम्राज्य का निर्माण करने के लिए पैदा हुआ था और टीपू उसे खोने के लिए।"

दूसरी ओर अनेक ऐसे प्रमाण भी प्राप्त होते हैं जिनसे टीपू को योग्य और परिश्रमी शासक माना जा सकता है। मिल ने लिखा है : "आंतरिक शासन की दृष्टि से इसकी तुलना पूर्व के किसी भी महान् शासक से की जा सकती है।" उसके समय में कृषि की स्थिति बहुत अच्छी थी। उसका विवरण मूर डीरम आदि अनेक व्यक्तियों ने दिया है। उसके राज्य में सम्पन्नता थी और जनसंख्या घनी थी, इसके प्रमाण प्राप्त होते हैं। सर जान शोर ने लिखा है : "उसके राज्य में किसानों की रक्षा की जाती है और उनके श्रम को प्रोत्साहन तथा इनाम दिया जाता है।" टीपू ने सेना, व्यापार, मुद्रा, ऋण-व्यवस्था, नाप-तौल के साधनों आदि शासन के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार किये थे, इसके भी प्रमाण प्राप्त होते हैं। मालाबार-क्षेत्र में सार्वजनिक सड़कों का निर्माण उसी ने आरम्भ किया और वहाँ कई सड़कें बनवायीं इससे स्पष्ट होता है कि टीपू एक निरंकुश शासक था परन्तु उसने अपनी प्रजा की भलाई के लिए अनेक कार्य किये थे।

## 5.9 सारांश

व्यक्तिगत दृष्टि से टीपू में कोई दोष न था। निस्सन्देह वह कट्टर मुसलमान था, पाँच वक्त की नमाज पढ़ता था किन्तु वह धर्मान्ध था, यह आवश्यक रूप से सिद्ध नहीं होता। टीपू ने कुछ स्थानों पर हिन्दुओं को मुसलमान बनाया और ईसाइयों को बाहर निकाल दिया, इसमें सन्देह नहीं परन्तु यह उसकी सार्वजनिक नीति न थी। शृंगेरी में जो पत्र प्राप्त हुए हैं उनसे स्पष्ट होता है कि टीपू हिन्दुओं की भावनाओं को सन्तुष्ट करना जानता था और धर्मान्धता उसके पतन का कारण न थी। ऐसे भी उदाहरण प्राप्त होते हैं जबकि टीपू ने हिन्दू मन्दिरों को दान दिया था और हिन्दू अधिकारियों की नियुक्ति की थी। वह शृंगेरी के तत्कालीन जगतगुरु शंकराचार्य का सम्मान करता था और उनसे निरन्तर पत्र-व्यवहार करता रहा था। साहसी और कभी भी पराजय स्वीकार न करने वाला होते हुए भी टीपू ने सेनापति की दृष्टि से एक भयंकर भूल की थी। उसने अपनी घुड़सवार-सेना की अपेक्षा अपनी पैदल सेना और किलेबन्दी पर अधिक बल दिया था। इसी कारण उसकी युद्ध-नीति आक्रामक होने के स्थान पर सुरक्षात्मक बन गयी थी और यही उसकी पराजय और पतन का एक मुख्य कारण था।

## 5.10 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घउत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. अंग्रेज-मैसूर युद्ध की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
2. हैदरअली के चरित्र पर प्रकाश डालिए।
3. टीपू के चरित्र का वर्णन कीजिए।

**लघुउत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. अंग्रेज-मैसूर युद्ध से आप क्या समझते हो?
2. प्रथम अंग्रेज-मैसूर युद्ध की संक्षिप्त जानकारी दीजिए।
3. द्वितीय अंग्रेज-मैसूर युद्ध पर टिप्पणी लिखिए।
4. तृतीय अंग्रेज-मैसूर युद्ध पर टिप्पणी लिखिए।
5. टीपू का संक्षिप्त मूल्यांकन कीजिए।

NOTES

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. हैदर अली का जन्म कब हुआ—

   (A) 1721 में (B) 1741 में (C) 1751 में (D) 1760 में

2. जिस समय हैदरअली ने अपने सैनिक जीवन को आरंभ किया उस समय मैसूर का राजा था—

   (A) फतह मुहम्मद (B) कृष्णराज (C) नन्दराज (D) निजाम

3. हैदरअली और अंग्रेजों के संघर्ष का आरंभ हुआ—

   (A) 1755 से (B) 1775 से (C) 1766 से (D) 1866 से

4. हैदरअली के पिता फतह मुहम्मद की मृत्यु हुई—

   (A) 1730 में (B) 1750 में (C) 1720 में (D) 1728 में

5. हैदरअली की मृत्यु हुई—

   (A) 5 दिसंबर, 1760 में (B) 7 दिसंबर, 1782 में

   (C) 6 सितंबर, 1783 में (D) 4 दिसंबर, 1770 में

[उत्तर– 1. (A), 2. (B), 3. (C), 4. (D), 5. (B)]

## 5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

# अध्याय-6 अंग्रेजों का सिन्ध, बर्मा व अफगानिस्तान से युद्ध
## (BRITISH WARS OF SINDH, BURMA & AFGANISTAN)

NOTES

**इकाई की रूपरेखा**

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 अंग्रेज और सिंध

6.3 अंग्रेज और वर्मा

6.4 प्रथम आंग्ल-वर्मा युद्ध

6.5 द्वितीय आंग्ल-वर्मा युद्ध

6.6 तृतीय आंग्ल-वर्मा युद्ध

6.7 अंग्रेज और अफगानिस्तान

6.8 प्रथम अफगान युद्ध (1839-1844)

6.9 द्वितीय अफगान युद्ध

6.10 तृतीय अफगान युद्ध

6.11 सारांश

6.12 अभ्सास प्रश्न

6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 6.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. अंग्रेज और सिंध के संबंधों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. अंग्रेज और वर्मा के संबंधों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. अंग्रेज और अफगानिस्तान के संबंधों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 6.1 प्रस्तावना

अंग्रेजों ने 1757 से 1857 के बीच जहाँ एक ओर भारत के अंतर्गत देशी राज्यों पर प्रभाव जमाया वहीं भारत के आसपास के क्षेत्रों पर भी अपना एकछत्र शासन स्थापित करना शुरू किया। इस अध्याय में अंग्रेजों का सिन्ध, बर्मा व अफगानिस्तान से संबंधों का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

## 6.2 अंग्रेज और सिन्ध (British and Sindh)

अठारहवीं सदी के अन्त में सिन्ध जो नाम के लिए अफगानिस्तान राज्य का भाग था, बलूची जाति के तालपुरी अमीरों के हाथों में था। ये अमीर तीन थे। एक सिन्ध के ऊपरी भाग में जिसकी राजधानी खैरपुर थी, दूसरा सिन्ध के नीचे भाग में जिसकी राजधानी हैदराबाद थी और तीसरा जिसका राज्य उपर्युक्त दो अमीरों के राज्यों के मध्य में था और जिसकी राजधानी मीरपुर थी। नाम के लिए दो अमीर हैदराबाद के अमीर के अधीन थे, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से तीनों अमीर एक-दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र थे। उत्तराधिकार के एक नियम के अनुसार

गद्दी अमीर के लड़के को नहीं बल्कि भाई को प्राप्त होती थी। इन अमीरों के राज्य की सीमाएँ कच्छ तक फैली हुई थीं और अंग्रेजी राज्य की सीमाओं से मिलती थीं। इनके राज्य में कराँची का बन्दरगाह, पश्चिम से व्यापार करने का मुख्य स्थान शिकारपुर और सक्खर का जिला था जो सिन्ध नदी के जलमार्ग की सुरक्षा करता था। व्यापारिक दृष्टि से सिन्ध का महत्व अंग्रेज बहुत पहले से जानते थे। 1630 में ही उन्होंने मुगल बादशाह से एक आज्ञापत्र लेकर सिन्ध में अपनी व्यापारिक फैक्टरियाँ बना ली थीं, लेकिन अठारहवीं सदी के अन्त तक सिन्ध का व्यापार बहुत अधिक नहीं हुआ। जब अंग्रेजों को नेपोलियन के आक्रमण का भय हुआ तब अंग्रेजों को सिन्ध की राजनीतिक उपयोगिता ज्ञात हुई और उन्होंने 1801 में सिन्ध के अमीरों से एक सन्धि की जिसके अनुसार अमीरों ने वादा किया कि वे फ्रान्सीसियों को सिन्ध में नहीं बसने देंगे। 1820 में अमीरों ने वादा किया कि वे किसी भी यूरोपियन या अमेरिकन को सिन्ध में नहीं बसने देंगे।

सिन्ध से राजनीतिक सम्पर्क बढ़ाने का कार्य सर्वप्रथम 1831 ई. में सर एलेक्जेण्डर बर्न्स को सिन्धु नदी में जलयात्रा की सुविधाओं की खोज करने के आशय से भेजने से आरम्भ हुआ। राजा विलियम चतुर्थ ने कुछ घोड़े उपहारस्वरूप रणजीतसिंह को भेजे। अंग्रेजों ने उन्हें जल-मार्ग से भेजना चाहा। अमीर इसे पसन्द न करते थे परन्तु जब रणजीतसिंह ने अपना क्रोध प्रकट किया तो उन्हें आज्ञा देनी पड़ी। बर्न्स सिन्धु नदी के जल-मार्ग से लाहौर गया। सिन्ध के नागरिक और अमीर अंग्रेजों से कितना डरते थे, यह उस समय के उनके विचारों से स्पष्ट हो जाता है। एक बलूची सैनिक ने बर्न्स से कहा : "बुराई हो चुकी है। तुमने हमारे देश को देख लिया है" एक अन्य सिन्धी व्यक्ति ने कहा : "दु:ख की बात है कि सिन्ध अब गया क्योंकि अंग्रेजों ने नदी को देख लिया है जो उनके राज्य-विस्तार का मार्ग है।" यह शब्द सत्य सिद्ध हुए।

बर्न्स ने सिन्धु नदी के व्यापारिक महत्व को स्पष्ट किया और अंग्रेजों ने कच्छ के रेजीडेण्ट कर्नल पोटिंगर (Pottinger) को आदेश दिये कि वह अमीरों से व्यापारिक सन्धि की बातचीत आरम्भ करें। अमीर सन्धि से तैयार न थे। उन्हें भय था कि व्यापार का आधार लेकर अंग्रेज वहाँ अपना राजनीतिक प्रभाव स्थापित करेंगे। उन्होंने अफगानिस्तान के शासक से सहायता माँगी परन्तु कोई लाभ न हुआ और अन्त में हैदराबाद व खैरपुर के अमीरों को 1813 ई. में अंग्रेजों को सिन्धु नदी और सिन्ध की सड़कों का प्रयोग करने की आज्ञा निम्नलिखित शर्तों पर देनी पड़ी :

1. कोई व्यक्ति इन मार्गों पर सैनिक सामान नहीं लायेगा।
2. सिन्धु नदी में कोई सैनिक नाव या जहाज नहीं लायेगा।
3. कोई भी अंग्रेज व्यापारी स्थायी रूप से सिन्ध में नहीं रहेगा।

उस समय रणजीतसिंह ने पुनः सिन्ध में अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न किया, परन्तु अंग्रेजों ने उसे रोक दिया। अफगानिस्तान के भागे हुए शासक शाहशुजा को भी यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि उसने अमीरों की कोई भी सहायता की तो उसकी पेन्शन बन्द कर दी जायेगी और अंग्रेजी सीमाओं में उसे शरण नहीं मिलेगी। इस प्रकार अंग्रेजों ने किसी अन्य शक्ति को सिन्ध में हस्तक्षेप नहीं करने दिया और स्वयं अपने प्रभाव में वृद्धि करते रहे।

1838 ई. में अंग्रेजों, शाहशुजा और रणजीतसिंह में जो त्रिदलीय सन्धि हुई उसमें अमीरों को भी सम्मिलित किया गया। सिन्ध के अमीरों को बाध्य किया गया कि वे शाहशुजा को 25 लाख रुपया कर के रूप में दें। इस कर को न अमीर कभी देते थे और न शाहशुजा अफगानिस्तान का अमीर था बल्कि 1834 ई. में शाहशुजा ने लिखित रूप से अमीरों को इससे मुक्त कर दिया था। इस कारण अमीरों से यह धन लेना सर्वथा अनैतिक था। यही नहीं बल्कि अंग्रेजों ने स्वयं भी अमीरों से रुपया लिया। इसके अतिरिक्त अमीरों को यह बता दिया गया कि 1832 ई. में की गयी सन्धि का पालन इस समय सम्भव नहीं है और अंग्रेजों व शाहशुजा की सेनाएँ अफगानिस्तान पर आक्रमण करने के लिए सन्धि की सीमाओं में से जायेंगी। अंग्रेजों ने ये तीनों कार्य इसलिए किये क्योंकि उन्हें धन की आवश्यकता थी और रणजीतसिंह ने अंग्रेजी सेनाओं को पंजाब से गुजरने की आज्ञा नहीं दी थी जिससे उन्हें सिन्ध से गुजरने का मार्ग चाहिए था। 24 दिसम्बर, 1838 ई. को खैरपुर के अमीर को एक सन्धि करने के लिए बाध्य किया गया, जिसके अनुसार—

1. अमीर ने अंग्रेजों की सर्वोच्च सत्ता को स्वीकार कर लिया;
2. अपनी स्थिति के अनुसार अंग्रेजों को सैनिक सहायता देने तथा युद्ध में अन्य सहायता देने का वादा किया; और

3. बक्सर का किला अंग्रेजों को दे दिया।

हैदराबाद के अमीर ने इस प्रकार की सन्धि करने का कुछ विरोध किया। इस कारण अंग्रेजों ने आक्रमण करके कराची पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् हैदराबाद के अमीर ने भी अंग्रेजों से 3 फरवरी और 11 मार्च, 1839 ई. को सन्धि कर ली, जिसके अनुसार—

1. कराची अंग्रेजों को दे दिया गया,
2. अंग्रेज 500 सैनिकों की एक सहायक-सेना अमीर की सीमाओं में रखेंगे।
3. इसके बदले में अमीर प्रति वर्ष 3 लाख रुपये अंग्रेजों को देंगे।

जुलाई 1841 ई. में मीरपुर के अमीर के साथ भी इसी प्रकार की एक सन्धि की गयी। इन सन्धियों द्वारा सिन्ध एक प्रकार से अंग्रेजों की अधीनता में चला गया। अमीरों का एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध न रहा और सभी अमीर अपनी स्वतंत्रता खो बैठे। केवल नाम के लिए सिन्ध को अंग्रेजी राज्य में मिलाना बाकी रह गया।

लॉर्ड एलनबरो, जो भारत का गवर्नर-जनरल बनकर आया, सिन्ध को जीतने के लिए आरम्भ से ही उत्सुक था। इसी कारण 1842 ई. में आउट्रम के स्थान पर सर चार्ल्स नैपियर को सन्धि के विषय में सम्पूर्ण सैनिक और असैनिक अधिकार देकर भेजा गया। सिन्ध के अमीरों पर पहले से ही कुछ आरोप लगाये गये थे। नैपियर ने उन्हें स्वीकार कर लिया और अमीरों पर यह आरोप लगाया कि वे अंग्रेजों के प्रति वफादार नहीं हैं। उसने अमीरों से माँग की कि—

1. वे सिक्के बनाने का अधिकार अंग्रेजों को दे दें;
2. वे उन अंग्रेजी जहाजों को जो सिन्ध नदी में थे, कोयला दें; और
3. वे कराची, थट्टा, सक्खर, बक्सर और रोहरी तथा इसके बीच के सभी भाग अंग्रेजों को दे दें।

इसके अतिरिक्त नैपियर ने खैरपुर के अमीर रुस्तमखाँ की मृत्यु होने के अवसर पर अली मुराद को उसका उत्तराधिकारी बनाना स्वीकार कर लिया, जबकि रुस्तमखाँ अभी जीवित था और मीर मुहम्मद को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुका था। नैपियर ने खैरपुर पर आक्रमण किया और 20 जनवरी, 1843 ई. को सभी अमीरों को एक नवीन सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए बुलाया। केवल खैरपुर के अमीर के अतिरिक्त सभी अमीरों ने नवीन सन्धि पर हस्ताक्षर किये। खैरपुर का अमीर उपस्थित न हो सका था यद्यपि उसने वादा किया कि वह भी उस सन्धि पर हस्ताक्षर कर देगा। उस समय आउट्रम ने ही इस सन्धि पर अमीरों से हस्ताक्षर कराये थे और वह हैदराबाद में था। उसने नैपियर को यह आश्वासन दिया कि सभी अमीरों ने इसी सन्धि पर हस्ताक्षर करने का आश्वासन दिया है, इस कारण उसे सेना लेकर हैदराबाद आने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु नैपियर ने यह स्वीकार न किया और वह सेना लेकर पाकिस्तान में से भी हैदराबाद शहर से की ओर बढ़ा।

17 फरवरी, 1843 ई. को नैपियर ने सर्वप्रथम म्यानी के युद्ध में बलूचियों को परास्त किया और हैदराबाद पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। 24 मार्च, 1843 ई. को दाबो के युद्ध में नैपियर ने मीरपुर के अमीर शेर मुहम्मद को परास्त किया। सिन्ध के सभी अमीरों ने आत्मसमर्पण कर दिया और 4 अप्रैल को नैपियर ने एलनबरो को सूचना भेजी : "मैंने सिन्ध ले लिया है।" शेर मुहम्मद ने एक प्रयत्न और किया परन्तु 14 जून को उसकी पुनः पराजय हुई और वह भाग गया। तत्पश्चात् युद्ध समाप्त हो गया। अगस्त 1843 ई. में सिन्ध को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

अंग्रेजों द्वारा सिन्ध की विजय अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का स्पष्ट प्रमाण थी और सभी व्यक्तियों ने इसकी आलोचना की है। इन्स ने लिखा है : "अगर हमारे भारतीय इतिहास की घटनाओं में अफगान दुर्घटना सबसे हानिकारक है तो सिन्ध की विजय सबसे अनैतिक।" स्वयं नैपियर ने लिखा था : "हमें सिन्ध को जीतने का कोई अधिकार नहीं है, फिर भी हम ऐसा करेंगे और वह एक लाभदायक, उपयोगी तथा मानवतापूर्ण बुराई होगी।

## 6.3 अंग्रेज और बर्मा (British and Burma)

भारत के उत्तर-पूर्व में बर्मा का राज्य था। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जिस प्रकार गोरखा जाति उत्तरीय भारत में एक संगठित राज्य स्थापित कर रही थी, उसी प्रकार भारत की पूर्वी सीमा पर चीनी-तिब्बती मिश्रित

एक जाति आवा को राजधानी बनाकर बर्मा का एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर रही थी। अपने बहादुर सरदार अलोमपोरा के नेतृत्व में बर्मा-राज्य का बहुत विस्तार हुआ। उसके पश्चात बर्मा का राज्य विभिन्न दिशाओं में बढ़ता गया और उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में उन्होंने असम, मणिपुर आदि पर भी अधिकार कर लिया जिससे उनके राज्य की सीमाएँ अंग्रेजों के भारत के राज्य की सीमाओं से मिलने लगीं। बर्मा से अंग्रेजों के व्यापारिक सम्बन्ध 1587 ई. से थे परन्तु वे सम्बन्ध बहुत साधारण थे। बर्मा और अंग्रेजी राज्य की पूर्व की सीमाएँ जब मिलने लगीं तो उनके आपस के सम्बन्ध खराब होने लगे। अंग्रेजों ने अठारहवीं सदी के अन्त में बर्मा से राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया और इस उद्देश्य से 1795 ई. में कैप्टेन सिम्स को, 1797 ई. में कैप्टेन कोक्स को, 1802 ई. में पुनः कैप्टेन सिम्स को और 1803 ई., 1809 ई. और 1811 ई. में कैप्टेन कैनिंग को राजदूत बनाकर बर्मा भेजा, परन्तु बर्मा-दरबार ने उनकी नियुक्ति का कोई स्वागत नहीं किया और न उनको भेजने से कोई लाभ हुआ। परिणामतः आगे चलकर अंग्रेज और बर्मा के बीच संघर्ष हुआ।

## 6.4 प्रथम आंग्ल-बर्मा युद्ध (First British-Burma War)

भारतीय साम्राज्य की रक्षा के लिये पूर्व की सीमा की रक्षा करना आवश्यक था। अठारहवीं शताब्दी के मध्य बर्मा में एक नये राजवंश की स्थापना हुई। इस वंश के संस्थापक ने बर्मा पर अधिकार जमाने के उपाय किये। 1766 में स्याम पर आक्रमण करके बर्मा ने नासरिन के प्रदेश पर अधिकार किया। बर्मा राजवंश के दूसरे संस्थापक ने विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया।

**संघर्ष के कारण :**

(1) बर्मा की विस्तारवादी नीति के कारण दोनों में आपसी मतभेद हुए। दोनों राज्यों के क्षेत्र मिल रहे थे।

(2) दूसरा कारण यह था कि राजनीतिक समाधान के लिये परिस्थिति अनुकूल थी। बर्मा और ब्रिटिश सरकार के बीच कूटनीतिक सम्बन्ध नहीं थे। 1891 में ब्रिटिश अधिकारियों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ। 1891 के बाद कोई अधिकारी नहीं गया।

(3) सन् 1818 में सीमा सम्बन्धी प्रश्न पर परिवर्तन आया। 1823 में एमहर्स्ट गवर्नर जनरल होकर आया। उसने बर्मा द्वारा सीमा बढ़ाने का विरोध किया। इस समय कम्पनी सर्वोच्च शक्ति बन गई थी। उसे भारत की शक्तियों का डर नहीं था। गवर्नर जनरल को पूर्वी सीमा की ओर प्रभाव बढ़ाने का अवसर मिला।

(4) बर्मा और ब्रिटिश सरकार में सीमा सम्बन्धी मतभेदों के कारण संघर्ष की स्थिति निकट आयी।

(5) लार्ड एमहर्स्ट पूर्वी सीमा के विवादों को समाप्त करना चाहता था। उससे पहले लार्ड हेस्टिंग्ज ने बर्मा के प्रति तटस्थता की नीति अपनायी थी। दूसरी ओर लार्ड एमहर्स्ट ने बर्मा के प्रभाव को कम करने की नीति अपनायी। बर्मा की विस्तारवादी नीति के कारण ब्रिटिश सीमा की सुरक्षा जरूरी थी, इसलिये युद्ध की स्थिति बन गई।

**युद्ध की घोषणा :** मार्च, 1824 में गवर्नर जनरल ने युद्ध की घोषणा की और उसने कहा कि राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए युद्ध किया जा रहा है। बर्मा युद्ध की दो विशेषताएँ थीं। बर्मा की सेना पहली बार इस युद्ध में किसी ऐसी सेना से युद्ध कर रही थी जो पश्चिमी ढंग से प्रशिक्षित की गई थी और नए-नए शस्त्रों से सुसज्जित थी। वह पड़ोस की सेना से लड़ी थी। उसे पश्चिमी युद्ध प्रणाली का अनुभव नहीं था। ब्रिटिश सेना समुद्री रास्ते से आ सकती थी। ब्रिटिश और बर्मा सेना की टक्कर हुई। यह तीन क्षेत्रों से हुई, असम, अराकन, चटगाँव सीमा क्षेत्र और रंगून। बर्मियों को प्रकृति ने रक्षा प्रदान की थी। अंग्रेजों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ब्रिटिश सेना असम के शहर नौगाँव तक पहुँच गई। असम में दोनों सेनाओं के बीच टक्कर हुई। चटगाँव अराकन में बर्मी फौजों का जमाव था। बर्मी सेनापति महाबदूला था तथा रंगून की सेना का नेतृत्व आकीवाल्ड केम्बल कर रहा था। बर्मी सेना पराजित हुई। निचले बर्मी की राजधानी प्रोम पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। बर्मियों ने 24 फरवरी, 1826 को युद्ध बन्द किया और यान्डूब की सन्धि की।

**यान्डूब की संधि :** इसके अनुसार निम्नलिखित शर्तें तय की गईं—

(1) बर्मा के राजा को सम्पूर्ण असम क्षेत्र पर अपना अधिकार छोड़ना पड़ा।

(2) बर्मा राज्य के दो प्रान्तों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

(3) बर्मा के शासक को हर्जाने के रूप में एक करोड़ रुपया देना पड़ा।

(4) इस संधि के कारण दोनों राज्यों में कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित हुए।

(5) दोनों राज्य एक-दूसरे से व्यापार संधि करेंगे।

(6) दोनों राज्य एक-दूसरे के मित्र रहेंगे।

यान्डूब की संधि की शर्तों से यह स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश गवर्नर जनरल ने केवल सीमा सुरक्षा के लिये ही युद्ध नहीं किया था, बल्कि उसका लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना था। उसने असम पर अधिकार किया और बर्मा के दो प्रान्तों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया। बर्मा पर पैर जमाकर अंग्रेजों ने बर्मा पर अधिकार करने का रास्ता खोल दिया। व्यापारिक संधि द्वारा बर्मा से लाभ उठाया। बर्मा के लिए युद्ध महँगा पड़ा। उसका विस्तार रुक गया, लेकिन बर्मा के राजाओं से किसी प्रकार की शिक्षा नहीं ली। 1826 में सैन्य संधि और भी घटती गई। एमहर्स्ट की आलोचना की गई। युद्ध में सैनिक अधिक मारे गये। इस सन्धि से बर्मा और अंग्रेजों के बीच शत्रुता का अन्त नहीं हुआ। अन्त में नये राजा ने यान्डूब की संधि मानने से इन्कार किया। अन्त में द्वितीय आंग्ल-बर्मा युद्ध हुआ।

**बोध प्रश्न**

1. अंग्रेज और सिन्ध के संबंध की व्याख्या कीजिए?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

2. अंग्रेज और वर्मा के संबंध की व्याख्या कीजिए?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

## 6.5 द्वितीय आंग्ल-बर्मा युद्ध (Second British-Burma War)

वाग्यिदा के शासनकाल में प्रथम आंग्ल-बर्मा युद्ध हुआ। इस शासन ने अंग्रेजों से संधि की, परन्तु सन्तुष्ट नहीं था। थारवड्डी नया राजा बना। वह 1837 से 1846 तक बर्मा का शासन करता रहा। उसने शासन व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया। वाग्यिदा के पुत्र पैगन ने षड्यन्त्र करके पिता को अपदस्थ कर दिया। पैगन ने सत्ता सम्हाली तथा उसने 1846 से 1853 तक शासन किया। उसी के शासन में दूसरा आंग्ल-बर्मा युद्ध हुआ। इस युद्ध के निम्नलिखित कारण थे-

(1) एशिया के राज्यों में अंग्रेजों के प्रति घृणा का भाव था। चीन और भारत में उसकी नीतियाँ जानी जाती थीं। बर्मी यान्डबू की संधि का पालन नहीं करना चाहते थे।

(2) अंग्रेज भी संधि के अलावा कुछ चाहते थे। उन्हें संधि की शर्तों पर शिकायत थी।

(3) डलहौजी की नीति साम्राज्यवादी थी। व्यापारी मनमाने ढंग से व्यापार करते थे। व्यापारियों ने इससे शिकायत की थी। वह बर्मा से क्षतिपूर्ति करना चाहता था।

(4) अंग्रेज राजदूतों का दरबार में आदर नहीं हो रहा था। अंग्रेजों को शिकायत थी।

(5) यह समाचार था कि बर्मा का राजा अंग्रेजों को निकालना चाहता है।

(6) अंग्रेज व्यापारियों ने रंगून के गवर्नर से शिकायत की थी। डलहौजी ने बर्मा पर आक्रमण के लिए फौज भेज दी।

गाडविन के नेतृत्व में सेना भेजी गई। यह युद्ध (2 अप्रैल से 20 दिसम्बर, 1852) पेगे के विलीनीकरण के साथ समाप्त हुआ। अप्रैल 1852 को युद्धपोत रंगून पहुँचा। 9 हजार सैनिक बर्मी समुद्री तट पर पहुँचे। 159 तोपें इनके पास थीं। रंगून की झड़प के बाद ब्रिटिश सैनिक वहाँ पहुँच गये। डलहौली बहुत पहले से आक्रमण की योजना बना रहा था। कुछ ही समय बाद सेना ने बर्मा पर अधिकार कर लिया। युद्ध का एक पक्ष अनैतिक और साम्राज्यवादी था। यह विशुद्ध रूप से एक साम्राज्यवादी युद्ध था। केवल विस्तार के लिये किया गया था। डलहौजी की माँगें अनुचित थीं। अंग्रेजी राज्य की बर्मा में स्थापना की गई। डलहौली के निर्णय द्वारा संधि की गई। बंगाल की खाड़ी के सभी बन्दरगाह अंग्रेजी साम्राज्य में मिलाये गये जिससे वहाँ और व्यापारिक हितों को बल मिला। ब्रिटिश साम्राज्य की सुरक्षा भी हो गई। यह अंग्रेजी क्षेत्र के लिए उपयोगी था। इससे व्यापारियों की असुविधाएँ दूर हो गईं। दक्षिणी बर्मा पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। तीसरे बर्मा युद्ध में समूचे बर्मा पर अधिकार हो गया। इस युद्ध में कम्पनी का खजाना खाली हो गया। इसमें एक करोड़ तीस लाख पौण्ड खर्च हुआ। फिर भी इस युद्ध से बहुत से लाभ हुए। जो निम्न प्रकार थे-

(1) बंगाल की खाड़ी और उसके पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया।

(2) कम्पनी को मणिपुर, शाहपुरी द्वीप, अराकान और तनासेरिम के महत्वपूर्ण प्रदेश प्राप्त हुए। कम्पनी का पूर्व में राज्य विस्तार हुआ।

(3) कम्पनी की भारतीय राज्य की पूर्वी सीमा सुरक्षित हो गई। बर्मा भारत की सीमा पर सदा के लिए आ गया।

(4) बर्मा और भारत का सांस्कृतिक समन्वय हुआ। रीति-रिवाजों का आदान-प्रदान हुआ।

(5) भविष्य में बर्मा विजय का कार्य सरल हो गया।

(6) लार्ड एमहर्स्ट को सम्मानित कर उसे अराकान के अर्ल की उपाधि दी गई।

## 6.6 तृतीय आंग्ल-बर्मा युद्ध (Third British-Burma War)

यह युद्ध लार्ड डफरिन के काल में हुआ था। बर्मा का राजा मिण्डन (1853 से 1878) एक योग्य शासक था। उसने बर्मा को शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया। उसने यूरोपीय राज्यों की प्रतिस्पर्धा से भी फायदा उठाया। 1873 में बर्मा और फ्रांस के मध्य संधि हुई, जिसमें बर्मा की सेना को प्रशिक्षित करने को कहा गया। बर्मा ने इटली से भी संधि की। उसने एक दूत फारस भी भेजा। बर्मा ने इंग्लैण्ड की रानी से सम्बन्ध स्थापित किये। इसमें उसे असफलता मिली। उसने तोपें और बन्दूकें बनाने के प्रयत्न किये। उसने अंग्रेजों से सम्बन्ध अच्छे नहीं रखे।

**युद्ध के कारण :**

(1) मिन्डन का उत्तराधिकारी थीवा अयोग्य शासक था। उसने अंग्रेजों से सम्बन्ध अच्छे नहीं रखे।

(2) थीवा पर निर्दयता का आरोप लगाया गया।

(3) थीवा फ्रांसीसियों से सम्बन्ध स्थापित कर रहा था। अंग्रेजों को सन्देह हुआ कि फ्रान्सीसी ऊपरी बर्मा पर प्रभाव स्थापित करना चाहते हैं।

(4) इंग्लैण्ड के व्यापारी जोर डाल रहे थे कि ऊपरी बर्मा को प्रभाव में लिया जाये।

(5) युद्ध का तात्कालिक कारण यह था कि अंग्रेजी व्यापारी कम्पनी के प्रति राजा थीवा का व्यवहार अच्छा नहीं था। अंग्रेज बर्मा की विदेश नीति पर नियन्त्रण चाहते थे। उत्तरी बर्मा से होकर चीन में व्यापार के लिए रास्ता चाहते थे।

**युद्ध की घटनाएँ :** ये सभी शर्तें बर्मा के राजा को अपमानजनक लग रही थीं। वाइसराय डफरिन ने थीवा को अल्टीमेटम भेज दिया। युद्ध की घोषणा कर दी गई। नरेश थीवा ने किसी बात को नहीं माना। बर्मा के लोग अंग्रेजों के सम्मुख टिक नहीं सके। 1886 में ऊपरी बर्मा पर अधिकार कर लिया गया। ऊपरी बर्मा और निचले बर्मा को मिलाकर बर्मा का एक प्रान्त बनाया गया। बर्मी छापामार युद्ध करते रहे। इस प्रकार अंग्रेज इतिहासकारों ने बर्मा विजय की कड़ी निन्दा की है। यह फ्रांसीसी प्रभाव को कम करने के लिए किया गया था। इसलिए व्यापार

में बाधा का उस पर आरोप लगाया गया। एक स्वतन्त्र शासक के रूप में वह फ्रांस और इटली से सम्बन्ध रख सकता था। वह ब्रिटिश राज्य का साम्राज्यवादी रूप था।

इस प्रकार अंग्रेजों ने भारत के पूर्व इन प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित किया और पूर्व में भी अंग्रेजी साम्राज्य की नींव मजबूत कर दी। अंग्रेजों द्वारा बर्मा पर अधिकार नग्न साम्राज्यवाद था। राजा थीवा ने अंग्रेजों पर कुछ अत्याचार अवश्य किये थे और फ्रान्स से सहायता लेने का भी प्रयत्न किया था। बर्मा के प्रति अंग्रेजों के व्यवहार का मूल आधार अंग्रेजों की श्रेष्ठता और अपने लाभ की भावना थी। सर जेम्स स्टीफेन ने लिखा था कि अंग्रेज अफगानिस्तान, भारत या पूर्व के अन्य राज्यों को वह स्थान नहीं दे सकते जो पश्चिमी यूरोप के सभ्य राज्य को प्राप्त है। वह लिखते हैं : "उनकी स्थिति निस्सन्देह निम्न है। उनकी मुख्य निम्नता यही है कि हम उन्हें ऐसी नीति का पालन नहीं करने दे सकते जिससे हमें कोई खतरा हो। यही वह आधार है, जिस पर हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अन्तर्गत सभी राज्यों से व्यवहार करते हैं। सिन्धिया, काबुल का अमीर, होल्कर, निजाम आदि सभी के साथ हमारे व्यवहार का मूल आधार यही है। ये व्यवहार इस आधार पर निश्चित होते हैं कि हम बहुत अधिक शक्तिशाली और सभ्य हैं, जबकि हमारी तुलना में वे दुर्बल और अर्द्ध-बर्बर हैं।" स्टीफेन के यह शब्द बहुत ही स्पष्ट हैं और 19वीं सदी के यूरोपीय साम्राज्यवाद के आधार को स्पष्ट करते हैं। यूरोपीय जातियाँ अपनी शक्ति और सभ्यता की श्रेष्ठता के आधार पर अपने साम्राज्य का विस्तार करना अपना अधिकार समझती थीं। भारत, बर्मा, अफगानिस्तान तथा एशिया और अफ्रीका के देशों में यूरोपीय साम्राज्यवाद के विस्तार का मूल आधार यही था।

## 6.7 अंग्रेज और अफगानिस्तान (British & Afghanistan)

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पूर्व की ओर रूस की प्रगति ने अंग्रेजों को अपने भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिए चिन्तित कर दिया। यूरोप में ब्रिटेन और रूस के सम्बन्ध अच्छे न थे और ब्रिटेन बालकन-प्रदेश तथा तुर्की की ओर रूस की प्रगति में निरन्तर बाधा उपस्थित करता रहा था। इस कारण रूस ने जानबूझकर फारस (ईरान) और अफगानिस्तान की ओर अपना दबाव बढ़ा दिया। भारत पर स्थलमार्ग से आक्रमण करने के रूस के पास दो मार्ग थे— एक फारस और हिरात होकर तथा दूसरा अफगानिस्तान होकर। इस कारण ब्रिटेन को अपने भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा की चिन्ता हो गयी।

रूस के सम्भावित आक्रमण से भारत को बचाने के विषय में दो विचारधाराएँ बनीं— एक अग्रगामी नीति की विचारधारा (Forward School) और दूसरी अकर्मण्यता की नीति की विचारधारा (School of Masterly Inactivity)। अग्रगामी नीति के समर्थकों का विश्वास था कि रूस निश्चित रूप से भारत पर आक्रमण करना चाहता है। इस कारण भारत-सरकार को आगे बढ़कर उसका मुकाबला करना चाहिए। फारस और अफगानिस्तान के राज्य भारत के समीपवर्ती राज्य थे। उन राज्यों से भारत-सरकार को सन्धियाँ करनी चाहिए और यदि रूस आक्रमण करे तो फारस या अफगानिस्तान की सीमाओं पर अपनी सेनाओं सहित उसका मुकाबला करना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि इन राज्यों में, मुख्यतया अफगानिस्तान में, उनकी इच्छा का शासक हो। इसके लिए यह भी आवश्यक समझा गया कि आवश्यकता होने पर अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप किया जाये और उसकी विदेश-नीति पर अधिकार किया जाये। अफगानिस्तान के प्रति अपनायी गयी दूसरी नीति को अकर्मण्यता की नीति कहा गया जिसका पालन मुख्यतया लॉर्ड लॉरेन्स के समय से लेकर लॉर्ड नॉर्थब्रुक के समय तक किया गया। प्रथम अफगान युद्ध में अंग्रेजों की जो हानि हुई और अफगानों की जिस स्वतन्त्र भावना का परिचय उन्हें मिला, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप इस नीति का आरम्भ हुआ। यद्यपि इस नीति की उत्पत्ति का आधार लॉर्ड कैनिंग के पत्रों में मिलता है, लेकिन इसका नाम मुख्यतया लॉर्ड लॉरेन्स से जुड़ा हुआ है। इस नीति के समर्थकों का विचार था कि रूस भारत से बहुत दूर है। इस कारण भारत-सरकार के लिए भय का कोई कारण नहीं है। रूस यदि भारत पर आक्रमण करना भी चाहता है तो इस कारण कि यूरोप में ब्रिटेन और रूस के सम्बन्ध खराब हैं, अतः पूर्व की ओर रूस की प्रगति को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि ब्रिटेन यूरोप में रूस के साथ कोई समझौता करे। अफगानिस्तान के मामले में भारत-सरकार कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी। वह वहाँ के प्रत्येक शासक को स्वीकार करेगी और उसके साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करेगी। अमीर के साथ कोई सन्धि न की जायेगी और न अफगानिस्तान में कोई अंग्रेज राजदूत रखने की माँग की जायेगी। अंग्रेज अमीर को हथियार और धन से सहायता अवश्य देंगे परन्तु किसी विदेशी शक्ति के विरुद्ध सैनिक सहायता का भरोसा

या वायदा नहीं देंगे। इस प्रकार इस नीति के अनुसार अंग्रेज अमीर को मित्र तो बनाये रखना चाहते थे परन्तु उसके साथ स्थायी सन्धि करने को तत्पर न थे और न किसी प्रकार से अफगानिस्तान के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करना चाहते थे। अंग्रेजों की इस नीति से भारत-सरकार अफगानिस्तान के साथ युद्ध से बची रही परन्तु इससे अमीर सन्तुष्ट न हुए। अफगान अंग्रेजों की सद्‌भावनाओं पर भरोसा न कर सके बल्कि भारत-सरकार की इस नीति को शंका की दृष्टि से देखने लगे।

## 6.8 प्रथम अफगान युद्ध (1839-42 ई.) (First British-Afghan War)

अफगानिस्तान की आन्तरिक स्थिति 1800 ई. में वहाँ के शासक जमानशाह के गद्दी से हटाये जाने के पश्चात् से निरन्तर खराब होती गयी। राजवंश के विभिन्न व्यक्तियों में गद्दी प्राप्त करने के लिए निरन्तर संघर्ष होते रहे। 1826 ई. में दोस्त मुहम्मद अफगानिस्तान का शासक बना। वह तत्कालीन शासकों में सर्वाधिक योग्य सिद्ध हुआ। वह बहादुर और चरित्रवान था तथा प्रथम अफगान-युद्ध तक वही अफगानिस्तान का अमीर रहा। दोस्त मुहम्मद यद्यपि अफगानिस्तान का शासक बन गया परन्तु उसकी कठिनाइयाँ समाप्त नहीं हुई थीं। उसकी सीमाओं पर विद्रोह हो रहे थे, कन्धार और हिरात उसके भाइयों के अधिकार में थे, पेशावर पर रणजीतसिंह का अधिकार था, अफगानिस्तान का पिछला शासक शाहशुजा अंग्रेजों की सहायता से अफगानिस्तान को पुनः जीतने का षड्यन्त्र कर रहा था और फारस रूस की सहायता लेकर उसकी सीमाओं पर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा था। इस प्रकार अफगानिस्तान की स्थिति पर्याप्त दुर्बल और अनिश्चित थी।

उसी अवसर पर यूरोप की राजनीति ने गम्भीरता से एशिया की राजनीति को प्रभावित किया। अंग्रेजों को रूस से भय उत्पन्न हो गया। मध्य-एशिया और फारस (ईरान) की ओर रूस का प्रभाव और सीमा-क्षेत्र निरन्तर बढ़ते जा रहे थे। 1772 ई. से 1836 ई. के बीच के समय में रूस ने एशिया में जो भूमि प्राप्त की थी वह उसके सम्पूर्ण यूरोपीय साम्राज्य से अधिक थी। यह कहा गया था कि इस समय में "वह भारत और फारस की राजधानी की ओर 1,000 मील तक बढ़ गया था।" फारस पूरी तरह से रूस के प्रभाव में जा चुका था। इस कारण अंग्रेजों का रूस से भयभीत होना उचित था। ब्रिटेन में गम्भीरतापूर्वक यह विश्वास किया जाता था कि रूस का अन्तिम उद्देश्य भारत पर आक्रमण करना है। 1830 ई. में पामर्सटन इंग्लैण्ड का विदेश-मन्त्री बना। पामर्सटन पूर्व में रूस की प्रगति को शंका की दृष्टि से देखता था और उसे रोकने के लिए प्रत्येक प्रकार से तत्पर था। इसी कारण अपनी नीति का पूर्ण पालन कराने हेतु उसने 1836 ई. में भारत में लॉर्ड ऑकलैण्ड को गवर्नर-जनरल और फारस की राजधानी तेहरान में डॉ. मेकनेल को राजदूत नियुक्त किया। 1834 ई. में फारस की गद्दी पर मुहम्मदशाह के बैठ जाने से वहाँ रूस का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। रूस के प्रभाव में आकर फारस ने 1837 ई. में हिरात पर आक्रमण कर दिया। हिरात के घेरे से अंग्रेजों को बहुत चिन्ता हो गयी, क्योंकि हिरात में काबुल और कन्धार होकर भारत पर आक्रमण करना सरल था और फारस के हाथ में हिरात का जाना एक प्रकार से रूस के ही हाथ में जाना था जैसा कि फारस के अंग्रेज प्रतिनिधि ने कहा था : "रूस और फारस के वर्तमान सम्बन्धों को देखते हुए इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अफगानिस्तान में फारस की प्रगति एक प्रकार से रूस की ही प्रगति है।" परन्तु ब्रिटिश-सरकार उस अवसर पर कुछ कर नहीं सकती थी क्योंकि 1814 ई. में फारस से हुई एक सन्धि के द्वारा यह निश्चित किया गया था कि अंग्रेज फारस और अफगानिस्तान के झगड़ों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इस प्रकार जब फारस में अंग्रेजों की कूटनीति से कोई लाभ नहीं निकला तब अंग्रेजों ने अपना ध्यान अफगानिस्तान की ओर लगाया।

1 अक्टूबर, 1838 ई. को भारत सरकार की ओर से एक घोषणा-पत्र पढ़ा गया जिसमें भावी अफगान-युद्ध के कारणों पर प्रकाश डाला गया। इस घोषणा में लार्ड ऑकलैण्ड ने जो कुछ कहा वह सर्वथा गलत था। "दोस्त मुहम्मद ने हमारे मित्र महाराजा रणजीतसिंह पर आक्रमण किया," "दोस्त मुहम्मद ने फारस की सहायता पर निर्भर करते हुए हमारी उचित माँगों को ठुकराया" आदि बातें ऐसी थीं, जो पूर्णतया झूठ थीं। घोषणा में फारस द्वारा हिरात का घेरा डालना भी युद्ध का एक कारण बताया गया था, जबकि फारस सितम्बर में ही हिरात का घेरा उठा चुका था। इस प्रकार यह घोषणा-पत्र और इसमें विश्लेषित युद्ध के कारण सर्वथा झूठे थे। वास्तव में अंग्रेजों के पास युद्ध का कोई कारण नहीं था। ऑकलैण्ड ने अपना मूल उद्देश्य तो 8 नवम्बर के आदेश-पत्र में बताया कि अफगानिस्तान पर आक्रमण इस कारण आवश्यक है कि अफगानिस्तान में एक विरोधी अमीर को हटाकर एक मित्र को गद्दी पर बैठाया जाये जिससे हमारी उत्तर-पश्चिमी सीमाओं की सुरक्षा हो सके। इस कारण अफगानिस्तान पर आक्रमण करने के निर्णय में कोई परिवर्तन न हुआ और 1839 ई. में यह आक्रमण आरम्भ हो गया।

अफगानिस्तान पर आक्रमण करने की नीति के पक्ष और विपक्ष दोनों में ही मत प्रकट किये गये हैं। लॉर्ड ऑकलैण्ड की नीति के समर्थकों का कहना है कि "दोस्त मुहम्मद के मुकाबले शाहशुजा का अफगानिस्तान की गद्दी पर अधिक नैतिक अधिकार था", "ऑकलैण्ड के पास इसके अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं रह गया था", "वह इतना आगे बढ़ चुका था कि उसके लिए पीछे हटना असम्भव था", "पर्शिया द्वारा हिरात का घेरा हटा लेने के बाद सैनिक दृष्टि से अफगानिस्तान पर आक्रमण करने का उचित अवसर था" और "ऑकलैण्ड की इस नीति में ब्रिटिश सरकार का उत्तरदायित्व था।" अफगानिस्तान पर आक्रमण करने वाली सेना को 'सिन्धु की सेना' पुकारा गया। यह नवम्बर 1838 ई. में फिरोजपुर में एकत्र हुई और सेनापति सर हेनरी फेन का स्वास्थ्य खराब हो जाने के कारण सर जॉन कीन को इसका सेनापति बनाया गया। एक सेना कन्धार की ओर से और दूसरी सेना पेशावर और खैबर के दर्रे से आगे बढ़ी। मैकनाटन को शाहशुजा का मुख्य सलाहकार और अंग्रेज प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। एलेक्जेण्डर वर्न्स को उसका सहायक नियुक्त किया गया। आरम्भ में अंग्रेजों को पूर्ण सफलता मिली। अप्रैल में कन्धार और जुलाई में गजनी को जीत लिया गया। अगस्त में दोस्त मुहम्मद काबुल से भाग गया और 7 अगस्त को शाहशुजा ने काबुल में प्रवेश किया। नवम्बर में दोस्त मुहम्मद ने आत्मसमर्पण कर दिया और उसे कोलकाता भेज दिया गया। ऐसा प्रतीत होता था कि अंग्रेजों की नीति और विजय पूर्णतया सफल हो गयी थी। परन्तु 2 नवम्बर, 1841 ई. को अफगानों ने काबुल में विद्रोह कर दिया। एलेक्जेण्डर बर्न्स, उसका भाई और लेफ्टिनेण्ट ब्रोडफुट उसी दिन मारे गये। आरम्भ में अंग्रेजों ने इस विद्रोह को कोई महत्व नहीं दिया जिससे यह विद्रोह अनेक स्थानों पर फैल गया। दोस्त मुहम्मद का पुत्र अकबर खाँ विद्रोहियों का नेता हो गया और उसने काबुल को घेर लिया। 11 दिसम्बर को मैकनाटन ने अफगानों से एक सन्धि कर ली जिसके अनुसार निश्चित किया गया कि–

1. अंग्रेज शीघ्रातिशीघ्र अफगानिस्तान से चले जायेंगे।
2. दोस्त मुहम्मद तथा अन्य सभी अफगान कैदियों को अंग्रेज छोड़ देंगे।
3. शाहशुजा पेन्शन लेकर अफगानिस्तान में रह सकता था या अंग्रेजों के साथ भारत जा सकता था।
4. चार अंग्रेज अधिकारी अफगानों को सुरक्षा-स्वरूप दे दिये जायेंगे।

इस सन्धि की शर्तें अंग्रेजों के लिए बहुत अपमानजनक थीं, परन्तु इसके अतिरिक्त उनके लिए और कोई अन्य मार्ग नहीं रह गया था। अंग्रेजों की स्थिति दिन-प्रतिदिन खराब होती जा रही थी। वृद्ध अंग्रेज सेनापति एलफिन्सटन इस स्थिति को संभालने में सर्वथा अयोग्य सिद्ध हुआ, परन्तु इस सन्धि से भी कोई विशेष लाभ न हुआ क्योंकि मैकनाटन ने अफगानों में फूट डालने का प्रयत्न किया जिससे अफगान असन्तुष्ट हो गये। 23 दिसम्बर को जब मैकनाटन दूसरी सन्धि के बारे में बातचीत करने के लिए अकबर खाँ के पास गया तब वहीं उसका कत्ल कर दिया गया। मेजर पोटिंगर जिसने मैकनाटन के कार्य-भार को सँभाला किसी भी सन्धि के लिए तत्पर न था। परन्तु सेनापति एलफिन्सटन को युद्ध में जीतने की कोई आशा न थी। इस कारण 1 जनवरी, 1842 को न केवल पुरानी सन्धि की शर्तों को ही अंग्रेजों ने स्वीकार कर लिया बल्कि निम्न शर्तें भी मान लीं :

1. अंग्रेज अपनी सारी तोपें और बारूद अफगानों को दे देंगे।
2. खजाने का सारा धन अफगानों को दे दिया जायेगा।
3. अंग्रेज 14 लाख रुपये भी अफगानों को देंगे।

इस सन्धि पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् अंग्रेजों को काबुल से जलालाबाद जाने की आज्ञा दे दी गयी। अफगानों ने आश्वासन दिया कि मार्ग में वे उनकी सुरक्षा करेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण धन, हथियार और सम्मान खोकर 16000 व्यक्तियों की अंग्रेज-सेना ने काबुल छोड़ा परन्तु मार्ग में जगह-जगह पर उन पर आक्रमण हुए। एलफिन्सटन, लॉरेन्स और पोटिंगर अकबर खाँ की हिरासत में चले गये थे। यह सभी अंग्रेज अधिकारी अपनी सेना के 120 बीमार व्यक्तियों को छोड़कर चले गए थे अतः रास्ते में सभी 120 सैनिकों को ही मार दिया गया था। केवल एक व्यक्ति डॉ. ब्राइडन इस दुःखद घटना को बताने के लिए 13 जनवरी, 1842 ई. को जलालाबाद पहुँच सका। अंग्रेजों के सम्मान की रक्षा केवल नौट ने कन्धार की और सेल ने जलालाबाद की रक्षा करके की।

जिस समय इन दुर्घटनाओं की सूचना भारत पहुँची तब लॉर्ड ऑकलैण्ड घबरा गया, परन्तु तब भी उसने अंग्रेजी सम्मान की पुनः स्थापना करने के लिए आदेश प्रेषित किये और एक सेना भारत से भेजी। लेकिन इससे पहले कि कर्नल पोलक जलालाबाद की सहायता के लिए पहुँच पाता लॉर्ड ऑकलैण्ड को गवर्नर-जनरल का पद छोड़ना पड़ा। 28 फरवरी, 1842 को लॉर्ड एलनबरो (Lord Ellenborough) ने गवर्नर-जनरल का पद ग्रहण किया।

NOTES

उसका लक्ष्य भी अफगानिस्तान में अंग्रेजी सम्मान को स्थापित करने के पश्चात् ही अंग्रेजी सेनाओं को वापस बुलाने का था, लेकिन जब उसे हकलजाई में जनरल इंग्लैण्ड और गजनी में पामर की पराजय का समाचार मिला तो उसने अंग्रेज सेना को तुरन्त वापस आ जाने के आदेश दिये। लेकिन जनरल पोलक और नौट ने इस आदेश का तुरन्त पालन नहीं किया। वे अंग्रेजी सम्मान को स्थापित किये बिना अफगानिस्तान से लौटना नहीं चाहते थे। थोड़े समय पश्चात् अंग्रेजों की स्थिति में सुधार हुआ। जनरल पोलक जलालाबाद पहुँचकर जनरल सेल से मिल गया। पोलक ने काबुल की ओर बढ़ना आरम्भ किया और रास्ते में काबुल के दर्रे के निकट खर्द में अकबर खाँ को परास्त किया। 15 सितम्बर, 1842 को पोलक ने काबुल पर अधिकार कर लिया। इधर नौट ने गजनी को जीत लिया। इस प्रकार एक बार फिर अंग्रेजों ने काबुल, कन्धार और गजनी में अपना झण्डा फहराया। अफगानों को सजा देने के लिए काबुल के मुख्य बाजार को तोपों से उड़ा दिया गया। इसके पश्चात् गजनी से सोमनाथ के मन्दिर के तथाकथित दरवाजे को लेकर अंग्रेजी सेना भारत वापस लौट आयी। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि प्रथम अफगान-युद्ध से कोई भी लाभ नहीं हुआ था। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य अफगानिस्तान में एक मित्र-शासक को गद्दी पर बैठाना था। उस उद्देश्य की पूर्ति अंग्रेज न कर सके। शाहशुजा को अफगानों ने कत्ल कर दिया था और जब युद्ध के पश्चात् अंग्रेजों ने दोस्त मुहम्मद को छोड़ दिया तब वह पुनः अफगानिस्तान चला गया और वहाँ का शासक बन गया। उसने मृत्युपर्यन्त 1863 तक वहाँ शासन किया। इस प्रकार अफगानिस्तान का शासक युद्ध के पश्चात् भी वही रहा जो युद्ध से पहले था। इस प्रकार अंग्रेजों ने बिना किसी राजनीतिक या सैनिक उद्देश्य की पूर्ति किये हुए वहाँ पर अपना धन और अपनी सेना को नष्ट किया। इस युद्ध में बिना कोई लाभ किये अंग्रेजों ने 20,000 व्यक्ति और एक करोड़ पचास लाख रुपये की क्षति उठायी।

**बोध प्रश्न**

1. अंग्रेज और अफगानिस्तान संबंध की व्याख्या कीजिए?

   ................................................................................................

   ................................................................................................

   ................................................................................................

2. तृतीय आंग्ल वर्मा युद्ध का वर्णन कीजिए?

   ................................................................................................

   ................................................................................................

   ................................................................................................

## 6.9 द्वितीय अफगान-युद्ध (1878-80) (Second British-Afghan War)

पूर्वी समस्या पर रूस और ब्रिटेन में गम्भीर मतभेद था। जबकि रूस टर्की के अशक्त राज्य को छिन्न-भिन्न करके अपने राज्य का विस्तार उस दिशा में चाहता था, ब्रिटेन प्रत्येक स्थिति में टर्की की सुरक्षा के लिए तत्पर था। इस मतभेद को लेकर रूस और ब्रिटेन क्रीमिया के युद्ध में एक-दूसरे के विरुद्ध लड़े। इस युद्ध के पश्चात् जब टर्की की ओर रूस की प्रगति में बाधा उपस्थित कर दी गयी तो रूस ने अफगानिस्तान की उत्तरी सीमाओं की ओर बढ़ना आरम्भ किया। 1868 तक रूस ने ताशकन्द, बुखारा आदि को जीतकर एक नवीन सूबा **'रूसी-ताशकन्द'** की स्थापना कर दी। अमीर शेर अली रूम की इस प्रगति से बहुत चिन्तित हुआ और उसने निरन्तर लॉरेन्स, मेयो और नॉर्थब्रुक के समय में अंग्रेजों से एक निश्चित सन्धि करने का प्रयत्न किया, परन्तु उस समय अंग्रेज 'कुशल-कार्यहीनता' की नीति का पालन कर रहे थे। उन्होंने सहायता के आश्वासन मात्र से अमीर को प्रसन्न करना चाहा जिससे अमीर सन्तुष्ट न हुआ। इस कारण अंग्रेजों से निराश होकर अमीर शेर अली ने रूस से मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। अमीर के पास अपनी सुरक्षा के लिए इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग भी न था। सम्भवतया उस समय भी वह रूस से सन्धि करने को उत्सुक न था। उसका झुकाव अंग्रेजों की तरफ था और केवल अंग्रेजों पर दबाव डालने के लिए ही उसने रूस की ओर अपना झुकाव प्रदर्शित किया था। इस कारण अमीर और रूसी ताशकन्द के गवर्नर-जनरल काफमैन में पत्र-व्यवहार आरम्भ हो गया और रूसी प्रतिनिधि अफगानिस्तान में आने आरम्भ हो गये। अमीर ने अंग्रेजों को यह सूचना देनी बन्द कर दी कि उसका रूसी प्रतिनिधियों

से क्या पत्र-व्यवहार चल रहा है। यह भी विश्वास किया जाता था कि अमीर रूसी प्रतिनिधि से वार्तालाप करता था। ब्रिटेन ने रूस से माँग की कि वह अमीर से कोई पत्र-व्यवहार न करे परन्तु रूस ने उसे स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार अमीर और अंग्रेजों के बीच सन्देह का वातावरण उत्पन्न हो गया। इसी बीच अमीर ने रूसी राजदूत को काबुल में स्वीकार किया, इससे अंग्रेजों के मन में और भी शंका निर्मित हो गयी। यह भी विश्वास किया जाता है कि लिटन को शेर अली से व्यक्तिगत रूप से घृणा हो गयी थी। उसने शेर अली से अपने यहाँ अंग्रेज राजदूत रखने की माँग को स्वीकार करने के लिए कहा तथा चेम्बरलेन को राजदूत नियुक्त कर दिया। इसकी सूचना उसने अमीर को एक पत्र के द्वारा दी। जिस दिन अंग्रेजों का यह पत्र शेर अली के पास पहुँचा उसी दिन उसके प्रिय पुत्र अब्दुल्ला जान की मृत्यु हो गयी। इस कारण शेर अली पत्र का उत्तर शीघ्र न दे सका। यह भी विश्वास किया जाता है कि रूसी राजदूत ने भी अमीर को यही सलाह दी कि वह शीघ्र उत्तर न दे। इस बीच में लिटन ने चेम्बरलेन को काबुल की ओर बढ़ने के आदेश दे दिये और अलीमज्जिद तथा जलालाबाद के सूबेदारों को सूचना भेज दी कि यदि उन्होंने अंग्रेज राजदूत को रोकने का प्रयत्न किया तो उनका यह कार्य शत्रुतापूर्ण समझा जायेगा। अमीर ने अंग्रेजों को सूचित किया कि राजदूत को इस प्रकार जबरदस्ती भेजने का तरीका उसे पसन्द नहीं है। गुप्त रूप से अंग्रेजों को यह भी सूचना दी गयी कि रूसी राजदूत शीघ्र ही वापस जाने वाला है और उसके पश्चात् ईद के त्यौहार के बाद अमीर अंग्रेज राजदूत को काबुल आने की स्वीकृति प्रदान कर देगा, परन्तु लिटन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसी अवसर पर बर्लिन की सन्धि हो जाने के कारण रूस ने अपने राजदूत को काबुल से वापस बुला लिया। परन्तु तब भी लिटन ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। अलीमज्जिद पर जब चेम्बरलेन को आगे बढ़ने से रोक दिया गया तब लिटन ने 2 नवम्बर, 1878 को अमीर से अंग्रेज राजदूत को रखने तथा अंग्रेजों से माफी माँगने की अन्तिम माँग की। 20 नवम्बर तक इन शर्तों को पूरा करने की माँग की गयी। जब इसका उत्तर समय से प्राप्त न हुआ तब 21 नवम्बर, 1878 को लिटन ने युद्ध घोषित कर दिया और द्वितीय अफगान-युद्ध आरम्भ हो गया।

द्वितीय अफगान-युद्ध को आरम्भ करने का उत्तरदायित्व पूर्णतया अंग्रेजों पर था। लिटन के समर्थकों का कहना है कि शेर अली ने रूसी राजदूत को स्वीकार करके अंग्रेजों को चुनौती दी थी और उसी की सलाह से अंग्रेज राजदूत को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। इस कारण अफगानिस्तान में बढ़ते हुए रूसी प्रभाव को रोकने के लिए लिटन के पास युद्ध के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रह गया था। यह भी उस समय के ऐतिहासिक तथ्यों से स्पष्ट होता है कि शेर अली ने रूसी राजदूत को बाध्यता में स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट है कि अमीर ने अन्त तक रूस से कोई सन्धि नहीं की थी। अमीर ने अंग्रेज राजदूत को काबुल जाने से इसलिए नहीं रोका था कि वह रूस के प्रभाव में था, बल्कि इसलिए रोका था कि प्रथम अफगान-युद्ध का उदाहरण उसके सामने उपस्थित था। वह जानता था कि अफगान इसे कभी पसन्द नहीं करेंगे बल्कि उसे भी शंका की दृष्टि से देखेंगे। इस आधार पर वह लिटन के समय में ही नहीं बल्कि लॉरेन्स, मेयो तथा नॉर्थब्रुक के समय में सन्धि की माँग करते हुए भी अंग्रेज राजदूत को काबुल में रखने के लिए तैयार न था। युद्ध की घोषणा होते ही अंग्रेज-सेना ने तीन ओर से अफगानिस्तान पर आक्रमण किया। एक सेना सर सेमुअल ब्राउन के नेतृत्व में खैबर के दर्रे से, दूसरी मेजर जनरल रॉबर्ट्स के नेतृत्व में खुर्रम की घाटी से और तीसरी सेना जनरल स्टुअर्ट के नेतृत्व में क्वेटा होती हुई बोलन के दर्रे से भेजी गयी। कन्धार पर सरलता से अधिकार कर लिया गया। शेर अली रूसी तुर्किस्तान भाग गया और वहीं 1879 में उसकी मृत्यु हुई। उसके पुत्र याकूब खाँ ने अंग्रेजों से सन्धि की बातचीत की और 26 मई, 1879 को गंडमक की सन्धि हो गयी। इस सन्धि के अनुसार—

1. याकूब खाँ को अफगानिस्तान का शासक स्वीकार किया गया।
2. उसने अंग्रेजों को खैबर और मिशनी के दर्रे तथा खुर्रम, पिशीन और सीबी के जिले दे दिये।
3. उसने अपनी विदेश-नीति का संचालन अंग्रेजों की सलाह से करना स्वीकार किया।
4. उसने एक अंग्रेज राजदूत काबुल में रखना स्वीकार किया।
5. अंग्रेजों ने विदेशी आक्रमण से अमीर की सुरक्षा करना तथा उसे छह लाख रुपया प्रति वर्ष सहायता के रूप में देना स्वीकार किया।

इस सन्धि के पश्चात् कुछ समय शान्ति रही और कवागनरी ने राजदूत का पद सँभाल लिया, परन्तु अफगानों में असन्तोष व्याप्त था और 3 सितम्बर, 1879 को काबुल में विद्रोह हो गया। कवागनरी उसी दिन उसके साथियों सहित मार दिया गया। लेकिन इस बार अंग्रेजों ने विद्रोह दबाने के लिए शीघ्र कदम उठाया। काबुल और कन्धार

पर शीघ्र अधिकार कर लिया गया। याकूब खाँ ने अंग्रेजों के पास शरण ली और एक प्रकार से अफगानिस्तान अंग्रेजों के हाथ में चला गया। अफगानों ने याकूब खाँ के पुत्र मुहम्मद जान को अमीर घोषित करके एक बार फिर अपने राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न किया, परन्तु वे असफल हुए। याकूब खाँ ने अपने सम्पूर्ण अधिकार त्याग दिये और उसे भारत भेज दिया गया।

NOTES

आरम्भ में अंग्रेजों का विचार अफगानिस्तान को छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देने का था। परन्तु उसी समय दोस्त मुहम्मद के सबसे बड़े लड़के अफजल खाँ का पुत्र अब्दुल रहमान, जो उस समय तक रूस की कैद में था, सीमा पर पहुँच गया और उसने अफगानिस्तान की गद्दी पर दावा किया। उसने अंग्रेजों से बातचीत की। उससे एक सन्धि हो गयी जिसके अनुसार–

1. सीरी और पिशीन के जिले अंग्रेजों के पास रहे।
2. अंग्रेजों ने विदेशी आक्रमण के अवसर पर अमीर को सहायता देना स्वीकार किया।
3. अमीर ने वादा किया कि वह भारत-सरकार की स्वीकृति के बिना किसी विदेशी शक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा।
4. अंग्रेजों ने सहायता के रूप में अमीर को 12 लाख रुपये प्रति वर्ष देना स्वीकार किया।

उसके पश्चात् अंग्रेज अफगानिस्तान छोड़कर भारत आ गये और अब्दुल रहमान को अफगानिस्तान का शासक स्वीकार कर लिया गया।

## 6.10 तृतीय अफगान-युद्ध (Third British-Afghan War)

द्वितीय अफगान-युद्ध के पश्चात् भी ब्रिटेन को रूस के पूर्व की ओर बढ़ने का खतरा समाप्त नहीं हुआ। दोनों राज्यों में शंका और सन्देह के कारण उपस्थित होते रहे। 1885 में रूस के पंजदेह पर अधिकार कर लेने से एक बार गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गयी, परन्तु जब रूस ने जुलफिकार का दर्रा अफगानिस्तान को दे दिया तो झगड़ा समाप्त हो गया। अन्त में, 1895 में और बाद में 1907 में ब्रिटेन और रूस के समझौते द्वारा रूस और ब्रिटेन के झगड़ों का सभी स्थानों पर निर्णय कर लिया गया। इस प्रकार भारत पर रूस के आक्रमण की समस्या समाप्त हो गयी। तृतीय अफगान-युद्ध का कारण अमीर हबीबुल्ला का दुस्साहस था। प्रथम महायुद्ध के समय में जर्मनी द्वारा भड़काये जाने पर उसने भारत की सीमा पर आक्रमण किया जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। 1921 में अफगानिस्तान से एक सन्धि करके मित्रता कर ली गयी। उसके पश्चात् अंग्रेजों के लिए अफगानिस्तान की तरफ से कोई समस्या नहीं खड़ी हुई।

## 6.11 सारांश

इस प्रकार ब्रिटिशों ने समय-समय पर आवश्यकतानुसार पड़ोसी राज्यों व देशों के साथ युद्ध किए और उनमें निश्चित सफलता हासिल कर ब्रिटिश साम्राज्य को मजबूत बनाया।

## 6.12 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घउत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. अंग्रेज-सिन्ध युद्ध की विवेचना कीजिए।
2. अंग्रेज और बर्मा युद्ध की विस्तृत विवेचना कीजिए।
3. अंग्रेजों के अफगानिस्तान के साथ जो युद्ध हुए उसकी समीक्षा कीजिए।

**लघुउत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. अंग्रेज-सिन्ध युद्ध से आप क्या समझते हो?
2. प्रथम आंग्ल-बर्मा युद्ध के कारण बताइए।

3. तृतीय आंग्ल-बर्मा युद्ध के कारण बताइए।
4. अंग्रेज-अफगानिस्तान युद्ध पर टिप्पणी लिखिए।
5. यान्डूब की संधि से आप क्या समझते हो?

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

1. अठारहवीं सदी के अंत में अफगानिस्तान का राज्य था—
   (A) खैरपुर (B) नेपाल (C) यूरोप (D) सहारा
2. सिन्ध को अंग्रेजी राज्य में कब सम्मिलित कर दिया—
   (A) जून 1860 में (B) अगस्त 1843 में (C) फरवरी 1820 में (D) इनमें से कोई नहीं
3. यान्डूब की सन्धि कब हुई—
   (A) मार्च 1815 में (B) जनवरी 1830 में (C) फरवरी 1826 में (D) जून 1850 में
4. यान्डूब की संधि की शर्तें हैं—
   (A) बर्मा राज्य के दो प्रांतों पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया
   (B) दोनों राज्य एक-दूसरे से व्यापार संधि करेंगे
   (C) दोनों राज्य एक-दूसरे के मित्र रहेंगे
   (D) उपरोक्त सभी

[उत्तर– 1. (A), 2. (B), 3. (C), 4. (D)]

## 6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

# अध्याय–7 अंग्रेज-सिख युद्ध
## (ANGLO-SIKH WARS)

NOTES

**इकाई की रूपरेखा**

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 रणजीत सिंह का उदय
7.3 केन्द्रीय प्रशासन
7.4 अंग्रेजों के साथ संबंध
7.5 अमृतसर की संधि (1809)
7.6 रणजीत सिंह और अंग्रेजों के संबंध (1809 से 1839 तक)
7.7 प्रथम अंग्रेज-सिक्ख युद्ध (1845-46)
7.8 द्वितीय अंग्रेज-सिक्ख युद्ध
7.9 सारांश
7.10 अभ्सास प्रश्न
7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. सिक्खों के उदय का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. रणजीत सिंह प्रशासनिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. रणजीत सिंह और अंग्रेजों के संबंध का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. इनका केन्द्रीय प्रशासन के प्रभाव का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 7.1 प्रस्तावना

### सिक्खों का उदय
### (Rise of Sikh Power)

**सिक्खों का राजनीतिक उत्थान -** सोलहवीं तथा सत्रहवीं शताब्दी में गुरु नानक तथा बाद में गुरु गोविन्दसिंह ने अपना धार्मिक सम्प्रदाय स्थापित किया और जाटों में तथा मुख्यतः सतलज नदी के दक्षिणी भू-भाग में धर्म सुधारार्थ अपने मत का प्रचार करने के लिए कुछ शिष्यों को दीक्षित किया। यही 'शिष्य' शब्द आगे चलकर सिक्ख के रूप में प्रचलित हो गया और धीरे-धीरे सिक्खों की एक जाति ही बन गई।

गुरु नानक का जन्म 1469 ई. में लाहौर से 15 मील दक्षिण में कनकाच में हुआ था। वे अपने नाना के घर पैदा हुए थे और उस समय ननिहाल में जन्म लेने वाले लड़के को नानक कहा जाता था। उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के लिए अध्ययन एवं लोगों से विचार-विमर्श को माध्यम बनाया। इसके लिए दूर-दूर की यात्रायें कीं और वे शायद भारत से बाहर भी गये। जीवन में उन्होंने उपदेश दिया कि उसी एक की पूजा करो जो अदृश्य है, पवित्र जीवन बिताओ और दूसरों की त्रुटियों के प्रति सहिष्णु बनो। उनका नम्र व्यवहार, सच्ची पवित्रता और लोगों को सत्पथ

पर ले जाने वाली गंभीर वाणी सदैव प्रशंसनीय रही। सत्तर वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हुई और उस समय तक उनके बहुत से शिष्य हो गये थे।

सिक्ख धर्म का विकास हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक रूढ़िवादिता से हटकर मानव जाति के कल्याण एवं शांति पथ पर अग्रसर करने के लिए हुआ। विशेष रूप से हिन्दू समुदाय नानक के विचारों से प्रभावित हुआ और उनकी शिक्षाओं को अपनाया। मुगल शासन ने गुरु नानक की शिक्षाओं को इस्लाम विरोधी माना था। औरंगजेब द्वारा गुरु तेगबहादुर को 1675 ई. में प्राणदंड दिया गया। तेगबहादुर के पुत्र एवं उनके उत्तराधिकारी दसवें गुरु गोविन्द पर इस निर्मम कृत्य से भारी आघात पहुँचा अतः उन्होंने सिक्खों को सैन्य शक्ति के रूप में संगठित करने का निश्चय किया। सिक्खों को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए 1699 ई. में व्यक्तिगत गुरुत्व का सिद्धांत समाप्त करके 'खालसा' प्रजाधिपत्य की स्थापना की गई। इस समय से सिक्खों ने अपनी विशिष्ट वेशभूषा अपना ली थी, जिसमें केश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छ थे। खालसा पंथ की स्थापना से सिक्खों का राजनीतिक स्वरूप सामने आने लगता है।

'खालस' या खालीस शब्द अरबी भाषा का है और इसका प्रयोग 'शुद्ध', 'विशेष' आदि अर्थों में होता है। गुरु गोविन्द को एक पठान के पुत्रों ने 1708 में गोदावरी नदी के तट पर स्थित नंदेर में मार दिया था। मृत्यु के समय शिष्यों ने उनके उत्तराधिकारी के बारे में पूछा। गोविन्द जी ने उन्हें सदैव प्रसन्न रहने का आशीर्वाद देते हुए कहा कि वे खालसा को ईश्वर की रक्षा के लिए अर्पित किये जा रहे हैं जो अमर और अविनाशी है। जो गुरु को देखना चाहता है वह नानक जी के ग्रंथ में उन्हें ढूँढ़े। गुरुजी खालसा के साथ ही रहेंगे, दृढ़ रहो और श्रद्धा रखो, जहाँ पाँच सिक्ख एकत्रित होंगे, वहाँ भी उपस्थित रहूँगा।

अब तक खालसा जो एक सामरिक शक्ति बन गयी थी, मुगलों की दमन नीति उसे नष्ट नहीं कर सकी, अपितु दिल्ली सरकार की बढ़ती हुई कमजोरी ने सिक्ख संगठन को शक्ति प्रदान की। 1739 ई. के नादिरशाह के आक्रमण और पहले तीन अब्दाली हमलों (1748-52 ई.) ने पंजाब पर मुगल आधिपत्य लगभग समाप्त कर दिया था। उन्होंने 1745 ई. से अपने आपको 100-100 व्यक्तियों के छोटे-छोटे दलों में विभाजित कर लिया था और उनका एक नेता होता था। इन विभिन्न दलों ने मिलकर 1748 ई. में 'दल खालसा' संगठन की नींव डाली। इसके अलग-अलग दलों को 11 जत्थों में बाँट दिया गया। इस जत्थों को मिसल भी कहा जाता था। इस तरह दल खालसा की स्थापना से सिक्खों में संगठन और अनुशासन की भावना ने विकास किया। ये मिसलें इस प्रकार थीं-

- भाँगी (भाँग पीने वाले)
- निशानिया (शहीद या योद्धा के वंशज)
- रामगढ़िया (रामगढ़ के)
- नक्कई, (नकाई स्थान के)
- अहलुवालिया (एक गाँव जहाँ खालसा ने घोषणा की),
- घनई या कन्हैया
- करोड़ासिंहिया
- सुकरचकिया (सुकरचकिया- यह सरदारों का गाँव था),
- दल्लेवालिया (दलेवालिया-सरदारों को)
- फीजुलपुरिया (फैजुल्लापुरिया सिंह पुरिया) एवं
- फुलकिया।

इन मिसलों के नेताओं की एक समिति होती थी जो समस्त दलों के कार्यों पर नियंत्रण रखती थी। इनके मध्य एकता का सूत्र अमृतसर में आयोजित होने वाला वार्षिक सम्मेलन "सरबत खालसा" था। इसके अतिरिक्त मिसलों के सरदार भी साल में एक बार मिलते थे जिसे "गुरु मथ्था" (गुरुमता) कहते थे।

'दल खालसा' की स्थापना सिक्खों के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना थी। विभिन्न मसलों में एकता का अभाव था और उनमें परस्पर संघर्ष चला करते थे। इनमें पाँच मिसलें ही शक्तिशाली थीं। सुकरचकिया, कन्हैया,

NOTES

नकाई, अहलुवालिया व भाँगी। इनमें भाँगी सबसे शक्तिशाली थी। उनका अमृतसर, लाहौर, पश्चिमी पंजाब के कुछ इलाकों पर अधिकार था।

1771 ई. में जब महादजी सिंधिया ने दिल्ली पर नियंत्रण स्थापित किया उस समय तक पंजाब में सिक्ख दृढ़तापूर्वक अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुके थे। 1793-69 के मध्य अहमदशाह अब्दाली ने कई बार पंजाब पर आक्रमण किये, किन्तु संगठित सिक्ख शक्ति के समक्ष हर एक अभियान की सफलता उत्तरोत्तर कम होती गई। जहाँ पंजाब का कृषक वर्ग विदेशी आक्रान्ताओं एवं मुगल अत्याचारों से बचने के लिए सिक्ख सम्प्रदाय की ओर आकृष्ट हुआ, वहीं दल खालसा ने अपना राजनैतिक प्रभाव बढ़ाने के लिए और पंजाब में व्याप्त अव्यवस्था को सुधारने के उद्देश्य से 1753 ई. में 'राखी प्रथा' को प्रारम्भ किया। यही वह प्रथा थी जिसके आधार पर सिक्खों ने अपने राजनैतिक अधिकारों का उपयोग करना आरम्भ किया। इस प्रथा के अन्तर्गत वे प्रत्येक गाँव से उपज का पाँचवाँ भाग लेते थे और उस गाँव की सुरक्षा का प्रबंध किया जाता था। सिक्ख अपने आपको राजनैतिक रूप से शक्तिशाली बनाते जा रहे थे। इसका प्रमाण यह है कि 1761 ई. का अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण सिक्खों की वजह से ही असफल हो गया था। इसके बाद भी उसने कई बार आक्रमण किये, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। इस सदी के अन्त में पंजाब में सिक्ख मिसलें ही अपना प्रभुत्व बनाए हुए थीं। इसके अलावा वे आपस में एक दूसरे को सहयोग करने में भी आगे रहते थे।

परन्तु जैसे-जैसे मिसलों का प्रभुत्व बढ़ा वैसे-वैसे सिक्खों में आपसी कलह भी बढ़ती गई। जब कोई सैनिक अभियान नहीं होता था तो ये मिसलें आपस में ही संघर्षरत हो जाया करती थीं। इस तरह पंजाब में गृह कलह का युग प्रारम्भ हो गया। मराठा सरदार सिंधिया ने सिक्खों से संधि की। इस तरह सिक्ख एक प्रमुख शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

रणजीत सिंह के उत्कर्ष के समय भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ काफी जटिल थीं। अंग्रेजों की महत्वाकांक्षाओं एवं अफगानिस्तान के शासक जमान शाह के आक्रमणों के बढ़ते खतरे को देखते हुए रणजीत सिंह का उद्भव अपने आप में एक महत्वपूर्ण घटना थी।

## 7.2 रणजीत सिंह का उदय

**रणजीत सिंह का उत्थान** - जिस समय रणजीत सिंह का जन्म हुआ उस समय सिक्खों की बारह मिसलें प्रमुख थीं। इनमें आपस में संघर्ष हुआ करता था। इन बारह मिसलों में से केवल पाँच ही मिसलें ताकतवर थीं- सुकरचकिया, कन्हैया, नकाई, अहलुवालिया व भाँगी। इनमें भी भाँगी सबसे अधिक ताकतवर थे। रणजीत सिंह का जन्म सुकरचकिया मिसल में सरदार महासिंह के यहाँ 1780 ई. में हुआ था। जब वह बारह वर्ष का था तभी उसके पिता का स्वर्गवास हो गया और उसे सरदार का पद संभालना पड़ा। उसका विवाह कन्हैया मिसल के सरदार की पोती से हुआ। प्रारम्भ में रणजीत सिंह अपनी सास के प्रभाव में रहा परन्तु अठारह वर्ष का होने के बाद उसने स्वतंत्र रूप से कार्य करना प्रारम्भ किया।

इस समय कांगड़ा का शासक सिक्खों की आपसी फूट का लाभ उठाकर अफगानिस्तान के शाह की मदद से अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ाना चाहता था। इधर नेपाल के गुरखे भी अपनी सीमा को फैलाने का प्रयास कर रहे थे और इस प्रयास में उनका संघर्ष कांगड़ा के शासक संसार चन्द से होता रहता था। सिंधिया के नेतृत्व में मराठों ने दिल्ली में अपना प्रभुत्व बना रखा था। दूसरी ओर अफगानिस्तान के शासक के भारत पर आक्रमण का खतरा निरन्तर बढ़ रहा था। अंग्रेज भारत में अपनी राजनैतिक भूमिका को निरन्तर बढ़ा रहे थे। इन तमाम राजनैतिक परिस्थितियों में रणजीत सिंह का सत्ता संभालना और विस्तार करना एक महत्वपूर्ण घटना थी।

रणजीत सिंह के समय में 1796 में जमान शाह ने पंजाब पर आक्रमण किया। भारत के कई शासकों ने उसका साथ दिया। मसलन अवध के नवाब, टीपू सुल्तान, पटियाला के सिक्ख शासक इत्यादि। अब सिक्ख [illegible] ने विचार-विमर्श किया और जमान शाह से बचने के लिए पहाड़ो में जाने का निश्चय किया। इस समय रणजीत सिंह ने महत्वपूर्ण निर्णय लेते हुए कहा कि सिक्ख जनता को अफगान शासक की कृपा पर छोड़ जाना सिक्खों के लिए कायरतापूर्ण कार्य होगा। रणजीत सिंह के नेतृत्व में एक सिक्ख सेना का गठन किया गया और उसने लाहौर का घेरा डाला। इधर अफगान शासक को आन्तरिक कारणों से वापस लौटना पड़ा। अगले वर्ष जमान शाह ने सिक्खों को सबक सिखाने के लिए पुनः सेना भेजी, परन्तु रणजीत सिंह के नेतृत्व के कारण अफगानों को पुनः पराजित होना पड़ा। इन दो संघर्षों के कारण रणजीत सिंह सिक्खों का नेता बन गया।

रणजीत सिंह के राजनैतिक नेता बनने की इस प्रक्रिया में उसने लाहौर पर अधिकार किया। लाहौर पर अधिकार को कुछ इतिहासकार जमान शाह द्वारा उसे भेंट में दिया हुआ भी मानते हैं। लाहौर पर रणजीत सिंह का अधिकार होने से कुछ सिक्ख मिसलें उसके खिलाफ हो गईं। इनमें भाँगी, रामगढ़िया तथा कुछ और सिक्ख सरदारों ने रणजीत सिंह के खिलाफ अभियान किया। भसीन में आयी इन विरोधी सेनाओं के असफल होने से रणजीत सिंह के प्रभाव और प्रतिष्ठा में बहुत अधिक वृद्धि हुई। रणजीत सिंह ने अब कुछ सिक्खों के साथ विवाह संबंध स्थापित किए तथा कुछ से मित्रता स्थापित की। अहलुवालिया मिसल के नेता फतेह सिंह उसका मित्र बन गया। इसके बाद रणजीत सिंह ने जम्मू पर आक्रमण किया और वहाँ के राजा को कर देने के लिए विवश किया। 1801 ई. में रणजीत सिंह ने महाराजा का खिताब धारण किया, परन्तु वह गद्दी पर नहीं बैठा।

अब रणजीत सिंह अपनी राजनैतिक शक्ति का विस्तार करने लगा। उसने कसूर में पठान सरदार निजामुद्दीन को पराजित किया। इसके बाद उसने रावलपिंडी को अपने अधिकार में ले लिया। उसने मुलतान का घेरा डाला तो वहाँ के राजा ने उसे कर देना स्वीकार कर लिया। रणजीत सिंह ने अमृतसर पर आक्रमण करके उसके किले गोविन्दगढ़ को अपने अधिकार में कर लिया। मराठों के पतन के बाद उसने सतलज के पूर्व के राज्यों पर अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न किया। 1806 से 1808 के बीच उसने दो बार सतलज नदी को पार किया और पटियाला, नाभा राज्यों के आपसी झगड़ों को सुलझाने का प्रयत्न किया।

रणजीत सिंह ने अपनी शक्ति का विस्तार करने के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये जिनका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। उसने सर्वप्रथम अपनी सत्ता को सुदृढ़ करने हेतु वैवाहिक संबंधों की स्थापना की। रणजीत सिंह के कई रानियाँ थीं। छोटी-छोटी मिसलों का सहयोग प्राप्त करने के लिए उसने कई शादियाँ कीं।

अपनी शक्तियों में अभिवृद्धि करने के लिए दूसरी प्रादेशिक विस्तार की नीति अपनाई। लाहौर की विजय से भाँगी, रामगढ़िया एवं अन्य शिखर सरदार रणजीत सिंह के विरोधी हो गये थे। लाहौर के पूर्व भसीन गाँव में एक सेना भी एकत्र हुई। रणजीत सिंह इनका सामना करने के लिए तत्पर था, लेकिन युद्ध प्रारंभ होने के पूर्व ही 1800 ई. में विरोधी गुट में आपसी विवाद हो गया। उनका नेता गुलाबसिंह भाँगी के मर जाने से संघर्ष टल गया। पंजाब के छोटे-छोटे राज्य परस्पर संघर्षरत रहते थे और रणजीत सिंह जैसा महत्वाकांक्षी व्यक्ति इन परिस्थितियों का लाभ उठाना चाहता था। अपने अनुकूल परिस्थितियों का उसने पूरा लाभ उठाया। 1805 ई. के लगभग जम्मू, नरवल, मिरोवल, अकलगढ़, पिंडी, भाटिया, धन्नी, फगवाड़ा, जिंद, कर्ला, कठिया आदि को अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया और कुछ को अपने अधीनस्थ बना लिया। 1806 से 1809 ई. के मध्य कसूर, पठानकोट, जसरोटा, छम्ब, बसोली, शेखपुरा, गुजरात, कांगड़ा पर भी उसका अधिकार हो गया और कुछ राज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

**राज्य विस्तार -** रणजीत सिंह द्वारा सत्ता प्राप्त करने के समय पंजाब में ऐसे क्षेत्र भी थे जिन पर अफगानों की विजय के बाद उन्हें उन नेताओं के अधीन सौंप दिया गया था जो कर अदा न करने पर भी अफगान शासकों को अपना शासक मानते थे। इनमें प्रमुख थे— कश्मीर, मुल्तान, डेरा इस्माल खाँ, डेरा गाजी खाँ एवं झंग आदि।

इन राज्यों पर अधिकार करना रणजीत सिंह के राज्य विस्तार के लिए अनिवार्य था। उसे सबसे पहले 1809 से 1811 ई. के बीच गुरखों से संघर्ष करना पड़ा। कांगड़ा शासक संसारचंद्र ने गुरखों से प्रतिकार के लिए रणजीत सिंह से सहायता माँगी। इसके बदले कांगड़ा का किला सिक्ख राजा को देने का वादा किया। कुछ सहयोगियों के साथ महाराजा ने अन्ततः कांगड़ा पर अधिकार कर लिया।

उसने हैदारू में जुलाई 1813 को अफगानों को पराजित किया और अटक पर भी अधिकार कर लिया। उसने नगर की रक्षा के लिए एक सेनादल तैनात किया। अफगान राजा शाहशुजा को उसके सौतेले भाई महमूदशाह ने हटाकर कंधार पर अधिकार कर उसे बाहर खदेड़ दिया था। शाहशुजा ने (1813-1814 ई.) लाहौर में शरण ली। रणजीत ने यहाँ उससे जगत् प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा प्राप्त किया। अप्रैल 1815 में शाहशुजा को लाहौर से भागकर ब्रिटिश प्रभाव क्षेत्र लुधियाना जाना पड़ा। इस दौरान (1818 ई.) रणजीत सिंह ने मुलतान पर अधिकार कर दिया था। 1819 ई. में महाराजा ने कश्मीर अभियान हेतु मिश्र दीवानचंद के नेतृत्व में एक सेना भेजी जिसने शाह अब्दाली के उत्तराधिकारियों द्वारा नियुक्त गवर्नर जब्बार खाँ को अपदस्थ कर अपनी सत्ता स्थापित कर ली। इस तरह उसका राज्य उत्तर में कश्मीर तक विस्तृत हो गया। 1820 व 1821 में डेरा गाजी खाँ, डेरा इस्माइल खाँ तथा लेह को जीत लिया गया। पेशावर भी 1823 में उसके अधीन हो गया। इस प्रकार 1824 तक सिंधु घाटी का एक बड़ा भाग उसके अधिकार में था।

**रणजीत सिंह की प्रशासनिक व्यवस्था -** रणजीत सिंह यद्यपि एक निरंकुश शासक था तथापि वह खालसा के नाम से शासन को संचालित करता था। उसकी सरकार को '**खालसा सरकार**' कहा गया। प्रशासन के क्षेत्र में रणजीत सिंह की मुख्य समस्या विभिन्न सिक्ख सामन्तों पर नियंत्रण स्थापित करने की थी।

उसने गुरुमत - प्रजातांत्रिक सिक्ख व्यवस्था - को प्रोत्साहन नहीं दिया एवं डोगरा सरदारों और मुसलमानों को उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसे राज्य प्रशासन में पाँच मंत्री सहयोग करते थे। उसके प्रशासन में मुख्यमंत्री का पद सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। यह पद राजा के अत्यंत विश्वासपात्र लोगों को दिया जाता था। दूसरा महत्वपूर्ण मंत्रीपद **विदेश मंत्री** का था जिस पर फकीर अजीजुद्दीन को नियुक्त किया गया था। अजीजुद्दीन उन व्यक्तियों में से था, जिन्होंने अंग्रेजों से मैत्री का समर्थन किया। कूटनीतिक कार्यों में उसका विशेष महत्व था। हरीसिंह नलवा भी इस पद पर कार्य कर चुका था। भगवानदास अर्थमंत्री का कार्य देखता था। **सदर-ए-ड्योढ़ी** का पद भी महत्वपूर्ण था, क्योंकि इस पद पर कार्य करने वाला अधिकारी महाराजा के निकट सम्पर्क में रहता था।

पंजाब के डोगरे सामन्तों में तीन भाई ध्यानसिंह, गुलाबसिंह, सुचेतासिंह और ध्यानसिंह के पुत्र हीरासिंह का राज्य प्रशासन में विशेष स्थान था। गुलाबसिंह को छोटी-सी टुकड़ी का सरदार बना दिया गया।

**बोध प्रश्न**

1. सिक्खों का राजनीतिक उत्थान का वर्णन कीजिए?

   ............................................................................................

   ............................................................................................

   ............................................................................................

2. रणजीत सिंह की प्रशासनिक व्यवस्था का वर्णन कीजिए?

   ............................................................................................

   ............................................................................................

   ............................................................................................

   ............................................................................................

## 7.3 केन्द्रीय प्रशासन

केन्द्र में 12 प्रशासकीय विभाग थे, कुछ महत्वपूर्ण विभाग इस प्रकार थे -

- **''दफ्तर-ए-अबवाब-दल-माल''** - भू-राजस्व एवं अन्य आय के स्रोतों का विवरण यह विभाग रखता था।
- **''दफ्तर-ए-तोजिहात''** - राज परिवार के व्यय आदि की व्यवस्था करता था। हरम के व्यय का प्रबंध भी यही विभाग देखता था।
- **''दफ्तर-ए-मवाजाब''** सैनिक और असैनिक कार्मिकों के वेतन का हिसाब रखता था।
- **''दफ्तर-ए-रोजनामचा खर्च''** - महाराजा के प्रतिदिन के व्यय का विवरण रखता था।

**प्रांतीय प्रशासन –**

रणजीत सिंह का राज्य चार प्रांतों में विभक्त था -

- कश्मीर (जन्नत - ए - नाजिर),
- मुल्तान (दारूल अमन),
- पेशावर,
- लाहौर।

कुछ पर्वतीय सामन्त महाराजा की अधीनता में क्षेत्र का प्रशासन स्वयं संचालित करते थे और राजा को प्रतिवर्ष कर देते थे। इसके अतिरिक्त कुछ नवाब एवं सरदारों को भी प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे जिनसे उनका राज्य हस्तगत कर लिया गया था, किन्तु उन्हें जागीर प्रदान कर दी गयी थी।

प्रत्येक सूबा परगनों में विभक्त था, परगने तालुकों तथा प्रत्येक तालुका मौजों में बँटा था जो 50 से 400 की संख्या में होते थे। राजस्व की सुविधा एवं स्थानीय निवासियों के सांस्कृतिक एवं धार्मिक अस्तित्व को बनाये रखने की दृष्टि से यह व्यवस्था की गयी। प्रत्येक सूबे का प्रमुख अधिकारी नाजिम कहलाता था। नाजिम योग्य एवं विश्वसनीय व्यक्ति को ही बनाया जाता था। नाजिम के अधीन कई सरदार होते थे। भू-राजस्व वसूली पर नियंत्रण तथा करदार, मुकद्दम एवं पटवारी की नियुक्ति आदि नाजिम के प्रमुख कार्य थे। इसके अतिरिक्त वह नीचे के कार्यालयों की अपीलें भी सुनता था। दूसरा पदाधिकारी करदार कहा जाता था। प्रांत के एक भाग का प्रशासन उसके जिम्मे था। अपने प्रभाग में करदार को विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। भूराजस्व प्रबंध के अतिरिक्त कस्टम, एक्साइज एवं कोषाधिकारी (खचांजी) का कार्य भी वह संपादित करता था। साथ ही उसे स्थानीय मजिस्ट्रेट एवं न्यायाधीश का कार्य भी करना होता था।

**न्यायिक प्रशासन -** न्याय प्रचलित परम्पराओं पर आधारित था क्योंकि लिखित संविधान या कानून का अभाव था। ग्रामीण विवादों का निपटारा पंचायतों द्वारा किया जाता था। रणजीत सिंह ने धर्मनिरपेक्ष न्याय व्यवस्था की स्थापना की, इसके अंतर्गत प्रत्येक जाति के लोगों को अपनी परम्परा के अनुसार न्याय प्राप्त करने का अधिकार था। इस तरह मुस्लिम विवादों का न्याय काजी ही करते थे। सूबे में सबसे उच्च न्यायालय नाजिम होता है। यह अपीलीय न्यायालय था जो करदार के फैसलों की अपील सुनता था। अमृतसर और पेशावर में विशेष अदालती न्यायालय थे जो इन नगरों के फौजदारी और दीवानी मुकदमों की सुनवाई करते थे।

राजधानी लाहौर में **''अदालत-उल-आला''** (हाईकोर्ट) थी जिसमें उच्च अधिकारी निर्णय करते थे। यह न्यायालय नाजिमों और करदारों के न्यायालयों की अपीलें सुनता था। अदालत-उल-आला की अपील महाराजा के यहाँ होती थी। रणजीत सिंह यह चेष्टा करता था कि उसके हस्तक्षेप से लोगों को सही न्याय प्राप्त हो। लोगों को सीधे उच्च अधिकारियों को अपील करने का अधिकार था। न्याय प्रणाली सरल और कम खर्चीली थी। कानूनी जटिलतायें नहीं थीं, क्योंकि न्याय अलिखित नियमों पर आधारित था। मृत्युदंड केवल राजा दे सकता था।

**भू-राजस्व -** राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था- लगान। राज्य की आय लगभग 3 करोड़ रुपये थी जिसमें दो करोड़ रुपये भू-राजस्व के सम्मिलित थे। मालगुजारी पूरे वर्ष की उपज पर 2/5 से 1/3 तक ली जाती थी। प्रारंभ में भू-राजस्व की बँटाई प्रथा 1823 ई. तक चलती रही। इस विधि में कर वस्तु के रूप में लिया जाता था। दूसरी 'कनकूत' व्यवस्था 1824 से 1834 ई. तक चली। इसके अंतर्गत भूमि के परिमापन द्वारा क्षेत्र के आधार पर लगान निर्धारित किया जाता था। वसूली खड़ी फसल की उपज को आधार बनाकर नकद की जाती थी। इस पद्धति में फसल की कटाई और अनाज को मण्डी तक पहुँचाने की परेशानी समाप्त हो गई। खेतों से अनाज की चोरी का भय न रहा। तीसरी प्रणाली नीलामी योजना थी और तीन से छह वर्ष के लिए वसूली का अधिकार नीलामी के आधार पर ऊँची बोली लगाने वाले किसानों को दिया जाता था। पैदावार एवं सिंचाई साधनों को दृष्टिगत रखते हुए लगान अलग-अलग था। सिंचित भूमि पर एक मुश्त राशि अलग से कर रूप में ली जाती थी।

**सैन्य प्रबंध -** रणजीत सिंह तत्कालीन राजनीतिक स्थिति एवं भारत में बढ़ते अंग्रेजी प्रभुत्व से परिचित था। रणजीत सिंह की योग्यता आधुनिक ढंग की शक्तिशाली सेना की स्थापना से मानी जाती है। अंग्रेज सैन्य व्यवस्था से परिचित होने के बाद उसने पैदल सेना की स्थापना पर विशेष बल दिया। उसकी सैन्य व्यवस्था की तीन प्रमुख विशेषतायें थीं– घुड़सवार सेना को आधुनिक ढंग से संगठित किया, दूसरी विशाल प्रशिक्षित पैदल सेना तैयार की एवं तीसरे तोपखाने का समुचित विकास किया गया।

उसकी सेना को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

- नियमित सेना या फौज-ए-खास,
- अनियमित सेना अथवा फौज-ए-बेकवायद।

फौज-ए-खास तीन भागों में विभक्त थी : घुड़सवार, पैदल एवं तोपखाना।

## 7.4 अंग्रेजों के साथ संबंध

1805 के आसपास पंजाब की स्थिति काफी बदल चुकी थी। रणजीत सिंह एक शक्तिशाली सेना के माध्यम

NOTES

से लगभग पंजाब के अधिकांश क्षेत्रों पर अधिकार कर चुका था, परन्तु हरियाणा तथा फुलकिया के क्षेत्रों पर मराठों का प्रभुत्व था। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने सिंधिया को हराकर दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया था। अब मुगल सम्राट अंग्रेजों के प्रभाव में आ चुका था। 1804 में होल्कर को अंग्रेजों ने परास्त कर दिया था। होल्कर ने अंग्रेजों के विरुद्ध रणजीत सिंह से मदद माँगी। लार्ड लेक ने रणजीत सिंह से अपील की कि वह होल्कर की मदद न करे और उसे पंजाब से निकालने की व्यवस्था करे। अब रणजीत सिंह के सामने एक समस्या आ गई कि वह किसके साथ रहे क्योंकि अंग्रेजों ने यह धमकी भी दी थी कि यदि उसने होल्कर को पंजाब से नहीं निकाला तो वे उसका पीछा अमृतसर तक करेंगे। इस स्थिति में पंजाब के युद्ध स्थल बनने की संभावना थी। इस स्थिति में उसने अंग्रेजों के साथ संधि करने का निश्चय किया।

**1806 की संधि** - जनवरी, 1806 में रणजीत सिंह, अंग्रेज और कपूरथला के सिक्ख सरदार फतेहसिंह के बीच एक संधि हुई। इसमें निम्न प्रस्ताव रखे गए -

- रणजीत सिंह कंपनी के साथ मित्रता के संबंध रखेगा।
- सिक्ख अंग्रेजों के शत्रुओं के साथ मित्रता नहीं करेंगे।
- होल्कर को अमृतसर से तीस कोस दिल्ली की ओर ले जाने की कोशिश करेंगे।
- कंपनी अब सतलज नदी के रणजीत सिंह के क्षेत्रों के इलाकों में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

चूँकि रणजीत सिंह का लक्ष्य एक ताकतवर सिक्ख राज्य की स्थापना करना था। अतः उसने सतलज नदी के उत्तर के राज्यों में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न किया। उसके राजनीतिक लक्ष्य के संबंध में कनिंघम ने लिखा है - "रणजीत सिंह ने विभिन्नतापूर्ण और बिखरे हुए, परन्तु विस्तृत सिक्ख राष्ट्र को एक संगठित राज्य अथवा राष्ट्रमण्डल में परिवर्तित करने का प्रयत्न प्रायः उसी प्रकार की बुद्धिमत्तापूर्ण योजना से किया जिस प्रकार गोविन्दसिंह ने एक समुदाय को जन-समुदाय में परिवर्तन करके नानक के आदर्शों को एक ध्येय तथा क्रियात्मक स्वरूप प्रदान किया था।" जुलाई, 1806 को रणजीत सिंह ने सतलज पार करके लुधियाना पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने फुलकिया के राज्यों के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप किया। सतलज पार के प्रदेशों में रणजीत सिंह का प्रभाव बढ़ रहा था। अंग्रेजों को यह ठीक नहीं लगा और उन्होंने उन राज्यों को रणजीत सिंह के स्थान पर अंग्रेजों से सहायता माँगने के लिए विवश किया।

## 7.5 अमृतसर की संधि - 1809

**अमृतसर की संधि की पृष्ठभूमि** - इस समय सतलज के उत्तर में रणजीत सिंह सबसे शक्तिशाली राजा था और वह सतलज के पूर्वी भाग पर भी अपना अधिकार करता जा रहा था। इस संधि के पूर्व 1808 ई. में मिंटो ने मेटकाफ को रणजीत सिंह से संबंध बनाने के लिए कहा था। इधर सतलज के पूर्वी तट के राज्य भी अंग्रेजों के संरक्षण में आने के लिए तत्पर थे। कैथल, पटियाला, जींद और नाभा की ओर से अंग्रेजों को एक याचिका प्रदान की गई थी। अंग्रेजों को नेपोलियन के आक्रमण का खतरा भी लग रहा था। 1809 ई. के प्रारम्भ में इंग्लैण्ड के ईरान तथा तुर्की से भी संबंध अच्छे हो गए थे। नेपोलियन ने आक्रमण के भय से तथा उसके विस्तार को रोकने के लक्ष्य से सतलज के पूर्वी भागों पर अपना अधिकार करने की सोची। यद्यपि रणजीत सिंह नहीं चाहता था कि अंग्रेजों का अधिकार सतलज के पूर्वी भागों पर हो, परन्तु फरवरी, 1809 ई. को अक्तरलूनी ने एक घोषणा करके सतलज के पूर्वी भागों पर अंग्रेजों के नियंत्रण की घोषणा कर दी। इस परिस्थिति में रणजीत सिंह विवश था वह अंग्रेजों से युद्ध करने की स्थिति में नहीं था अतः उसने संधि करने का ही निश्चय किया।

**1809 की संधि** - 25 अप्रैल, 1809 ई. को रणजीत सिंह और अंग्रेजों के बीच संधि हुई जो अमृतसर की संधि के नाम से जानी जाती है। इसकी शर्तें इस प्रकार थीं -

- इस संधि के द्वारा अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को एक स्वतंत्र शासक स्वीकार कर लिया।
- अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को सतलज के उत्तर-पश्चिम के क्षेत्रों में हस्तक्षेप न करने का वचन दिया।
- इसके बदले में रणजीत सिंह ने सतलज के दक्षिण में हस्तक्षेप न करने का वादा किया।
- दोनों ने एक-दूसरे के मित्र होने का वादा भी किया।

NOTES

- इसमें यह भी कहा गया कि रणजीत सिंह ने ऐसा कोई कदम उठाया जो इस संधि की किसी भी धारा के विरुद्ध हो तो संधि भंग समझी जाएगी।

इस संधि के द्वारा रणजीत सिंह और अंग्रेजों के बीच स्थायी मित्रता हो गई। इस संधि का सबसे अधिक लाभ अंग्रेजों को हुआ और रणजीत सिंह ने इसे जीवन भर निभाया। इस संधि के बाद अंग्रेजों के राज्य की सीमा यमुना नदी से आगे बढ़कर सतलज नदी तक हो गई।

## 7.6 रणजीत सिंह और अंग्रेजों के संबंध (1809 से 1839 तक)

रणजीत सिंह के संबंधों को अमृतसर की संधि के बाद तीन भागों में बाँटकर समझा जाता है -

1. 1809 से 1812 ई., 2. 1812 से 1828 ई., 3. 1828 से 1839 ई. तक।

1. प्रथम चरण में दोनों पक्षों के बीच संबंधों में उतनी मधुरता नहीं थी जितनी होनी चाहिए थी। उनके बीच विश्वास का रिश्ता कायम नहीं हो सका था। रणजीत सिंह अपने क्षेत्र का विस्तार करने का प्रयत्न करता रहा। उसने पिण्डारी सरदार अमीर खाँ, बेगम समरू और होल्कर से पत्रों के माध्यम से संबंध स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसी वर्ष उसने कांगड़ा को जीता। 1812 ई. तक उसने सतलत नदी के पश्चिम के सभी सिक्ख राज्यों को जीत लिया था।

2. दूसरे चरण में रणजीत सिंह ने होल्कर व मराठों की माँग पर उन्हें सहायता नहीं दी। 1814 ई. में अंग्रेज और नेपाल के बीच युद्ध प्रारम्भ हुआ तो नेपाल के राजा ने उससे सहायता माँगी परन्तु रणजीत सिंह ने इन्कार कर दिया। इसके बाद उसने 1818 ई. में मुल्तान जीत लिया, 1819 ई. में उसने कश्मीर, 1820 से 1821 में डेरा गाजी खाँ, डेरा इस्माइल खाँ और लेह को अपने अधिकार में ले लिया, परन्तु अंग्रेजों ने उसके इस कार्य में कोई बाधा नहीं डाली।

3. तीसरे चरण में उसने सिंध पर अधिकार करने की इच्छा दिखाई परन्तु अंग्रेजों के मना करने पर उसने ऐसा नहीं किया। 1838 ई. में उसने त्रिदलीय संधि पर हस्ताक्षर कर दिए परन्तु प्रथम अफगान युद्ध में वह तटस्थ ही रहा। इसके अलावा उसने अपने क्षेत्र में से अंग्रेजों को जाने की इजाजत नहीं दी।

27 जून, 1839 को रणजीत सिंह की मृत्यु हो गई। उसके मरने के बाद पंजाब में अव्यवस्था व्याप्त हो गई और इस अव्यवस्था का फायदा उठाकर अंग्रेजों ने अपना प्रभाव बढ़ाना चाहा। इसी कारण प्रथम सिक्ख युद्ध हुआ।

**बोध प्रश्न**

1. अमृतसर की संधि का वर्णन कीजिए?

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

2. रणजीत सिंह के केन्द्रीय प्रशासन का वर्णन कीजिए?

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

.......................................................................................

## 7.7 प्रथम अंग्रेज-सिक्ख युद्ध (1845-46) (First British-Sikh War)

सन् 1845-46 में सिक्खों का पहली बार अंग्रेजों से प्रत्यक्ष युद्ध हुआ, इसके निम्नलिखित कारण थे-

**युद्ध के कारण :**

(1) **अंग्रेज तथा सिक्खों में तनाव :** रणजीत सिंह की उपलब्धियों एवं सफलताओं से अंग्रेज सतर्क हो गये थे। अंग्रेजों ने अमृतसर की सन्धि से रणजीत सिंह पर सतलज पार प्रसार के लिए बंधन लगा दिया था। अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को कई अवसरों पर अपमानित करने का प्रयत्न किया था। रणजीत सिंह की नीति अंग्रेजों को दुर्लक्ष्य करने की थी। इसका लाभ उठाकर सिन्ध के सम्बन्ध में अंग्रेजों ने रणजीत सिंह को मुगालते में रखा अतः सिक्खों और अंग्रेजों में परस्पर तनाव व्याप्त हो गया था।

(2) **पंजाब में अशान्ति :** रणजीत सिंह की मृत्यु के पश्चात् लगातार हत्याओं और अराजकता से जनजीवन अशान्त हो गया था। पंजाब में सेना पर नियंत्रण असम्भव हो गया था। रणजीत सिंह ने सामरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक विशाल सेना का संगठन किया था। चार वर्षों के अल्प समय में ही रणजीत सिंह के पुत्र, सम्बन्धी तथा विश्वस्थों की हत्या कर दी गई थी। पंजाब में रणजीत सिंह के उत्तराधिकारियों का नयन सेना कर रही थी और नागरिक प्रशासन से स्वतंत्र होकर राजनीति में हस्तक्षेप कर रही थी। अतः अनियंत्रित सेना को नियंत्रण में लाने का एकमात्र उपाय अंग्रेजों से सेना को युद्ध में व्यस्त रखना था। इससे सिक्ख सेना की शक्ति कम होने की सम्भावना थी।

(3) **पंजाब सीमा पर अंग्रेजों की सक्रियता :** अंग्रेज तथा सिक्खों में सीमा विवादों में वृद्धि हो गई थी। सीमा पर स्थित अंग्रेज छावनियों में अंग्रेज सैनिकों को अधिक तादाद में जमा किया जा रहा था। अंग्रेज अपनी साम्राज्यवादी नीति के अन्तर्गत सिन्ध पर अधिकार कर चुके थे तथा पंजाब पर भी अधिकार जमाने का प्रयत्न कर रहे थे।

(4) **अंग्रेजों द्वारा रणजीत सिंह अधिकृत सतलज के दक्षिण-पूर्व भाग पर अधिकार की घोषणा:** लुधियाना की अंग्रेज छावनी में क्लार्क के स्थान पर जिद्दी जनरल ब्राण्डफुट की नियुक्ति हो गई। मेजर ब्राडफुट एक क्रोधी तथा जिद्दी स्वभाव का व्यक्ति था। उसने घोषणा कर दी कि सतलज नदी के दक्षिण क्षेत्र में महाराजा दिलीपसिंह के अधिकृत क्षेत्रों पर अंग्रेजों का अधिकार रहेगा। इस घोषणा से सिक्ख सरदार तथा सेना ने अंग्रेजों से युद्ध अनिवार्य समझा।

**युद्ध का प्रारम्भ :** मेजर ब्राण्डफुट की घोषणा से उत्तेजित सिक्ख सैनिकों ने सतलज पार करना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेज युद्ध के अवसर की प्रतीक्षा में थे। अतः लार्ड हार्डिंग ने 13 दिसम्बर, 1845 को सिक्खों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। अंग्रेज सेना का नेतृत्व सर ह्यूगफ तथा सिक्ख सेना का नेतृत्व लालसिंह ने किया। सिक्ख सेना सतलज नदी पार कर फिरोजपुर की ओर बढ़ी। अंग्रेज सेना भी लुधियाना की ओर बढ़ी और फिरोजपुर से 20 मील स्थित मुद्की नामक स्थल पर 18 दिसम्बर, 1845 को दोनों में भीषण युद्ध हुआ। अंग्रेजों ने 40 हजार सिक्ख सैनिकों का 11 हजार सैनिकों के साथ सामना किया। सिक्खों के घातक प्रहार से अंग्रेज सेना विचलित हो गई थी। लालसिंह तथा तेजसिंह की निष्क्रियता से सिक्खों को पराजय का सामना करना पड़ा। सेनापति लालसिंह युद्ध स्थल से पलायन कर गया था। विजयी अंग्रेज सेना ने आगे बढ़कर फिरोजशाह नामक स्थल पर सिक्ख सेना से पुनः युद्ध किया। सिक्खों ने उत्साह एवं पराक्रम के साथ युद्ध किया। यदि सिक्ख सेनापति युद्ध स्थल से पलायन कर विश्वासघात नहीं करता तो सिक्ख सेना की जीत निश्चित थी। इस युद्ध में 8 हजार सिक्ख सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए और उनकी कई तोपों पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। अंग्रेजों के 700 सैनिक मारे गये और 1,721 घायल हो गये। सिक्ख सेनापति रणछोड़सिंह मजीठिया ने 21 जनवरी, 1846 को सतलज पार कर बुड्ढेवाल नामक स्थल पर अंग्रेजों को पराजित कर दिया था। सर हेनरी स्मिथ से सहायता प्राप्त होने पर उनके नेतृत्व में अंग्रेजों ने अग्रसर होकर 28 जनवरी, 1845 को आलीवाल नामक स्थल पर सिक्खों को पराजित किया।

लालसिंह तथा तेजसिंह सिक्ख सेना का विनाश चाहते थे। अतः उन्होंने नदी के पुल को ध्वस्त कर दिया, ताकि सिक्ख सेना पीछे नहीं हट सके। उक्त स्थिति में अंग्रेजों ने मौका पाकर 10 हजार सिक्ख सैनिकों का कत्ल कर दिया। सिक्ख सेना उनके सेनापतियों के विश्वासघात से नष्ट हो गई। अंग्रेजों ने विशाल सेना लेकर सतलज पार कर 20 फरवरी, 1846 को लाहौर पर अधिकार कर लिया। अंग्रेज और सिक्खों के मध्य सबराओ के निर्णायक युद्ध से संघर्ष समाप्त हो गया।

### लाहौर की सन्धि (9 मार्च, 1846)

सिक्खों की पूर्ण पराजय के पश्चात् भी अंग्रेजों ने पंजाब का विलय ब्रिटिश राज्य में नहीं किया। बल्कि....

(1) महाराजा दिलीपसिंह ने सिन्ध-सतलज रियासतें, दोआब, जालन्धर तथा हजारा अंग्रेजों को दे दिये।

(2) विद्रोही सिक्ख सेना को भंग कर सिक्ख सेना में 20 हजार पैदल तथा 12 घुड़सवार रखना तय हुआ।

(3) दिलीपसिंह को महाराजा, उसकी माता झिन्दन को संरक्षिका तथा लालसिंह को प्रधानमंत्री मान्य किया गया।

(4) अंग्रेज गवर्नर जनरल ने लाहौर सरकार के अतिरिक्त मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने का वचन दिया तथा महाराजा की रक्षा के लिए एक वर्ष तक अंग्रेज सेना लाहौर में रखी गई।

(5) महाराजा ने क्षतिपूर्ति हेतु एक करोड़ रुपया अंग्रेजों को देना स्वीकार किया। राजकोष में मात्र 50 लाख रुपया होने पर महाराजा को कश्मीर, हजारा तथा पर्वतीय क्षेत्र पर अंग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा।

(6) पंजाब का क्षेत्र अंग्रेजी सेना के आने-जाने के लिए स्वतंत्र कर दिया गया तथा महाराजा ने अंग्रेजों के अतिरिक्त अन्य यूरोपियन को सेवा में नहीं रखने का वचन दिया।

अंग्रेजों द्वारा डोगरा सरदार गुलाबसिंह को कश्मीर बेच देने का कार्य रानी झिन्दन तथा लालसिंह को अच्छा नहीं लगा। दोनों ने कश्मीर के गवर्नर शेख इमानुद्दीन के पुत्र के माध्यम से कश्मीर में विद्रोह करा दिया। अंग्रेजों ने रानी का संरक्षिका तथा लालसिंह का प्रधानमंत्री का पद समाप्त कर दिया। इस प्रक्रिया से लाहौर की सन्धि में संशोधन आवश्यक हो गया। अतः 16 दिसम्बर, 1846 को सिक्खों तथा अंग्रेजों के मध्य पुनः भैरोवाल की सन्धि सम्पन्न की गई।

**सन्धि की अन्य शर्तें :** (1) आठ सदस्यीय अंग्रेज समर्थक व्यक्तियों की समिति बनाकर लाहौर का प्रशासन सुपुर्द कर दिया गया। इसका अध्यक्ष स्वयं अंग्रेज रेजीडेण्ट हेनरी लारेन्स था। इस समिति का दायित्व महाराजा दिलीपसिंह के अल्पवयस्क रहने तथा प्रशासनिक कार्य सम्पादन करना था।

(2) लाहौर में एक स्थायी अंग्रेज सेना रखी गई, जिसका खर्च 22 लाख रुपया लाहौर सरकार द्वारा देना तय हुआ। भैरोवाल की संधि से पंजाब तथा लाहौर का शासन अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों के हाथों में चला गया।

## 7.8 द्वितीय अंग्रेज-सिक्ख युद्ध (10 अक्टूबर, 1848)

प्रथम सिक्ख युद्ध में अंग्रेजों द्वारा थोपी गई अपमानजनक सन्धियों एवं प्रशासकीय व्यवस्था से सिक्ख समुदाय में असंतोष व्याप्त हो गया था। एक बहादुर कौम को जिस प्रकार से अंग्रेजों ने पददलित किया था, उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप सिक्ख एक बार पुनः अंग्रेजों से युद्ध करने को लालायित थे।

### युद्ध के कारण :

(1) **सिक्खों में शौर्य प्रदर्शन की भावना :** प्रथम सिक्ख युद्ध में वीरता, शौर्य तथा सैन्य दुर्बलता के कारण नहीं, बल्कि अंग्रेजों की कूटनीति तथा सिक्ख नेतृत्व के विश्वासघात के कारण सिक्ख युद्ध हारे थे। अतः पुनः संगठित होकर सिक्ख शौर्य तथा वीरता प्रदर्शन के लिए इच्छुक थे।

(2) **रेजीडेण्ट शासन के प्रति असंतोष :** पंजाब की सलाहकार समिति अंग्रेज रेजीडेण्ट की अध्यक्षता में जो निर्णय ले रही थी, उनसे सिक्खों में अशांति फैल गई। अंग्रेज भी सिक्खों के क्षेत्र को आत्मसात करने की सोच रहे हैं।

(3) **सिक्खों के प्रति अंग्रेजों के विचार :** अंग्रेज लोग सिक्खों के साथ दुर्व्यवहार कर उनके समाज तथा सम्प्रदाय की निंदा करते तथा अनर्गल बातों का प्रचार करने लगे। अतः सिक्ख समुदाय उत्तेजित हो गया।

(4) **डलहौजी की हड़प नीति :** तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी ने अपनी हड़प नीति से कई देशी राज्यों को ब्रिटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया था। डलहौजी पंजाब को भी हड़पना चाहता था। **डलहौजी ने 10 अक्टूबर, 1848 के घोषणा-पत्र में घोषित कर दिया– ''सिक्ख जाति ने अकारण युद्ध छेड़ दिया है और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उन्हें इसका दण्ड भुगतना पड़ेगा।''**

NOTES

(5) **युद्ध का तात्कालिक कारण :** पंजाब के प्रांत मुल्तान के शासक की मृत्यु के पश्चात् सन् 1844 में उसका पुत्र देशप्रेमी मूलराज प्रांतपाल नियुक्त हुआ था। मूलराज को अंग्रेजों ने परेशान करना आरम्भ कर दिया, क्योंकि वे मुल्तान को मूलराज से छीनना चाहते थे।

व्यथित होकर मूलराज ने पद त्याग दिया। अंग्रेजों की इच्छा पूरी हो गई और उन्होंने खानसिंह को शासक बनाकर दो अंग्रेज अधिकारी उसके संरक्षण के लिए भेज दिए। मुल्तान की सेना ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर अंग्रेज अधिकारियों का कत्ल कर दिया। इस घटना से द्वितीय सिक्ख युद्ध का प्रारम्भ हो गया।

## 7.9 सारांश

**युद्ध का घटनाचक्र :** डलहौजी ने 10 अक्टूबर, 1848 को युद्ध घोषित कर सर ह्यूगफ के नेतृत्व में सेना भेजकर मुल्तान पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने शेरसिंह को मूलराज को समाप्त करने हेतु भेजा, किन्तु शेरसिंह मूलराज से जा मिला। इस समाचार से उत्तेजित होकर डलहौजी ने सम्पूर्ण पंजाब के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। सिक्ख तथा अंग्रेजों के मध्य रामनगर में लड़ाई हुई, जो अनिर्णयात्मक रही थी। रामनगर के पश्चात सिक्खों ने संगठित होकर चिलियानवाला के युद्ध में अंग्रेज सेना को मार भगाया। जनवरी 1849 में अंग्रेज मूलराज को बंदी बनाने में सफल हो गये। मुल्तान पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। मूलराज को देश निष्कासन का दण्ड दिया गया। पंजाब के गुजराल नामक स्थान पर बची-खुची सिक्ख सेना ने अफगान सेना की सहायता से अंग्रेजों का सामना किया। यह सिक्खों द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध अंतिम संघर्ष सिद्ध हुआ। सिक्ख पराजित हुए तथा अफगान सेना भी पराजित होकर अफगानिस्तान की ओर पलायन कर गई और अंततः 29 मार्च, 1849 ई. को डलहौजी ने अपने उत्तरदायित्व पर पंजाब को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया। उसके लिए उसने डायरेक्टरों की आज्ञा की प्रतीक्षा भी नहीं की। उसने घोषणा की : **''पंजाब का राज्य समाप्त हो गया है और अब तथा अब से आगे महाराजा दिलीपसिंह का सम्पूर्ण राज्य अंग्रेजों के राज्य का एक भाग है। महाराजा दिलीपसिंह को 4 से 5 लाख रुपये के बीच में पेन्शन दे दी गयी और उसे उसकी माँ रानी झिन्दन के संरक्षण में इंग्लैण्ड भेज दिया गया।** पंजाब को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित किये जाने के विषय में विभिन्न मत दिये गये हैं। एक मत डलहौजी के पक्ष का है जिसके अनुसार सिक्खों ने विद्रोह करके ऐसा अवसर प्रदान किया, जिससे डलहौजी को पंजाब को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करना पड़ा और यह कार्य सर्वथा आवश्यक था। दूसरा मत उन व्यक्तियों का था, जिनका कहना था कि डलहौजी का यह कार्य सर्वथा अन्यायपूर्ण था। लाहौर-दरबार अन्त तक अंग्रेजों के प्रति वफादार था। संरक्षक-सभा के आठ सदस्यों में केवल एक ने इस विद्रोह में भाग लिया था और एक अन्य पर केवल सन्देह किया जाता था। बाकी छह संरक्षक पूर्णतया अंग्रेजों के प्रति वफादार रहे। इस प्रकार पंजाब की कानूनी सरकार ने, जिसका समर्थन अंग्रेज भी करते थे, अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया था। एक प्रकार से अंग्रेज तो उस कानूनी सरकार की सहायता के लिए पंजाब में गये थे। फिर युद्ध के पश्चात् उन्हें उस कानूनी सरकार को हटाने का कोई नैतिक अधिकार न था। इसके अतिरिक्त महाराज दिलीपसिंह का तो कोई अपराध हो ही नहीं सकता था, क्योंकि तब वह बच्चा ही था। फिर अंग्रेजों ने उसका राज्य उससे छीनकर कौन-सा न्याय का कार्य किया था? इस विद्रोह को दबाने में पंजाब के 20,000 सैनिकों ने अंग्रेजों की सहायता की थी। फिर इस विद्रोह को पंजाब का विद्रोह कैसे मान सकते हैं जिस आधार पर अंग्रेजों ने पंजाब को अपने राज्य में सम्मिलित किया? इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पंजाब को अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित करने का आधार सिक्खों का विद्रोह या नैतिक अथवा कोई अन्य न्यायपूर्ण आधार न था। उसका मूल आधार डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति थी।

## 7.10 अभ्यास प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय [illegible] Questions)

1. सिक्खों के उदय से आप क्या समझते हो? विस्तार पूर्वक समझाइए।
2. रणजीत सिंह के राज्य विस्तार व प्रशासनिक व्यवस्था की जानकारी दीजिए।
3. अंग्रेज-सिक्ख युद्ध की विस्तृत जानकारी दीजिए।
4. अमृतसर की संधि 1809 का वर्णन कीजिए।

**NOTES**

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. सिक्खों के उदय से आप क्या समझते हो?
2. भू-राजस्व से आप क्या समझते हो?
3. सिक्खों के अंग्रेजों से संबंध बताइए।
4. अमृतसर की संधि 1809 पर टिप्पणी लिखिए।
5. प्रथम अंग्रेज-सिक्ख युद्ध की जानकारी दीजिए।
6. प्रथम अंग्रेज-सिक्ख युद्ध के कारण बताइए।
7. लाहौर की संधि से आप क्या समझते हो?

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. गुरु नानक का जन्म कब हुआ-
   (A) 1469 ई. में (B) 1450 ई. में (C) 1460 ई. में (D) 1569 ई. में।
2. औरंगजेब द्वारा गुरु तेगबहादुर को प्राणदंड -
   (A) 1650 में दिया गया (B) 1675 में दिया गया
   (C) 1640 में दिया गया (D) 1655 में दिया गया।
3. 'खालसा पंथ' की स्थापना हुई-
   (A) 1670 में (B) 1680 में (C) 1699 में (D) 1599 में।
4. सिक्खों की वेशभूषा थी-
   (A) केश (B) कंघा (C) कृपाण और कच्छ (D) उपरोक्त सभी।
5. सिक्खों की बारह मिसलों में -
   (A) सुकरचकिया (B) कन्हैया (C) नकाई (D) उपरोक्त सभी।
6. रणजीत सिंह का जन्म हुआ-
   (A) 1750 में (B) 1780 में (C) 1740 में (D) 1795 में।
7. अमृतसर की संधि हुई-
   (A) 1820 में (B) 1850 में (C) 1809 में (D) 1825 में

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (C), 4. (D), 5. (D), 6. (B), 7. (C)

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

## 7.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

NOTES

# अध्याय-8 लार्ड वेलेजली की सहायक सन्धि व डलहौजी की हड़पनीति

## (LORD WELLESLEY'S SUBSIDIARY ALLIANCE & DALHOUSIE'S DOCTRINE OF LAPSE)

**इकाई की रूपरेखा**

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 लार्ड वेलेजली (1798-1805)
8.3 प्रथम नीति - युद्ध
8.4 द्वितीय नीति-कमजोर प्रशासन और उत्तराधिकारी का बहाना
8.5 तृतीय नीति-वेलेजली की सहायक संधि
8.6 सहायक संधि के गुण और दोष
8.7 लार्ड डलहौजी
8.8 डलहौजी का विलय सिद्धान्त
8.9 सारांश
8.10 अभ्यास प्रश्न
8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 8.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. लार्ड वेलेजली की सहायक संधि की नीति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. लार्ड डलहौजी की हड़पनीति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. सहायक संधि के गुण-दोष का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. लार्ड डलहौजी का विलय सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 8.1 प्रस्तावना

भारत में ब्रिटिशों ने व्यापार के साथ ही साथ प्रशासन को भी मजबूत करने के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएँ और नीतियाँ लागू कीं। इनमें कुछ प्रमुख गवर्नरों की नीतियों ने ब्रिटिश शासन को मजबूत आधार प्रदान किया।

## 8.2 लार्ड वेलेजली (1798-1805)

### वेलेजली की साम्राज्य विस्तार नीति

**वेलेजली के आगमन के समय भारत की स्थिति** - 1798 ई. में लार्ड वेलेजली ने भारत के गवर्नर-जनरल का पद संभाला। 1797 ई. भारत में राजनीतिक दृष्टि से कम्पनी की स्थिति अधिक महत्वपूर्ण नहीं थी।

उस समय भी मराठा-संघ भारत में सबसे अधिक शक्तिशाली था। इनमें से केवल बड़ौदा के गायकवाड़ ने अंग्रेजों के प्रति तटस्थता की नीति अपनाई थी अन्यथा भौंसले, सिन्धिया और होल्कर तीनों ही अंग्रेजी-प्रभाव की वृद्धि को पसन्द नहीं करते थे। जसवन्त राव ने इन्दौर को अपनी राजधानी बनाया था। मराठा-सरदारों में वह सबसे अधिक महत्वाकांक्षी था तथा पूना-दरबार में प्रभाव रखने और सीमा-विस्तार में सिन्धिया से उसकी प्रतिस्पर्धा रहती थी। नागपुर के भौंसले की सीमाएँ नागपुर से कटक तक फैली हुई थीं और अंग्रेजों की बंगाल और मद्रास की सीमाओं को विभाजित करती थी। मराठों के अतिरिक्त मैसूर का शासक टीपू अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था। उसने अपनी सेना में फ्रांसीसी अफसर नियुक्त किये थे और वह फ्रांस के क्रांतिकारियों से अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा था।

अंग्रेजों के मित्र-राज्यों में अवध, कर्नाटक और हैदराबाद माने जा सकते थे। इनमें से अवध पूर्णतया अंग्रेजों पर निर्भर था। कर्नाटक के नवाब के शासन में अत्यधिक दुर्बलताएँ थीं और वह कर्ज में इतना डूबा हुआ था कि वह अंग्रेजों के लिए एक बोझ के समान था। हैदराबाद के निजाम ने अपने यहाँ फ्रांसीसी सैनिक अधिकारी नियुक्त किये हुए थे और अपनी सेना को यूरोपियन तरीके से शिक्षित कर रहा था। इस प्रकार भारतीय राज्यों में से कोई भी अंग्रेजों का सच्चा मित्र नहीं था।

इन स्थितियों में फ्रांसीसी पुनः अंग्रेजों को भारत से निकालने के लिए प्रयास कर रहे थे। उस समय फ्रांसीसी आक्रमण का भय भी था। 1798 ई. में नेपोलियन ने मिस्र पर आक्रमण किया जो विफल हुआ, परन्तु 1801 ई. में नेपोलियन रूस से मिलकर हिरात और कंधार के मार्ग से पुनः भारत पर आक्रमण करने की योजना बना रहा था और स्थल पर नेपोलियन की निरंतर सफलताओं के कारण यह योजना अस्वाभाविक नहीं मानी जा सकती थी। इसके अतिरिक्त भारत में विभिन्न भारतीय शासकों के दरबार में फ्रांसीसी सैनिक और अधिकारी अंग्रेजों के विरुद्ध कार्यरत थे।

इस तरह हम देखते हैं कि वेलेजली के गवर्नर जनरल बनने के समय अंग्रेजी कम्पनी एक बहुत महत्वपूर्ण शक्ति नहीं थी, परन्तु वेलेजली ने अपने सात वर्ष के कार्यकाल में एक-एक करके अपने सभी शत्रुओं को परास्त किया और कम्पनी को भारत की सर्वश्रेष्ठ शक्ति बना दिया। भारत में अंग्रेजी साम्राज्य विस्तार का वास्तविक श्रेय वेलेजली को ही दिया जाता है। उसने भारतीय राज्यों को कंपनी के अधीन लाने के लिए अलग-अलग नीतियों का सहारा लिया और उचित-अनुचित सभी तरह के साधनों और नीतियों को अपनाया। उसका एक मात्र लक्ष्य था भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार। वह जैसे भी हो किया जाए और उसने यही किया।

वेलेजली के अनुसार 'हस्तक्षेप न करने की नीति' पूर्णतया असफल सिद्ध हो चुकी थी तथा अंग्रेजी कम्पनी की शक्ति और प्रतिष्ठा की स्थापना हेतु शक्ति का प्रयोग और भारतीय राजनीति में सक्रिय भाग लेना आवश्यक था। उसका मूल मकसद था भारत में कम्पनी को सर्वश्रेष्ठ शक्ति बनाना और फ्रांसीसियों के प्रभाव को हमेशा के लिए समाप्त करना। इसकी पूर्ति के लिए वह कूटनीति तथा युद्ध दोनों ही नीतियों का प्रयोग करने के लिए तैयार था। वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल भी रहा।

भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की स्थापना का श्रेय लार्ड हेस्टिंग्स को जाता है, साम्राज्यवाद के विस्तार का कार्य किया लार्ड वेलेजली ने। वेलेजली ने अंग्रेजी प्रभुत्व के विस्तार हेतु तीन नीतियों को अपनाया।

## 8.3 प्रथम नीति - युद्ध

वेलेजली ने साम्राज्य विस्तार के सबसे पहले युद्ध की नीति को अपनाया और भारतीय राजाओं को पराजित कर उनके राज्यों का कम्पनी राज्य में विलय किया। इस नीति के द्वारा उसने 1799 में मैसूर के चतुर्थ-युद्ध में टीपू को पराजित कर मैसूर के अधिकांश भाग को अंग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया और शेष प्रदेश का, एक पूर्ववर्ती हिन्दू शासक के नाबालिग बच्चे को उत्तराधिकारी बनाया। उसने सहायक संधि स्वीकार कर ली थी। मराठों से भी उसने युद्ध किया और आंग्ल मराठा द्वितीय युद्ध के द्वारा मराठों को कमजोर करके सहायक संधियाँ करने को विवश किया गया।

**चतुर्थ आंग्ल-मैसूर युद्ध (1799-1800)** - टीपू अंग्रेजों का कट्टर शत्रु था और वह फ्रांसीसियों की सहायता लेकर अंग्रेजों को भारत से बाहर निकालने के लिए कटिबद्ध था। इस कारण टीपू वेलेजली के लिए आवश्यक हो गया। तृतीय युद्ध की समाप्ति के लगभग सात वर्ष बाद 1799 ई. में मैसूर का चतुर्थ युद्ध हुआ।

NOTES

**युद्ध की घटनाएँ** - फरवरी 1799 में वेलेजली ने टीपू पर आक्रमण किया। उसने अलग-अलग दिशाओं से पाँच सेनाएँ भेजीं। मराठों तथा निजाम ने अंग्रेजों का साथ दिया। अंग्रेजी सेना ने तोपों से आक्रमण किया जिससे कि अनेक किले उसके हाथ से निकल गए। सदाशिव व मल्लावती के युद्ध में पराजित होकर टीपू अपनी राजधानी वापस आ गया। अंग्रेजों ने अप्रैल 1799 में श्रीरंगपट्टम का घेरा डाला। इस घेरे में टीपू की हालत खराब होती गई। टीपू ने संधि प्रस्ताव भेजे, परन्तु अंग्रेजों ने उसके समक्ष अपमानजनक शर्तें प्रस्तुत कीं। टीपू ने अपने स्वाभिमान को बरकरार रखते हुए अन्तिम समय तक लड़ना उचित समझा और अन्ततः वह चार मई, 1799 को लड़ते हुए मारा गया।

**युद्ध के पश्चात् मैसूर की व्याख्या** - वेलेजली यह बात पहले से ही समझता था कि सम्पूर्ण मैसूर राज्य को अंग्रेजी राज्य में नहीं मिलाया जा सकेगा। मराठे और निजाम इसका विरोध करेंगे। अतः उसने प्राचीन वाडियार वंश के उत्तराधिकारी बालक कृष्णराजा को गद्दी पर बिठा दिया। उससे सहायक संधि मनवायी गई। मैसूर की सुरक्षा के लिए अंग्रेज सेना मैसूर में रहने लगी। मैसूर को इस सेना का समस्त व्यय उठाना पड़ता था। इसके अलावा यह घोषणा की गई कि जब भी कंपनी को आवश्यकता महसूस होगी कंपनी नए राज्य का प्रशासन अपने हाथों में ले लेगी। मैसूर के राज्य को तीन भागों में बाँट दिया गया। इसके अन्तर्गत अंग्रेजों ने कोयम्बटूर, कोकानाडा और श्रीरंगपट्टम के प्रदेशों के आसपास का क्षेत्र अपने पास रखा। हैदराबाद के आस-पास के इलाके निजाम को दिए गए। मराठों को जो क्षेत्र देना प्रस्तावित था पेशवा ने यह स्वीकार नहीं किया।

मैसूर के पतन से अंग्रेजों की शक्ति बहुत बढ़ गई। इससे उनके साम्राज्य का विस्तार भी हुआ, जिसमें टीपू मारा गया। मैसूर के अधिकांश भाग पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया और बाकी बचे हुए राज्य का शासन पहले के हिन्दू शासक के एक वंशज को दे दिया गया। इस प्रकार मैसूर को जीतकर वेलेजली ने कम्पनी की सीमाओं का विस्तार किया।

**द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध** - वेलेजली के समय में द्वितीय आंग्ल-मराठा युद्ध भी हुआ था। इसका वर्णन आंग्ल-मराठा संबंध वाले अध्याय में किया गया है।

## 8.4 द्वितीय नीति-कमजोर प्रशासन और उत्तराधिकारी का बहाना

उसने दूसरी नीति के अन्तर्गत किसी राज्य विशेष के प्रशासन को अपने नियंत्रण में लेकर नाम मात्र के लिए राजा को बनाये रखा। इस नीति के द्वारा छोटे राज्यों का विलय किया गया। इस नीति को सामान्यतः उन राज्यों के प्रति अपनाई गई जिनमें उत्तराधिकार का संघर्ष छिड़ने वाला हो। कर्नाटक, तंजौर एवं सूरत को इसी प्रक्रिया द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य में शामिल किया गया।

**कर्नाटक** - यहाँ के नवाब मुहम्मद अली ने मद्रास के निकट एक महल बनवा लिया था और वहीं भोग-विलास का जीवन व्यतीत करता था। नवाब की इस स्थिति से कर्नाटक का शासन बहुत खराब हो गया था और मद्रास-सरकार इसमें कोई सुधार न कर सकी थी क्योंकि स्वयं कम्पनी के कर्मचारी नवाब की स्थिति के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी थे। अक्टूबर 1795 ई. में मुहम्मद अली की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र उमदत-उल-उमरा नवाब बना।

मैसूर-युद्ध की समाप्ति और श्रीरंगपट्टम पर अधिकार करने के पश्चात् अंग्रेजों के हाथ कुछ पत्र लगे जिनसे यह प्रकट होता था कि मुहम्मद अली और उसके पुत्र ने मैसूर के राजा के साथ पत्र-व्यवहार किया था। वेलेजली ने इसी आधार पर आरोप लगाया कि नवाब ने उस सन्धि की शर्तों को तोड़ा था जिसके अनुसार यह निश्चित था कि नवाब किसी विदेशी राज्य से संबंध स्थापित नहीं करेगा। 1801 ई. में नवाब उमदत-उल-उमरा की मृत्यु हो गई और वेलेजली ने उसके पुत्र अली हुसैन को नवाब मानने से इन्कार कर दिया। उसने पिछले नवाब के भतीजे अजीमउद्दौला के साथ एक समझौता किया जिसके अनुसार उसने कर्नाटक का सम्पूर्ण शासन-कांग्रेस कम्पनी को दे दिया और स्वयं वार्षिक पेंशन लेना स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार कर्नाटक पर कम्पनी का अधिकार हो गया। वेलेजली ने नवाब पर यह आरोप लगाया था कि उसने उसके पिता ने टीपू से पत्र-व्यवहार किया था और इसी आधार पर उसके पुत्र अली हुसैन को नवाब स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था, परन्तु नवाब पर यह आरोप सिद्ध नहीं हुआ था। इस कारण कम्पनी को कर्नाटक पर अधिकार करने का कोई कानूनी या नैतिक आधार नहीं था, परन्तु यह कार्य वेलेजली की साम्राज्यवादी नीति के अंतर्गत था।

NOTES

**तंजौर -** यहाँ के राजा तुलाजी की मृत्यु के पश्चात् उसकी गद्दी पर उसके भाई अमरसिंह और उसके गोद लिये हुए पुत्र सरफोजी ने दावा किया। लॉर्ड कार्नवालिस ने काशी के पंडितों की राय लेकर सरफोजी को गद्दी दिला दी। 1799 में सरफोजी ने वेलेजली से एक सन्धि कर ली जिसके अनुसार उसने तंजौर का राज्य कम्पनी को दे दिया और स्वयं 40,000 पौण्ड पेंशन लेना स्वीकार कर लिया।

**सूरत -** यहाँ के की सुरक्षा का उत्तरदायित्व कम्पनी ने 1759 ई. में मुगल शासक से प्राप्त किया था, परन्तु कम्पनी ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि सूरत की आय से कम्पनी कर सेना का व्यय पूर्ण नहीं हो रहा था। 1790 ई. में नवाब की मृत्यु हुई और उसका पुत्र गद्दी पर बैठा। 1797 ई. में नवाब को अपनी सम्पूर्ण सेना को समाप्त करने के लिए बाध्य किया गया। उसकी मृत्यु के बाद उसका छोटा पुत्र भी कुछ सप्ताह के पश्चात् मर गया और उसके भाई ने गद्दी का दावा किया। आरम्भ में तो कुछ शर्तों पर उसे गद्दी देने का विचार किया गया, परन्तु 1800 ई. में वेलेजली ने नवाब को गद्दी से हटाने और सूरत पर कम्पनी का अधिकार कर लेने के आदेश दे दिये। कम्पनी के पास नवाब को हटाने का कोई भी औचित्य न था, परन्तु यह कार्य भी वेलेजली की साम्राज्यवादी नीति के अंतर्गत उचित था।

**फर्रुखावाद -** उस अवसर पर कम्पनी के राज्य में इसको भी सम्मिलित कर लिया गया। नवाब की मृत्यु और उसके पुत्र के अल्पायु होने के कारण वेलेजली को यह अवसर प्राप्त हुआ। अल्पायु नवाब को पेंशन देकर फर्रुखावाद पर कम्पनी ने अधिकार कर लिया।

## 8.5 तृतीय नीति-वेलेजली की सहायक संधि (Wellesley - Subsidiary Alliance)

**वेलेजली की सहायक संधि का स्वरूप -** लार्ड वेलेजली जब भारत आया तो उसके पहले 'अहस्तक्षेप' एवं गुटमुक्तता की नीति का अनुसरण, सर जान शोर के द्वारा किया जा रहा था, लेकिन वेलेजली को इस नीति का अनुसरण संभव नहीं था, क्योंकि उसके समक्ष जो लक्ष्य थे उनकी प्राप्ति में यह सुविधाजनक नहीं थी। उसके सामने दो लक्ष्य थे। प्रथम लक्ष्य, भारत में कंपनी की सत्ता को सर्वोपरि बनाना था और अन्य देशी राज्यों को कंपनी का संरक्षण स्वीकार करने के लिए बाध्य करना था। दूसरा लक्ष्य, भारत को फ्रांसीसी प्रभाव से मुक्त करना था। इन लक्ष्यों की सिद्धी के लिए वेलेजली ने एक नीति का अनुसरण किया जिसे "सहायक संधि" प्रथा कहते हैं। उसने देशी राजाओं के साथ एक विशेष प्रकार की संधि करके साम्राज्य विस्तार किया। सहायक संधि, कंपनी और देशी राजाओं के बीच होती थी।

**सहायक - संधि -** संधि वेलेजली की साम्राज्य विस्तार की नीति का एक महत्वपूर्ण साधन थी। उसके द्वारा वेलेजली ने अंग्रेज कम्पनी के साम्राज्य का विस्तार किया, भारतीय नरेशों के दरबार और राजनीति में अंग्रेजों के प्रभाव को बढ़ाया और फ्रांसीसियों के प्रभाव को भारत से नष्ट करने में सहायता प्राप्त की। सहायक-सन्धि का सबसे पहले प्रयोग फ्रांसीसी गवर्नर डुप्ले ने किया था। उसने भारतीय नरेशों को सैनिक सहायता देने के बदले उनसे धन लेने की प्रथा आरंभ की थी, यह प्रथा ही सहायक संधि का प्रारंभ मानी जाती है। अंग्रेजी कंपनी के गवर्नरों ने भी इस प्रथा को स्वीकार कर लिया और क्लाइव तथा उसके बाद के प्रायः सभी अंग्रेज गवर्नर-जनरलों ने इसका प्रयोग किया। वेलेजली ने सहायक संधि को व्यापक बनाया और अपनी साम्राज्य विस्तार की नीति एक खास अंग के रूप में इसको अपनाया। उसने इसको विस्तार दिया और उसमें नवीन शर्तें जोड़ीं और प्रत्येक भारतीय नरेश के साथ इस तरह की संधियाँ कीं।

अंग्रेजों ने सहायक संधि का प्रथम प्रयोग अवध के नवाब के साथ 1765 ई. में किया था। इसके द्वारा निश्चित धन लेकर अवध की सुरक्षा का वादा किया और वहाँ अंग्रेज रेजीडेन्ट भी रखा था। इसके बाद 1787 ई. में कार्नवालिस ने कर्नाटक के नवाब पर इस संधि की शर्तें लागू की थीं। वेलेजली ने इस संधि के द्वारा माँग की कि अंग्रेजों की सहायता के बदले में सन्धि करने वाला भारतीय नरेश अपने राज्य की भूमि का कुछ निश्चित भाग स्थायी रूप से अंग्रेज-कम्पनी को प्रदान करे।

अल्फ्रेड लायल के अनुसार सहायक संधि प्रथा के विकास की चार स्थितियाँ थीं -

(1) इसके द्वारा अंग्रेज किसी भारतीय नरेश को आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता देकर बदले में धन प्राप्त करते थे ऐसी सन्धि हैदराबाद के निजाम से 1708 में की गई थी।

NOTES

(2) अंग्रेजी कम्पनी देशी नरेश की सुरक्षा के लिए एक स्थायी सेना रखती थी तथा उस सेना के भरण-पोषण के लिए राजा से वार्षिक व्यय लेती थी। यह अंग्रेजी सेना उसे राज्य की सीमा के पास, लेकिन अंग्रेजी सीमा में रखी जाती थी।

(3) तीसरी स्थिति में अंग्रेज कंपनी सन्धि करने वाले भारतीय नरेश की सुरक्षा के लिए एक स्थायी सेना एक निश्चित वार्षिक राशि के बदले रखती थी, परन्तु यह सेना राज्य की सीमाओं के भीतर ही रहती थी। ऐसी सन्धि 1798 में निजाम के साथ की गई थी।

(4) चौथे प्रकार की सन्धि सहायक सन्धि थी- इसके अनुसार -

- सहायक सन्धि करने वाले राज्य को अपने राज्य में एक स्थायी अंग्रेजी सेना रखनी होती थी। इसका प्रयोग न केवल उस देशी राज्य की रक्षा के लिए किया जाता था वरन् कम्पनी भी अपनी रक्षा तथा अपने राज्य विस्तार के लिए उसका प्रयोग कर सकती थी। इस सेना का खर्च देशी राज्य को उठाना पड़ता था। इस खर्च के एवज में या तो नकद रुपया देना पड़ता था या उसी मूल्य की आय का भू-भाग कम्पनी को देना पड़ता था।
- जो देशी राज्य कम्पनी के साथ सहायक संधि कर लेता था उसे कम्पनी की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी और वह बिना कम्पनी की स्वीकृति के किसी अन्य राज्य के साथ युद्ध अथवा संधि नहीं कर सकता था अर्थात् उसकी विदेश नीति कम्पनी के हाथों में चली जाती थी।
- सहायक सन्धि करने वाले राज्य को यह वचन देना पड़ता था कि वह कम्पनी की आज्ञा के बिना अंग्रेजों के अतिरिक्त अन्य किसी यूरोपवासी को अपने यहाँ नौकर न रखेगा। इस शर्त का उद्देश्य देशी राज्यों में फ्रांसीसियों के प्रभाव को कम करना था।
- सहायक सन्धि करने वाले राज्य के अपने दरबार में एक अंग्रेज रेजीडेन्ट रखना पड़ता था और शासन के कार्यों में उनका परामर्श लेना पड़ता था। इस प्रकार राज्य में कम्पनी का आदमी सदैव रहता था जो उसके शासन की गतिविधि पर अपनी नजर रखता था।
- सहायक सन्धि करने वाले देशी राज्य के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का कम्पनी वचन देती थी और बाह्य आक्रमणों से उस राज्य की रक्षा करने तथा आन्तरिक उपद्रवों के दमन करने का भार भी अपने ऊपर ले लेती थी।

सहायक संधि स्वीकार करने वाली रियासतें थीं- हैदराबाद (सितम्बर 1798), मैसूर (1799), तंजौर (अक्टूबर 1799), अवध (नवम्बर 1801), पेशवा (दिसम्बर 1801), वरार के भौंसले (दिसम्बर 1803), सिन्धिया (फरवरी 1804), जोधपुर, जयपुर, मच्छेड़ी, बून्दी तथा भरतपुर (1809)।

**बोध प्रश्न**

1. वेलेजली की साम्राज्य विस्तार नीति का वर्णन कीजिए।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

2. सहायक संधि प्रथा का वर्णन कीजिए।

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

.................................................................................................

## 8.6 सहायक सन्धि के गुण और दोष

**सहायक सन्धि के गुण -**

(1) सहायक सन्धि प्रणाली साम्राज्य के निर्माण में अंग्रेजों को अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुई। अंग्रेज रेजिडेन्ट अत्यन्त प्रभावशाली हो गये व आन्तरिक मामलों में भी हस्तक्षेप करने के साथ-साथ दो मेरिये की भूमिका निभाने लगे।

(2) उससे कम्पनी को भारतीय राज्यों के व्यय पर एक विशाल सेना प्राप्त हुई। जैसे वेलेजली ने स्वयं लिखा था "अपनी सहायक सेनाएँ हैदराबाद, पूना, गायकवाड़ा, दौलतराय सिन्धिया तथा गोहर के राजा के यहाँ रखकर हम 22,000 व्यक्तियों की एक सामर्थ्यवान सेना भारतीय नरेशों के खर्च पर उसके राज्यों के भीतर अथवा उनकी सीमाओं पर रखने में समर्थ हो गये हैं। यह सेना पूरी तरह सुसज्जित है तथा अल्पसूचना पर देश के किसी भी भाग में जा सकती है। कम्पनी के राज्य की शांति भंग किए अथवा बिना अतिरिक्त खर्च कर हम इस सेना को किसी भी देशी राज्य के खिलाफ भेज सकते हैं।" हैदराबाद की सेना इसी प्रकार मैसूर के टीपू के खिलाफ भेजी गयी।

(3) इस सन्धि के द्वारा बिना देशी रियासतों पर अधिकार किये अंग्रेजों को देश के बहुत से सामरिक महत्व के ठिकानों पर अधिकार प्राप्त हो गया। इससे बाकी यूरोपियन शक्तियों को ईर्ष्या करने का अवसर नहीं मिला।

(4) कम्पनी की सैनिक सीमा उसकी राजनैतिक सीमाओं से आगे चली गयी। कम्पनी के युद्धों का भार कम्पनी के वित्तीय साधनों पर नहीं पड़ता था तथा युद्ध क्षेत्र भी प्रायः कम्पनी के प्रदेशों से बाहर रहता था।

(5) अंग्रेज जो सेना देशी राज्यों में रखता था, उसका खर्च इतना अधिक होता था कि अक्सर देशी राजा उसे चुकाने में असमर्थ होते थे। यह खर्च भविष्य में बढ़ता ही जाता था और अंग्रेज अफसर इसके बदले देशी नरेशों की भूमि अधिग्रहीत कर लेते थे। इससे कम्पनी का राज्य विस्तार हुआ।

(6) कम्पनी भारतीय राजाओं के झगड़ों में मध्यस्थ की भूमिका भी निभाने लगी, क्योंकि इनके विदेशी मामले कम्पनी के अधीन थे।

(7) कम्पनी को इस सन्धि के द्वारा बहुत-सा पूर्ण सम्पन्न प्रदेश प्राप्त हुआ। निजाम ने 1792 तथा 1798 में जो प्रदेश मैसूर से प्राप्त किये, सभी कम्पनी को दे दिये। इसी प्रकार अवध को भी रूहेलखण्ड तथा निचला दोआब कम्पनी को देना पड़ा।

**सहायक सन्धि के दोष -**

(1) देशी राज्य निरस्त्रीकरण से तथा विदेशी सम्बन्धों पर से नियंत्रण समाप्त होने से अंग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन बैठे। सर टॉमस मुनरो के अनुसार "राज्यों ने अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता, राष्ट्रीय चरित्र अथवा वह सब जो किसी देश को प्रतिष्ठित बनाते हैं, बेचकर सुरक्षा मोल ले ली।"

(2) अंग्रेज रेजीडेण्ट राज्यों के आंतरिक मामलों में अत्यधिक हस्तक्षेप करते थे "मुझे कोई सन्देह नहीं है कि सहायक सन्धि वास्तविक रूप दर्शायेगी तथा अन्त में उस सरकार को भी पूर्णतयाः नष्ट कर देगी जिसकी रक्षा का भार उठाया है।"

(3) सहायक संधि ने प्रत्येक निर्बल, अत्याचारी शासक की रक्षा की और जनता को अपनी स्थिति को सुधारने के अवसर से वंचित कर दिया। बुरी सरकार को ठीक करने के जो साधन थे आन्तरिक क्रान्ति या विदेशी आक्रमण सब समाप्त हो गये।

(4) अधिकतर सहायक संधि स्वीकार करने वाले राज्य दिवालिये हो गये। कम्पनी राज्य की आय का लगभग 1/3 से लेती थी। यूरोपियन अधिकारियों के वेतन बहुत अधिक थे। सैनिक साज-सज्जा महँगी थी तथा शासकों को कर बढ़ाने पर विवश होना पड़ता था। धन के बदले छीने जाने वाला प्रदेश अक्सर अधिक मूल्य का होता था। स्वयं वेलेजली का कहना था कि हमने 40 लाख रुपये के बदले 62 लाख का प्रदेश माँगा है।

NOTES

## 8.7 लार्ड डलहौजी (Lord Dalhousie)

डलहौजी ने भारत आकर एक ओर तो सुधारात्मक नीति अपनाई और दूसरी ओर साम्राज्य विस्तार की नीति। वह एक महान साम्राज्यवादी था। उसने भारत को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत करने के लिए कोई भी रास्ता, कोई भी नीति और कोई भी तरीका नहीं छोड़ा। ली बार्नर ने लिखा है- "डलहौजी कोई भी ऐसी परिस्थिति को छोड़ना नहीं चाहता था जो कि उसे किसी राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने का अवसर देता हो।" थामसन और गैरेट डलहौजी के समय की साम्राज्यवादी मानसिकता के बारे में लिखते हैं कि "कम्पनी किसी भी बहाने राज्यों को हड़पने के ज्वर की लहर में थी।" उसकी साम्राज्यवादी नीति पूर्ववर्ती गवर्नर जनरलों से एकदम अलग थी "उससे पहले गवर्नर जनरलों ने साधारणतया इन सिद्धान्तों के आधार पर कार्य किया कि जिस प्रकार भी सम्भव हो राज्य विस्तार किया जाए। डलहौजी ने इस सिद्धान्त पर कार्य किया कि जिस प्रकार भी हो सके राज्य विस्तार को उचित सिद्ध करके पूरा किया जाए।"

"डलहौजी को भारत की राजनैतिक व्यवस्था से घृणा थी। वह भारत में एक सुसंगठित और शक्तिशाली आधुनिक राज्य कायम करना चाहता था। इसी लक्ष्य की पूर्ति में उसने अपनी सारी शक्ति लगा दी। उसकी इच्छा थी कि चूँकि अंग्रेजों ने भारत में राजनैतिक प्रधानता प्राप्त कर ली है, इसलिए उन्हें अब बफर राज्यों की आवश्यकता नहीं है। वह कोई-न-कोई आधार लेकर भारतीय राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेता था और इस कार्य में उसे तनिक भी संकोच नहीं होता था।"

उसने अपनी साम्राज्यवादी नीति को कार्यान्वित करने के लिए जो नीति अपनाई उसके मुख्यतः तीन पहलू थे-

(1) युद्ध द्वारा विजय।

(2) कुशासन का आरोप लगाना।

(3) गोद लेने की प्रथा का निषेध करके।

**इनके अलावा दो और उपाय अपनाये गये थे -**

(1) कर्ज की राशि के बकाया होने का आरोप लगाना व

(2) पेंशन, पदों की समाप्ति।

प्रथम नीति के अंतर्गत उसने पंजाब और बर्मा पर आक्रमण कर और युद्ध में उन्हें पराजित करके ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया। उसने पंजाब के विद्रोह को दबाने के बहाने पंजाब पर अधिकार कर लिया। उसने पंजाब पर ब्रिटिश आधिपत्य के दो प्रमुख कारण बताये थे- एक, लाहौर-दरबार में भेरोंवाल की संधि में निर्धारित धनराशि कम्पनी को नहीं चुकाई थी। दूसरे, उसका कहना था कि स्वयं सिक्ख राज्य ने विद्रोह उत्पन्न करके अकारण ही उसे युद्ध के लिए प्रेरित किया है। इसी तरह द्वितीय बर्मा युद्ध द्वारा बर्मा पर अधिकार कर लिया जिसके लिए भी ब्रिटिश प्रतिनिधि लेम्बर्ट ही उत्तरदायी था।

द्वितीय उसने कुशासन और भ्रष्टाचार का आरोप लगाकर कई राज्यों को कंपनी के साथ साम्राज्य में मिलाया था। बरार और अवध के राज्य को इसी नीति के अंतर्गत साम्राज्य का अंग बनाया गया। अवध के नवाब शासन के प्रति लम्बे समय से उदासीनता की नीति पर चल रहे थे। 1847 ई. में मृत नवाब नसीरुद्दीन का दूसरा पुत्र नवाब वाजिद अलीशाह गद्दी पर बैठा। उसका दरबार भी भ्रष्टाचार का केन्द्र बन गया। अवध के अंग्रेज रेजीडेण्टों ने गवर्नर जनरल के राज्य के कुशासन और भ्रष्टाचार की शिकायत की। डलहौजी ने अवध के नवाब पर कुशासन का आरोप लगाकर उसके राज्य को 1856 ई. में अंग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए पुराने गवर्नर जनरलों की चेतावनियों का हवाला दिया है। उनके अनुसार लार्ड ओकलैंड ने अपने समय में जो संधि नवाब के साथ की थी इसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि यदि शासन में सुधार नहीं हुआ तो अवध का शासन अंग्रेज अपने हाथ में ले लेंगे, परन्तु अवध में कुशासन और भ्रष्टाचार के लिए अंग्रेज स्वयं उत्तरदायी थे। अंग्रेज रेजीडेण्ट को वहाँ के प्रशासन में मनमानी करने का अधिकार प्राप्त था और नवाब के सुधारों के प्रयत्न अंग्रेजों के सहयोग के बिना सफल नहीं हो पाते थे। वास्तव में अवध के शासन को कुशासन में बदलने की योजना अंग्रेजों की थी, क्योंकि वे इसे अवध को अंग्रेजी राज्य में मिलाने का आधार बनाना चाहते थे।

बरार का प्रांत हैदराबाद के निजाम के अधीन था। हैदराबाद के निजाम का शासन बहुत खराब हो गया और वह सहायक सेना का खर्च नहीं दे पा रहा था। अतः कंपनी के ऋण को पूरा करने के लिए बरार का प्रांत निजाम से छीन लिया गया।



**बोध प्रश्न**

1. सहायक संधि के दोष लिखिए?

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

2. लार्ड डलहौजी की नीति का वर्णन कीजिए?

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

   ........................................................................................................

## 8.8 डलहौजी का विलय सिद्धांत (Dalhausie's Doctrine of Lapse)

इस संबंध में डलहौजी का विचार था कि नियमपूर्वक उत्तराधिकारी के न होने पर उस रियासत की सत्ता अपने आप ही ब्रिटिश सर्वोच्चता में विलीन हो जाएगी। उसने बड़े गर्व के साथ कहा कि इस नीति का पालन करते हुए ब्रिटिश सरकार कोई भी अवसर नहीं छोड़ेगी जिसके द्वारा प्रदेशों की प्राप्ति या राजस्व की प्राप्ति हो सकती हो।

विलय सिद्धांत की नीति का प्रारंभ 1834 से हो चुका था। इस वर्ष कम्पनी के डायरेक्टरों ने भारत की अंग्रेजी सरकार को लिखा- "जब कभी भी किसी को गोद लेने की क्रिया को मंजूर करना या न करना आपके हाथों में हो, आपको बहुत कम मंजूरी देनी चाहिए, आमतौर पर नहीं और जब कभी आप मंजूरी दें तो वह आपका विशेष अनुग्रह समझा जाना चाहिये।"

इस नीति के अनुसार लार्ड डलहौजी से पहले कोलाबा, माण्डवी और अम्बाला की रियासतों पर कब्जा किया जा चुका था।

लार्ड डलहौजी ने इस नीति को सम्पूर्णतः लागू करने का प्रयास किया और इसके द्वारा उसने सतारा, जैतपुर, बघात, संभलपुर, उदयपुर, झाँसी, नागपुर आदि देशी राज्यों को कंपनी के साम्राज्य में मिला लिया। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उसने भारतीय रियासतों को तीन भागों में बाँटा -

(1) वे राज्य जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों द्वारा स्थापित किये गये थे, उन राज्यों को "निर्मित" राज्यों की संज्ञा दी गयी।

(2) वे राज्य जो अंग्रेजों के अधीनस्थ राज्य थे।

(3) वे राज्य जो स्वतंत्र राज्य थे।

भारतीय राज्यों को तीन श्रेणियों में बाँटकर डलहौजी ने एक आदेश प्रसारित किया कि प्रथम श्रेणी के राजा किसी बच्चे को गोद नहीं ले सकते थे, द्वितीय श्रेणी के राजाओं के लिये यह आवश्यक था कि वे पुत्र गोद लेने से पहले सर्वोच्च सत्ता से स्वीकृति लें, लेकिन इसके साथ यह भी माना कि प्रत्येक मामले में अनुमति देना अनिवार्य नहीं है और तृतीय श्रेणी के नरेश किसी भी बच्चे को गोद लेने में स्वतंत्र थे।

प्रो. सुरिंदर कौर ने इस संबंध में लिखा है "प्रथम श्रेणी के राज्यों के संतानहीन राजाओं की भावनाओं का विचार किये बिना उनके राज्यों को लूटना शुरू कर दिया। संतानहीन नरेश अंग्रेजों की अपार सैनिक शक्ति का विरोध करने में असमर्थ थे तथा उनकी इच्छा के विरुद्ध डलहौजी ने उनके राज्य छीन लिये। यद्यपि यह नीति अंग्रेजों के हित में थी तथा इसके द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य का खूब विस्तार हुआ, किन्तु नैतिक और कानूनी दृष्टि से यह एकदम अनुचित थी।"

NOTES

डलहौजी जैसे चतुर तथा विचारशील व्यक्ति को मालूम था कि इस प्रकार का विभाजन दोषपूर्ण है। उस समय भारत में कोई भी रियासत पूर्णतः स्वतंत्र नहीं कही जा सकती थी तथा विलय की नीति का प्रयोग किसी के लिए भी किया जा सकता था। कई अवसरों पर गृह सरकार के विचार गवर्नर-जनरल के विचारों से मेल नहीं खाते थे। करौली को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने के बारे में डलहौजी के विचार से कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स सहमत न थे। फिर भी उसने इस नीति का प्रयोग कई अन्य रियासतों के प्रति किया।

विलय नीति के औचित्य और उद्देश्य के संबंध में डलहौजी के ये शब्द विचारणीय हैं- "मुझसे अधिक कोई भी व्यक्ति हमारी अपनी राज्य सीमा के इस विस्तार की निन्दा नहीं कर सकता, जो टाला जा सकता है अथवा जो हमारे राज्य की सुरक्षा तथा स्वयं हमारे प्रान्तों की शान्ति के लिए अनिवार्यतः आवश्यक बन गया हो, परन्तु मैं नहीं समझ सकता कि कोई भी इस नीति के औचित्य में कैसे संदेह कर सकता है कि हम अपनी इस राज्य सीमा को जो कि हमारे अधिकार में है, दृढ़ करने के लिए उपस्थित होने वाली प्रत्येक न्यायसंगत अवसर का लाभ उठाकर उन राज्यों पर अधिकार कर लें जो इसके बीच में बेदखल हो गये हों, क्योंकि इस प्रकार हम हमारी राज्य सीमा के बीच में पड़ने वाले इन राज्यों से पीछा छुड़ा लेंगे, जो हमारी परेशानी के कारण बनाये जा सकते हैं, परन्तु जो मैं समझता हूँ कभी भी शक्ति का स्रोत नहीं बन सकते, इस प्रकार सार्वजनिक कोष की आय के स्रोत बढ़ जायेंगे और हमारी शासन व्यवस्था उन प्रदेशों में भी समान रूप से प्रचलित हो सकेगी, जिसका हित साधन हम हृदय से विश्वास करते हैं, इससे सम्पन्न हो सकेगा।"

डलहौजी के इस कथन से स्पष्ट है कि विलयन सिद्धान्त का उद्देश्य शासन व्यवस्था में एकरूपता लाना, अंग्रेजों द्वारा शासित प्रदेशों की सीमा को दृढ़ करना और कंपनी की आय के साधनों को बढ़ाना था।

## 8.9 सारांश

डलहौजी की इस नीति का पहला शिकार बना सतारा का राज्य। सतारा के राजा ने अपनी मृत्यु से पहले एक बालक को गोद लिया तथा उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। उसने इसकी स्वीकृति अंग्रेज रेजीडेण्ट से नहीं ली थी। डलहौजी ने इसे स्वीकार नहीं किया और जब 1848 में राजा की मृत्यु हो गई तो सतारा राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया। आर्नल्ड के शब्दों में सतारा का राज्य अंग्रेजों के लिए धनी, परन्तु अन्यायपूर्ण पुरस्कार था। वास्तव में डलहौजी द्वारा सतारा को निर्मित राज्य बताना तर्कसंगत नहीं था क्योंकि सतारा की रियासत उस समय से ही विद्यमान थी, जबकि कम्पनी शक्ति के बल पर सर्वोच्च सत्ता बनी थी।

विलय नीति का दूसरा शिकार था, नागपुर। 1853 ईसवी में नागपुर के राजा राघोजी का देहान्त बिना किसी पुत्र को गोद लिए हो गया। उसने अपने कोई संतान न होने के कारण कई बार अंग्रेज रेजीडेण्ट से पुत्र को गोद लेने की अनुमति माँगी थी, परन्तु समय पर अनुमति नहीं मिली और उसके पहले ही राजा की मृत्यु हो गई, लेकिन उसने मृत्यु शैया पर अपनी पत्नी को आदेश दिया कि वह यशवन्त राव को दत्तक पुत्र के रूप में ग्रहण कर ले, जो उसके ही वंश का तथा राज्य का निकटतम उत्तराधिकारी भी था। यशवन्त राव ने राघोजी की चिता पर पुत्र के सभी कर्तव्यों का निर्वाह भी किया था, परन्तु डलहौजी ने इसे स्वीकृति नहीं दी और नागपुर को किसी वैध उत्तराधिकारी के अभाव में बेदखल घोषित कर दिया। डलहौज ने लिखा कि नागपुर का मामला पूर्णतः पूर्व दृष्टान्त रहित है। यहाँ हमारे सामने असंगत, अपूर्ण अथवा अनियमित दत्तक पुत्र का कोई प्रश्न नहीं है। राजा की मृत्यु हो चुकी है और वह जानबूझकर दत्तक पुत्र ग्रहण करने से बचता रहा। उसकी विधवा ने कोई उत्तराधिकारी गोद नहीं लिया है।

तीसरा राज्य जो इस नीति के अनुसार साम्राज्य में मिलाया गया वह था झाँसी का राज्य। 1854 में झाँसी के राजा की मृत्यु हो गई। उसका कोई पुत्र न था, अतएव उसने एक बालक को गोद ले लिया। डलहौजी ने उसको उत्तराधिकारी नहीं माना और झाँसी का राज्य कंपनी के राज्य में मिला लिया गया। संभलपुर, जैतपुर, बघात तथा उदयपुर के राज्यों को भी वैध उत्तराधिकारी के न होने से कंपनी के साम्राज्य में मिला लिया था।

इनके अलावा कंपनी ने पेशवा बाजीराव द्वितीय के लिए एक पेंशन निश्चित कर दी थी। 1852 में उसकी मृत्यु हो गई। डलहौजी ने उसके दत्तक पुत्र नाना साहब की पेंशन बंद कर दी। 1853 में कर्नाटक के नवाब की मृत्यु हो गई और उसके बाद उसका पद समाप्त कर दिया गया। 1855 में तंजोर का राजा भी मर गया। उसके वंशजों को भी राजा की पदवी से वंचित कर दिया गया।

NOTES

## 8.10 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. वेलेजली के साम्राज्य विस्तार नीति का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. वेलेजली की सहायक संधि की विवेचना कीजिए।
3. लार्ड डलहौजी और विलय के सिद्धांतों की जानकारी दीजिए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. सहायक संधि से आप क्या समझते हो?
2. सहायक संधि के गुण-दोष बताइए।
3. डलहौजी के विलय सिद्धांत की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. लार्ड वेलेजली ने भारत के गवर्नर जनरल का पद संभाला -
   (A) 1798 में (B) 1768 में (C) 1758 में (D) 1698 में।
2. सहायक-संधि का सबसे पहले प्रयोग फ्रांसीसी गवर्नर -
   (A) हिरोडोट्स (B) डुप्ले (C) लायल (D) कार्नवालिस।
3. सहायक-संधि के संस्थापक थे-
   (A) कार्नवालिस (B) क्लाईव (C) वेलेजली (D) इनमें से कोई नहीं।

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (C)

अपनी प्रगति की जाँच करें
**Test your Progress**

## 8.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

# अध्याय–9 स्थाई बंदोबस्त, महलवाड़ी, रैयतवाड़ी व्यवस्था
## (PARMANENT SETTLEMENT, MAHALWARI, RAIYATWARI)

NOTES

**इकाई की रूपरेखा**

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 जमींदारी प्रथा या भू-राजस्व का स्थायी बंदोबस्त
9.3 रैयतवाड़ी लगान व्यवस्था
9.4 महलवाड़ी भू-राजस्व प्रणाली
9.5 प्रभाव और परिणाम
9.6 कृषकों की स्थिति
9.7 सारांश
9.8 अभ्सास प्रश्न
9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 9.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. स्थाई बंदोबस्त व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. महलवाड़ी व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. रैयतवाड़ी व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. इनके कारण प्रभाव व परिणाम एवं कृषकों की स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 9.1 प्रस्तावना

### भारतीय कृषि में परिवर्तन : राजस्व नीति के विशेष संदर्भ में

भारतीय इतिहास में किसी भी विजेता ने भारत के आर्थिक-सामाजिक जीवन को इतना प्रभावित नहीं किया, जितना कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी विजेताओं ने। अंग्रेजों से पूर्व जितने भी विजेता भारत में आये, उन्होंने भारत के राजनीतिक परिदृश्य को तो परिवर्तित किया, परन्तु वे सामाजिक और विशेषतः आर्थिक जीवन में कोई मूलभूत परिवर्तन न ला सके। भारत के परम्परागत आर्थिक ढाँचे को सामाजिक और आर्थिक परस्पर निर्भरता के ढाँचे में कोई क्षति नहीं पहुँची। वे यहाँ आक्रामक बनकर आये और यहीं के साँचे में स्वयं खप गये। हमारे सांस्कृतिक जीवन को गहराई तक प्रभावित न कर सके। अंग्रेज ऐसे पहले विजेता थे, जिन्होंने भारतीय समाज के परम्परागत आर्थिक - सामाजिक ढाँचों को न सिर्फ तोड़ा, बल्कि उसे तबाह करके उसे कोई नया अच्छा ढाँचा दिया भी नहीं। अंग्रेज अपने देश में सामंती व्यवस्था को समाप्त करके नई पूँजीवादी व्यवस्था को स्थापित कर चुके थे। इसी व्यवस्था के अनुरूप उन्होंने भारतीय सामंती पद्धति का रूपांतरण प्रारंभ किया।

अर्थव्यवस्था के पूँजीवादी ढाँचे का भारतीय कृषि व्यवस्था पर क्या प्रभाव हुआ? वे कौन से परिवर्तन हैं जो कृषि क्षेत्र में अंग्रेजों के आने पर हुए? वे कौन-सी नीतियाँ हैं जिनके आधार पर कृषि व्यवस्था को बदला गया? इन सबका अध्ययन करने से पहले हम यह देखेंगे कि भारतीय कृषि व्यवस्था का प्राचीन परम्परागत रूप क्या था?

अंग्रेजों से पूर्व की भारतीय अर्थव्यवस्था एक संतुलित व्यवस्था थी। इस व्यवस्था के दो पहलू थे कृषि और हस्तकला व कुटीर उद्योग। कृषि और हस्तकला दोनों ही अर्थव्यवस्था के आधार पर थे। भारतीय व्यवस्था एक ग्रामीण व्यवस्था थी। भारत का आधुनिकीकरण नहीं हुआ था। सम्पूर्ण समाज इस ग्रामीण व्यवस्था पर निर्भर था। सामाजिक जीवन सादा व सरल था। समाज की सम्पूर्ण आवश्यकताएँ गाँव की इस व्यवस्था से पूर्ण हो जाती थीं।

कृषक अनाज पैदा करता था। कुटीर उद्योग आवश्यकताओं की अन्य वस्तुएँ उत्पादन करते थे। यह उत्पादन ग्रामीण आवश्यकताओं के अनुरूप होता था। उत्पादन ग्राम की आवश्यकताओं को पूर्ण करता था। परस्पर विनिमय संतुलन बनाये रखता था। ग्रामीण उत्पादन का उपभोग ग्रामीण जनता ही करती थी। कृषि और उद्योग के क्षेत्र परस्पर जुड़े थे। एक-दूसरे पर निर्भर इसलिए श्रम विभाजन या आर्थिक आधार पर वर्ग विभाजन नहीं था। एक ही परिवार में कृषि और हस्तशिल्प दोनों काम साथ-साथ होते रहते थे। ग्रामीण और शहरी जीवन का कोई आपसी संबंध नहीं था, इसलिए शहरी जीवन की कृत्रिमता और आधुनिकता ग्रामीण जीवन की सहजता तक नहीं पहुँच सकी थी।

शहरी जीवन की अपनी विशेषताएँ थीं। उसका अपना अलग ढाँचा था। राजघरानों, बड़े सामंतों एवं जमींदारों की विलासिता और आवश्यकताओं के अनुरूप शहरों में उत्पादन होता था। अतः शहर उच्चतर हस्तकला उद्योग के केन्द्र थे। यही कारण है कि शहरी उत्पादन व्यापक व्यापारिक स्तर का उत्पादन नहीं कर सके। शहरी उत्पादन की कीमत राजाओं, जमींदारों के माध्यम से आती थी, जो कि ग्रामीण जनता से कर के रूप में संग्रहीत होती थी, ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था के बीच कोई संबंध नहीं बन सका, दोनों की स्वतंत्र सत्ता बनी रही।

इस समय सामंती व्यवस्था विद्यमान थी। भूमि पर किसी व्यक्ति, राजा या सामंत का स्वामित्व नहीं था। वह गाँव की सामूहिक होती थी। भूमि पर कृषक समुदाय का स्वामित्व होता था। भूमि में कृषि योग्य भूमि उसकी मानी जाती थी, जिसको उसे जोतने का अधिकार मिला था और गैर कृषि भूमि सम्पूर्ण गाँव के सामान्य उपभोग के लिए सुलभ होती थी। चूँकि भूमि पर सामूहिक स्वामित्व था, इसलिए उसे बेचा नहीं जा सकता और न ही उस पर उत्पादित वस्तुओं का व्यापार किया जा सकता। उनका सिर्फ गाँव ही गाँव में विनिमय हो सकता था। लगान का भुगतान फसल के रूप में किया जाता था। इसकी मात्रा भी पहले से निश्चित नहीं होती थी। उत्पादन के अनुरूप लगान दिया जाता था।

**भूमि कृषि व्यवस्था में परिवर्तन -**

कृषि क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए, उन्हें हम निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत समझ सकते हैं -

(1) मालगुजारी निर्धारण की प्रणाली (भू-राजस्व व्यवस्था),

(2) भूमि के स्वामित्व का पंजीकरण,

(3) लगान में वृद्धि,

(4) लगान वसूली में इजारेदारी पद्धति,

(5) कृषि का वाणिज्यीकरण,

(6) कृषक की गरीबी और ऋणग्रस्तता,

**(1) मालगुजारी निर्धारण की प्रणाली (भू-राजस्व व्यवस्था)** - भारत में परम्परा थी कि सालभर की उपज का एक अंश राजा का हिस्सा होता था, जो संयुक्त मिल्कियत वाले किसानों या गाँव का स्वयं प्रबंध करने वाले ग्रामीण समुदाय द्वारा नजराने या कर के रूप में दिया जाता था। यह हिस्सा उपज के आधार पर निर्धारित होता था अर्थात् उपज यदि कम हुई है, तो यह नजराना उसी अनुपात में कम हो जाता था और यदि उपज बढ़ती है तो नजराना भी बढ़ जाता था। कभी-कभी तो अकाल, सूखा या बाढ़ से जब सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाती थी तो नजराना माफ भी कर दिया जाता था। अंग्रेजों ने इस परम्परा को खत्म कर दिया और मालगुजारी के रूप में एक निश्चित रकम लेना प्रारंभ कर दिया। यह राशि जमीन के हिसाब से तय कर दी जाती थी और वर्ष में फसल कम हुई हो या ज्यादा, यह निर्धारित राशि ही देनी पड़ती थी। अधिकांशतः यह मालगुजारी अलग-अलग व्यक्तियों पर लगायी गयी थी। ये लोग या तो स्वयं खेती करते थे या सरकार द्वारा नियुक्त जमींदार होते थे। अब किसान सीधे राज्य का या राज्य द्वारा नियुक्त जमींदार का काश्तकार बन गया।

मालगुजारी निर्धारण के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग पद्धतियाँ अपनायी गयीं। ब्रिटिश सरकार द्वारा लगान निर्धारण की पद्धतियाँ निम्न थीं—

(a) जमींदार प्रथा (भू-राजस्व का स्थायी बंदोबस्त)

(b) रैयतवाड़ी व्यवस्था।

(c) महलवाड़ी व्यवस्था।

## 9.2 जमींदारी प्रथा या भू-राजस्व का स्थायी बंदोबस्त

1765 ई. में बंगाल, बिहार तथा अवध की दीवानी प्राप्त करने के बाद नवाब तथा अंग्रेजों के दोहरे शासन के कारण कृषकों की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी थी। वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा प्रचलित भू-राजस्व प्रणाली असफल रही, क्योंकि जमींदार अधिक बोली लगाकर भूमि पर अपना अधिकार बनाये रखते थे तथा कृषकों का शोषण करते थे। इस स्थिति में कार्नवालिस को बंगाल का गवर्नर जनरल बनाकर आदेश के साथ भेजा गया कि वह भारत में राजस्व व्यवस्था को व्यवस्थित करे। कार्नवालिस ने लगान व्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिए सर जान शोर के निर्देशन में जाँच के आदेश दिये। सर जान शोर के स्थायी भू-राजस्व व्यवस्था जमींदारों से करने का आग्रह किया। शोर ने जमींदारों से 10 वर्ष का अनुबंध कर भू-राजस्व भूमि के किराये का 9/10 भाग निर्धारित कर 1/10 भाग जमींदारों के लिए दिये जाने की सिफारिश की। कार्नवालिस ने शोर में प्रस्तावों को स्वीकृति प्रदान की और कम्पनी सरकार ने बंगाल में जमींदारों को भू-स्वामी मानते हुए भू-राजस्व की यह व्यवस्था जमींदारों के साथ की। 10 फरवरी, 1990 की यह व्यवस्था 10 वर्षों के लिए लागू की गयी। कार्नवालिस इस व्यवस्था को स्थायी बनाना चाहता था। 1793 में जब कम्पनी को स्वीकृति मिली तो उसने इसे स्थायी बना दिया।

कार्नवालिस ने यह स्थाई बंदोबस्त (इस्तमरारी बंदोबस्त) बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश के बनारस खंड, उत्तरी कर्नाटक तथा बाद में मद्रास के कुछ भागों में लागू की गयी। इसके अंतर्गत ब्रिटिश भारत की 19 प्रतिशत भूमि आती थी। इसे लागू करते समय भूमि की पैमाइश नहीं की गयी थी। इस व्यवस्था के द्वारा सन् 1790-91 में किये गये राजस्व संग्रह अर्थात् 26,80,000 रुपयों को आधार मानकर लगान निश्चित किया गया था।

जिन प्रांतों में यह स्थायी बंदोबस्त लागू किया गया था, उनमें पहले से मौजूद जमींदार वस्तुतः जमीन के मालिक नहीं थे, बल्कि कर या लगान वसूलने वाले सरकारी कर्मचारी थे। इन जमींदारों को यहाँ के पुराने शासकों ने कमीशन पर मालगुजारी वसूलने के लिए नियुक्त किया था। अंग्रेज सरकार ने इन्हें हमेशा के लिए जमीन का मालिक बना दिया और स्थायी तौर पर एक ऐसी राशि तय कर दी जो वे सरकार को दे सके। सरकार ने यह बंदोबस्त इस समय पाये जाने वाले जमींदारों के चार वर्गों के साथ किया था। इस बंदोबस्त में भूमि की उपज के तीन भागीदार बताये गये- (i) सरकार, (ii) जमींदार, (iii) कृषक। इनमें प्रथम दो भागीदारों की आय पौने चार करोड़ रुपये वार्षिक में से सरकार का 89 प्रतिशत भाग रखा गया और मात्र 11 प्रतिशत ही जमींदारों के पास रहने दिया गया।

भू-राजस्व की स्थायी व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य कम्पनी सरकार की आय हमेशा के लिए निश्चित करना तथा इसके अलावा इसका एक और दूरगामी लक्ष्य था कि समाज में एक ऐसा आधार तैयार करना जो ब्रिटिश सरकार का पूर्ण समर्थक हो। उन्होंने स्थाई बंदोबस्त के माध्यम से इंग्लैंड के ढंग पर जमींदारों का ऐसा नया वर्ग तैयार करना चाहा, जो अंग्रेजी राज्य के लिए सामाजिक आधार तैयार कर सके।

## 9.3 रैयतवाड़ी लगान व्यवस्था

रैयतवाड़ी लगान व्यवस्था का प्रवर्तक थामस मुनरो था। यह व्यवस्था सर्वप्रथम **चैन्नई के डीरामहल जिले में 1792 ई. में लागू की गयी थी।** 1820 ई. में जब मुनरो चैन्नई का गवर्नर बना तो उसने यह व्यवस्था चैन्नई के सम्पूर्ण प्रांतों में लागू कर दी। चैन्नई के अलावा मुम्बई के कुछ प्रांतों, बरार तथा बर्मा, असम तथा कुर्ग के कुछ हिस्सों में लागू किया गया। इसके अंतर्गत कुल ब्रिटिश भूमि का 51 प्रतिशत हिस्सा शामिल था। इस व्यवस्था में लगान जमा करने का अधिकार कास्तकारों को दिया गया जो भूमि के मालिक बनाये गये। इसको 30 या इससे कम या ज्यादा वर्षों में परिवर्तित किया जा सकता था।

इस व्यवस्था में कृषक ही भूमि का स्वामी होता था तथा बिना किसी जमींदार या बिचौलिये के सरकार को सीधे कर देता था। वह अपनी भूमि का पंजीबद्ध स्वामी होता। 1792 से 1820 तक रैयत खेत की अनुमानित आय का लगभग आधा भाग कर के रूप में देती थी। 1820 में सर्वेक्षण के बाद मुनरो ने कुल उपज के तीसरे भाग को लगान मानकर रैयतवाड़ी प्रथा प्रचलित की। रैयतों के लिए उपज का तीसरा हिस्सा भी कष्टदायक सिद्ध हुआ, क्योंकि यह राशि अधिकांश ग्रामों तथा खेतों की समस्त किराये की राशि के बराबर थी तथा यह राशि धन के रूप में बिना वार्षिक उपज या प्रचलित वस्तु दरों का ध्यान रखकर वसूल की जाती थी। इस प्रणाली से किसानों की दशा अत्यंत सोचनीय हो गयी, क्योंकि भू-राजस्व न देने पर उन्हें बेदखल कर दिया जाता था। अतः वे स्थानीय महाजनों से ऋण लेकर कर्जदार होते गये। भू-राजस्व का किसानों के साथ निर्धारण का कार्य जिलाधीशों को सौंपा गया था जिसे अपने जिले के लगभग 1,50,000 कृषकों के साथ अनुबंध करना था। अतः भू-राजस्व का निर्धारण सही नहीं हुआ, क्योंकि जिन कृषकों ने निर्धारण के समय अपनी उपज कम बताई उनका लगान कम कर दिया गया।

## 9.4 महलवाड़ी भू-राजस्व प्रणाली

महल जागीर के एक हिस्से को कहते थे। इसमें पूरा महल या ग्राम अपने भाग की जमीनों का स्वामी होता था तथा व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामूहिक रूप से कर देता था। इसमें सरकार ने महल के आधार पर भू-राजस्व निर्धारित किया था। अतः इस प्रणाली को महलवाड़ी व्यवस्था कहा गया। इसे संयुक्त व्यवस्था भी कहते हैं। यह व्यवस्था दक्कन के कुछ जिलों उत्तर-भारत जैसे संयुक्त प्राय, आगरा, अवध, मध्यप्रांत तथा पंजाब के कुछ हिस्सों में लागू किया गया। लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में होल्ट मैकेंजी के सर्वेक्षण और रिपोर्ट के सुझावों के आधार पर 1822 में भूमि पर लोगों के अधिकारों का लेखा तैयार किया गया तथा प्रत्येक ग्राम या महल पर कर निश्चित किया। सन् 1833 में विलियम बैंटिक के समय में फिर से इस व्यवस्था का मूल्यांकन किया गया तथा लोगों की कठिनाइयों तथा सरकार की कठोरता को कम करने के लिए 1833 में ही एक नियम (रेग्यूलेशन) बनाया गया। कर अनुमान पद्धति को सरल बनाया गया। खेतों के मानचित्र बनाये गये तथा रजिस्टर रखे गये। मार्टिन बर्ड को इस व्यवस्था का संचालक बनाया गया। इसके अनुसार एक टुकड़े की जमीनों का सर्वेक्षण कर बंजर, उपजाऊ हिस्से अलग कर उस टुकड़े का और इस प्रकार पूरे महल का कर निश्चित किया जाता था। लगान 66 प्रतिशत निश्चित किया गया। यह व्यवस्था 30 वर्ष के लिए थी।

जॉन लारेंस के शब्दों में जमीनों के मालिक पूरे गाँव की ओर से सरकार के साथ समझौता करते थे। व्यक्तिगत रूप से नहीं। गाँव की बिरादरी, अपने मुखियों या प्रतिनिधियों के माध्यम से, निश्चित अवधि तक रकम चुकाये जाने का भार अपने ऊपर ले लेती थी और फिर सारी देनदारी आपस में बाँटकर सबके अंश निर्धारित किये जाते थे। इस व्यवस्था में प्रमुखतः प्रत्येक व्यक्ति खेती करके अपने ही लिए निर्धारित रकम चुकाता था, पर अंततः वह अपने साथियों के अंश के लिए और वे सब उसके अंश के लिए उत्तरदायी होते थे।

**बोध प्रश्न**

1. भू-राजस्व व्यवस्था का वर्णन कीजिए?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

2. रैयतवाड़ी लगान व्यवस्था का वर्णन कीजिए?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

## 9.5 प्रभाव और परिणाम

NOTES

अंग्रेजी शासन द्वारा की गयी भू-राजस्व व्यवस्था ने न केवल कृषि क्षेत्र में परिवर्तन किये बल्कि सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ढाँचे को तोड़-मरोड़ के रख दिया। पहले से चली आ रही मान्यताओं और व्यवस्थाओं के टूटने से सामाजिक और आर्थिक जीवन में आधारभूत परिवर्तन हुए। ग्रामीण जीवन की स्वतंत्रता, सहजता और आत्मनिर्भरता खत्म हो गयी। ग्राम एवं स्वतंत्र इकाई न रहकर ब्रिटिश साम्राज्य के विशाल उपनिवेश की सम्बद्ध इकाई बनकर रह गयी, जो अब अपने लिए उत्पादन न कर साम्राज्य की शक्ति और समृद्धि बढ़ाने के लिए उत्पादन करने लगा था।

**भूमि के स्वामित्व का पंजीकरण -**

नयी भू-राजस्व व्यवस्था ने कृषि के सदियों पुराने ढाँचे को तोड़कर साम्राज्यवादी व पूँजीवाद शक्तियों के लिए शोषण का रास्ता बना लिया। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्न हुए—

(1) भूमि का निजी स्वामित्व,

(2) व्यक्तिगत कर निर्धारण और कर अदायगी,

(3) कर भुगतान के तरीके में परिवर्तन।

प्राचीन भारत में और प्राक् ब्रिटिश भारत में किसान अपनी जमीन के मालिक थे। जमीन गाँव में साझे की जमीन समझी जाती थी, इसलिए न तो जमीन को बेचा जा सकता था और न ही खरीदा जा सकता था, परन्तु इस नयी व्यवस्था के अंतर्गत वह भूमि निजी स्वामित्व में आ गई और परिणामस्वरूप वह "पण्य" वस्तु हो गयी, जिसको खरीदा या बेचा या गिरवी रखा जा सकता था। भारत की अर्थव्यवस्था के लिए यह नयी व्यवस्था बिल्कुल अजनबी थी और इस व्यवस्था का प्रशासन एक ऐसी विदेशी नौकरशाही करती थी, जो कानून बनाने उसे लागू करने और न्याय करने का काम स्वयं करती थी। इस परिवर्तन से अंग्रेजों ने भूमि पर पूरा-पूरा अधिकार कर लिया और किसानों को ऐसे काश्तकार का दर्जा दे दिया जिन्हें लगान का भुगतान न करने पर जमीन से बेदखल किया जा सके या उस जमीन को स्वयं द्वारा नामजद जमींदार के नाम लिखा जा सके। ये जमींदार भी सरकार की इच्छा से ही जमीन के मालिक थे और लगान न देने पर उन्हें भी जमीन से बेदखल किया जा सकता था। प्राचीन जमाने से अपना प्रबंध संचालन स्वयं करने वाले ग्रामीण समुदाय को उसके आर्थिक कार्यों और प्रशासनिक भूमिका से वंचित कर दिया गया।

भूमि की निजी मिल्कियत होने का परिणाम यह हुआ कि विपत्ति के समय भूमि को दाँव पर लगाया जाने लगा। कृषक को चाहे लगान अदा करना हो या घर या खेत की आवश्यकता पूरी करनी हो वह जमीन को साहूकार या जमींदार या फिर किसी बनिये के यहाँ गिरवी रखने लगा। इस तरह जमीन की कीमतों में वृद्धि हुई और एक जमीन किसी जमींदार, साहूकार या बनिये के हाथ पड़ गयी तो फिर वह उसे कभी नहीं छुड़ा सकता था। जिंदगी भर उसका ब्याज भरना और पीढ़ी-दर-पीढ़ी कर्जदार होने का बोझ ढोना कृषक की नियति बनने लगी और जब वह भूमि की कीमत नहीं चुका पाता था, तो भूमि पर से उसका मालिकाना अधिकार समाप्त कर दिया जाता। नये कानून बनने से जब बेदखली के अधिकार साहूकार और जमींदारों को मिलने लगे तब बेदखली बड़े पैमाने पर होने लगी। इस तरह किसानों का एक बड़ा समूह भूमिहीन मजदूर बनने लगा।

प्राक् ब्रिटिश भारत में लगान खड़ी फसल का एक हिस्सा होता था अर्थात् लगान फसल देखकर निर्धारित किया जाता था। फसल कम या अधिक होने पर लगान भी कम या अधिक किया जाता था, परन्तु अब लगान का निर्धारण फसल की जगह जमीन के टुकड़ों के आधार पर होने लगा। इसका अर्थ यह कि फसल चाहे कितनी भी हो कृषक को एक निश्चित लगान देना ही है।

**लगान वृद्धि -** 1765 ई. में जब कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा प्रांतों के दीवान के अधिकार मिले तब कम्पनी इस अधिकार को संभालने में सक्षम नहीं थी, लेकिन ज्यों ही व्यापारिक कम्पनी की सत्ता स्थापित होने लगी कम्पनी को अपनी विस्तार की नीति को बढ़ाने के लिए अधिक धन की आवश्यकता हुई। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए भारतीय उद्योग एवं कृषि में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया था। कृषि क्षेत्र में कम्पनी ने लगान में वृद्धि करके परिवर्तनों का प्रारंभ किया। कम्पनी ने अपने पहले ही वित्तीय वर्ष में लगान योग्य रकम को लगभग

दुगना कर दिया। बंगाल में जहाँ वार्षिक लगान 81,75,533 रुपये था, वहाँ उसे बढ़ाकर कम्पनी ने 1,14,04,675 रुपये कर दिया। यह प्रक्रिया आगे भी चालू रही।

**इजारेदारी पद्धति–** वारेन हेस्टिंग्स ने लगान वसूली के लिए एक पद्धति का प्रारंभ किया। इसके अंतर्गत लगान वसूली के अधिकार खुलेआम बोली लगाकर बेचा जाता था। यानी कोई भी ऐसा व्यक्ति जो भू-राजस्व की निर्धारित रकम अदा कर सके वह यह अधिकार पा सकता है। इसमें जो व्यक्ति जितनी ऊँची बोली लगा सकता था वह उस अधिकार को पा सकता था। पहले यह व्यवस्था 5 वर्ष के लिए की गयी थी। बाद में इसे वार्षिक कर दिया गया।

**कृषि का वाणिज्यीकरण -** भारतीय कृषि के क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए उनमें कृषि का वाणिज्यीकरण एक महत्वपूर्ण परिवर्तन था। यदि यह परिवर्तन देश के विकास के उद्देश्य से होता तो भारत का नक्शा ही कुछ और होता। मगर अंग्रेजी साम्राज्यवादी सरकार ने यह परिवर्तन अपने साम्राज्यवादी हितों को बढ़ाने के लिए किया, इसलिए यह परिवर्तन सिर्फ शोषण का मजबूत हथियार मात्र बनकर रह गया। 1813 ई. के बाद जब कम्पनी सरकार ने भारत में व्यापारिक एकाधिकार समाप्त करके मुक्त व्यापार की नीति अपनायी तब भारत ब्रिटिश पूँजीपतियों के लिए एक मंडी भी बन गया। इस समय ब्रिटेन में औद्योगीकरण अपने पूर्ण शबाब पर था। इस औद्योगीकरण की प्रक्रिया में उसे एक तरफ तो कच्चे माल की आवश्यकता थी और दूसरी तरफ उत्पादित माल की खपत के लिए एक बड़े बाजार की। भारत इन दोनों के लिए बहुत अच्छा क्षेत्र था। भारत के पास एक विशाल क्षेत्र था, जो निरन्तर प्रभूत मात्रा में कच्चा माल उत्पादित कर सकता था और उतना ही बड़ा उपभोक्ता बाजार था, जो ब्रिटेन में मशीनों से बनी वस्तुओं को खरीद सकता था। ब्रिटिश उद्योगपतियों ने कम्पनी सरकार और बाद में ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालकर इस बड़े बाजार का उपयोग करना आरंभ किया। यहीं से कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया की शुरुआत होती है।

अब भारत को केवल उन्हीं वस्तुओं को अपने यहाँ पैदा करना था, जिनकी आवश्यकता ब्रिटेन के कारखानों को कच्चे माल के रूप में थी। दूसरा कारण यह था कि यह नई भू-राजस्व व्यवस्था के कारण कृषक को लगान चुकाने के लिए भी और अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदने के लिए भी रोकड़ राशि की आवश्यकता थी, क्योंकि अब ग्राम एक आत्मनिर्भर इकाई नहीं रह गया था। वह अब विनिमय के लिए नहीं बिक्री के लिए बाजार के लिए माल उत्पादित करता था। नकद राशि की आवश्यकता ने कृषकों को मजबूर कर दिया कि वे ऐसी फसलें उगाएँ जिनका मूल्य बाजार में नकद और अच्छा मिलता हो। इस तरह हम देखते हैं कि उत्पादन के स्वरूप में परिवर्तन होने लगा था। यह परिवर्तन रूप ही कृषि के वाणिज्यीकरण के नाम से जाना जाता है।

अब भारत में नकदी फसलें अधिक पैदा होने लगीं। इंग्लैंड के औद्योगिक कारखानों को जिन कच्चे मालों की आवश्यकता थी उनकी खेती पर अधिक जोर दिया गया अतः भारत में किसान अब केवल वे वस्तुएँ उगाने लगे जिनका देशी और विदेशी बाजार के दृष्टिकोण से अधिक मूल्य था। इस समय ब्रिटिश शासन की नीति ब्रिटेन की आवश्यकताओं के लिए भारत के कृषि उत्पादन के उपयोग की थी। इस नीति के कारण भी कृषि का व्यवसायीकरण हुआ। कृषि के व्यवसायीकरण के संबंध में एक तथ्य यह भी ध्यान रखने योग्य है कि यातायात के साधनों के विकास ने इसे व्यापक पैमाने पर बढ़ाने में महती भूमिका निभाई। यातायात के साधनों में रेल प्रणाली की स्थापना ने सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। रेल प्रणाली के प्रारंभ होने से देश के अंदरूनी इलाकों को बंदरगाहों से जोड़ने में सुविधा हुई। अब देश के भीतरी इलाकों का उत्पादन रेल के माध्यम से सीधे और जल्दी बंदरगाहों तक पहुँचने लगा तथा ब्रिटेन में उत्पादित पक्के माल को बिक्री के लिए देश के प्रत्येक भाग में पहुँचाने में सुविधा मिली। इससे कृषि का व्यवसायीकरण बढ़ा।

भारत में कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया का सर्वाधिक विकास नहीं हुआ। जैसा कि ब्रिटेन में हुआ था। वहाँ कृषि उत्पादन के बाजार में वृद्धि और कृषि उत्पादन के मूल्यों में वृद्धि साथ-साथ हुई थी तथा कृषि के विकास के कारण बेचने के लिए अधिक अतिरिक्त पैदावार होने लगी थी। इससे किसानों को लाभ हुआ था और कृषि के विकास के लिए नयी तकनीकें खोजी गयीं एवं बंजर तथा अनुपयुक्त जमीन को कृषि के लिए विकसित और उपयोगी बनाया गया जिससे कृषि का विकास हुआ था। भारत में ऐसा नहीं हुआ यहाँ तो कृषि का नकदीकरण इसलिए आवश्यक बना क्योंकि यहाँ सरकार लगान नकदी वसूल करती थी। अतः कृषक को कोई लाभ नहीं हुआ और कृषि समस्याओं में वृद्धि हुई।

कृषि के व्यवसायीकरण के कारण कई स्थानों में अब एक ही तरह की फसलें उगाई जाने लगीं, जैसे बंगाल में केवल जूट एवं चाय, पंजाब में केवल गेहूँ, अफीम के लिए पोस्त की खेती को बनारस, बिहार, बंगाल तथा मध्यभारत व मालवा में बढ़ाया गया। बर्मा चावल के लिए प्रसिद्ध हो गया। इस तरह कृषि के व्यवसायीकरण की प्रक्रिया का प्रारंभ बंगाल से हुआ। यहाँ सबसे पहले जूट की पोस्त एवं नील प्रमुख नकदी फसलें थीं। बाद में चाय की खेती पर भी जोर दिया गया। यहाँ किस चीज की कब कितनी खेती होगी इसका निश्चय कृषक नहीं सरकार करती थी और अपनी आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण फसल पर अपना एकाधिकार भी रखती थी।

कृषि का वाणिज्यीकरण वास्तव में एक प्रगतिशील प्रक्रिया है। आधुनिकीकरण की दिशा में एक सही कदम। भौतिक प्रगति और वैज्ञानिक तकनीकी साधनों का प्रयोग कृषि के वाणिज्यीकरण के आधार पर हो और कृषक के पास पर्याप्त पूँजी उपलब्ध हो या कम ब्याज दर पर ऋण उपलब्ध कराया जाये तो यह प्रक्रिया देश के विकास के साथ-साथ जनता की व्यक्तिगत उन्नति का भी सही साधन बन सकती थी, परन्तु साम्राज्यवादी अंग्रेजी राज्य का उद्देश्य न तो भारत की प्रगति था और न ही भारतवासियों की व्यक्तिगत उन्नति। इसलिए कृषि के वाणिज्यीकरण का तात्कालिक परिणाम देश और कृषक शोषण के माध्यम से निर्धनता, ऋणग्रस्तता, जमीन की उर्वरता का ह्रास, ग्रामीण सामुदायिक जीवन का अंत, ग्रामीण उद्योग और कृषि के पारस्परिक संबंधों का विघटन, हस्तशिल्प उद्योग का पतन, व्यक्तिगत संबंधों में परिवर्तन, सामाजिक संबंधों के नये समीकरणों का बनना, नये वर्गों का उदय आदि के रूप में सामने आया।

वाणिज्यीकरण की इस प्रक्रिया ने जो अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण के लिए प्रारंभ की गयी थी। भारत को न चाहते हुए आधुनिकीकरण की ओर धकेल दिया। भविष्य में इस प्रक्रिया के कई शुभ परिणाम हुए। भारत की अर्थव्यवस्था को अपने ही शोषण के साधनों की आधारशिला पर पैर रखकर प्रगति करनी थी। शोषण की इस प्रक्रिया ने भारत में यातायात के साधनों के विकास का मार्ग प्रशस्त किया। संचार और यातायात के साधनों का विकास आधुनिकीकरण का पहला चरण माना जा सकता है। यही वह माध्यम है जिसके कारण भारत सम्पूर्ण विश्व से जुड़ा। फसलों के विशेषीकरण के कारण धीरे-धीरे औद्योगिक विकास में सहायता मिली।

**बोध प्रश्न**

1. कृषि का वाणिज्यीकरण का वर्णन कीजिए?

   ..............................................................................................

   ..............................................................................................

   ..............................................................................................

2. इजारेदारी पद्धति का वर्णन कीजिए?

   ..............................................................................................

   ..............................................................................................

   ..............................................................................................

   ..............................................................................................

## 9.6 कृषकों की स्थिति

मुगल साम्राज्य की केन्द्रीय सत्ता का जैसे-जैसे पतन होता गया, वैसे-वैसे ग्रामीण भारत की तस्वीर बदलती गई। प्राचीन काल से मुगल साम्राज्य तक गाँव ही एक ऐसी इकाई थी जो राजसत्ता के बदलने पर भी लगभग अपरिवर्तनीय रहती थी और अपने आर्थिक संतुलन को कायम रखे हुई थी। इस स्थिति में कृषक और दस्तकार उत्पादक होते थे और नगरीय समाज तथा राजे-महाराजे तथा सामंत वर्ग उसके उत्पादों का उपभोक्ता होता था। यही कारण था कि सत्ताधारी वर्ग उत्पादन की इस मूलभूत इकाई के चरित्र में कोई खास बदलाव लाने की कोशिश नहीं करता था। कृषक अपनी जमीन का मालिक होता था और उसके उत्पादन पर भी उसका मालिकाना हक होता था। इस स्थिति में यह तो नहीं कह सकते कि प्राक् ब्रिटिश भारत का किसान बहुत अधिक समृद्ध था, परन्तु उसकी दशा इतनी खराब भी नहीं थी जितनी कि ब्रिटिश शासन के दौरान हो गई थी।

**कृषकों की खराब स्थिति के कारण -**

जमीन का मालिक कृषक कुछ ही वर्षों के अन्तराल में अत्यन्त दयनीय स्थिति में कैसे पहुँच गया? यह एक गहन शोध का विषय है। इतिहास में इसके कुछ कारणों की परख करना मुश्किल काम नहीं है।

**(1) ब्रिटिश भू-राजस्व नीतियाँ -** कृषकों की माली हालत खराब करने का मुख्य श्रेय ब्रिटिश भू-राजस्व की नीतियों को जाता है। बंगाल में सत्ता संभालते ही उसे बिहार, बंगाल और उड़ीसा की दीवानी भी प्राप्त हो गई थी। यहीं से भारतीय किसान की लूट और शोषण का दुष्चक्र प्रारंभ होता है। इसके बाद ब्रिटिश शासन ने तीन तरह की राजस्व नीतियाँ अपनायीं। ये थीं -

- स्थायी बंदबोस्त,
- रैयतवाड़ी प्रथा,
- महलवाड़ी व्यवस्था।

स्थायी बंदोबस्त को सबसे पहले कार्नवालिस के समय में दस वर्ष के लिए लागू किया गया था। इसे 1793 में स्थायी कर दिया गया। यह बंदोबस्त वास्तव में जमींदारों के साथ किया गया था। इसके द्वारा उन्हें जमीन का मालिक बना दिया गया और अंग्रेज सरकार उनसे एक निश्चित राजस्व जो कि बहुत अधिक था, वसूल करती थी। जमींदार को काश्तकार के बीच किसी प्रकार की नीति को लागू नहीं किया गया। इससे जमींदार किसानों से मनमाना राजस्व वसूल करने लगे और न देने पर उनको जमीन से बेदखल कर दिया जाता था। जिन क्षेत्रों में यह प्रथा लागू की गई थी उनमें किसानों की स्थिति अत्यन्त खराब होती गई। किसान निरंतर गरीब होते गए और साहूकारों तथा महाजनों के चंगुल में फँसते गए जिससे उन पर ऋणों का बोझ बढ़ता गया। उनके पास न खाद ही उपलब्ध होती थी न बीज। इस सबके लिए वह महाजनों से उधार लेता था। एक बार यह प्रक्रिया प्रारंभ होने पर वह कभी इस दुष्चक्र से मुक्त नहीं हो पाता था।

**(2) हस्तशिल्प उद्योगों का पतन -** कृषकों की स्थिति खराब होने का दूसरा कारण था ग्रामीण दस्तकारी उद्योग का पतन। अंग्रेजों ने इंग्लैंड की औद्योगिक क्रांति के लिए भारत से कच्चे माल का निर्यात करना प्रारंभ किया और इसके बदले वे गाँवों को कुछ भी नहीं देते थे। कारीगरों को सस्ते दामों पर माल बेचने के लिए मजबूर किया गया। उनके औजारों को नष्ट किया गया। कई जगह तो कारीगरों के हाथ तक अंग्रेजों ने काट दिए जिससे वे अच्छे माल का उत्पादन न कर सकें और उन्हें इंग्लैण्ड की मिलों में बने माल को महँगे दामों पर खरीदने को मजबूर होना पड़ा। इन स्थितियों में भारतीय किसानों की आर्थिक हालत निरंतर खराब होती गई।

**(3) ग्रामीण ऋणग्रस्तता का बढ़ना -** ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप किसानों को उधार लेने के लिए विवश होना पड़ा और अन्ततः वह अंग्रेज, जमींदार और महाजन के चक्रव्यूह में फँस गया। उसके पास पहनने के लिए कपड़े नहीं होते थे, यद्यपि वह अनाज को अपना पसीना बहाकर पैदा करता था, तथापि उसे खाने के लिए अनाज ऊँची ब्याज दरों पर उधार लेकर खरीदना पड़ता था। उसे बीज और खाद तथा हल-बैल के लिए भी महाजनों के पास कभी अपने खेत तो कभी कुछ गिरवी रखना होता था। इस स्थिति ने आम किसान की माली हालत को बहुत दयनीय बना दिया।

## 9.7 सारांश

**कृषि का व्यवसायीकरण -** किसानों की हालत खराब होने का एक कारण था भारतीय कृषि का व्यवसायीरण किया जाना। इससे भूमि एक पण्य वस्तु बन गई और अब उत्पादन स्थानीय आवश्यकता के लिए न होकर बाजार के लिए होने लगा। इससे भी कृषक जीवन में परिवर्तन आया और परिणामस्वरूप वह और गरीब होता गया क्योंकि यह कार्य अंग्रेजों ने अपने लाभ के लिए किया था न कि ग्रामीण भारत के उत्थान के लिए। इस नीति का भी वास्तविक लाभ पूँजीपति, जमींदार और महाजनों को ही मिला क्योंकि किसान को अपनी नकदी फसल भी खलिहान में ही सस्ते दामों में बिचौलियों को बेचनी पड़ती थी क्योंकि उनके पास कोई अतिरिक्त बचत नहीं होती थी ताकि वह अपनी फसल को समय आने पर बेचने के लिए रख सके। इसके अलावा उन्हें महाजनों और सरकार के ऋण की अदायगी की जल्दी होती थी। इसका फायदा बिचौलिए उठाते थे और किसान को कम से कम दामों पर अनाज बेचने को मजबूर करते थे।

इस तरह से हम देखते हैं कि ब्रिटिश भारत का किसान अत्यंत निर्धनता और अभावों की जिन्दगी बसर कर रहा था।

## 9.8 अभ्यास प्रश्न

NOTES

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. स्थाई बंदोबस्त प्रथा से आप क्या समझते हो? स्थाई बंदोबस्त प्रथा के गुण-दोष बताइए।
2. रैयतवाड़ी लगान व्यवस्था की जानकारी दीजिए।
3. महलवाड़ी भू-राजस्व प्रणाली से आप क्या समझते हो? विस्तारपूर्वक समझाइए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. स्थाई बंदोबस्त प्रथा से आप क्या समझते हो?
2. रैयतवाड़ी लगान व्यवस्था पर टिप्पणी लिखिए।
3. महलवाड़ी भू-राजस्व प्रणाली से आप क्या समझते हो?
4. कृषि के वाणिज्यीकरण से आप क्या समझते हो?
5. कृषकों की दयनीय स्थिति के कारण बताइए।

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

1. स्थाई बंदोबस्त के संस्थापक थे-
   (A) कार्नवालिस (B) हेस्टिंग्ज (C) डलहौजी (D) क्लाईव
2. स्थाई बंदोबस्त प्रथा में भूमि को कितने वर्ष के लिए अनुबंध किया गया -
   (A) 5 वर्ष के लिए (B) 10 वर्ष के लिए (C) 6 वर्ष के लिए (D) 12 वर्ष के लिए
3. रैयतवाड़ी लगान व्यवस्था का प्रवर्तक था -
   (A) कार्नवालिस (B) क्लाईव (C) थामस मुनरो (D) इनमें से कोई नहीं।
4. ब्रिटिश सरकार द्वारा लगान निर्धारण की पद्धतियाँ -
   (A) जमींदार प्रथा (B) रैयतवाड़ी व्यवस्था
   (C) महलवाड़ी व्यवस्था (D) उपरोक्त सभी।
5. कृषि के व्यवसायीकरण के कारण थे -
   (A) भूमि अनुपजाऊ बनी
   (B) कई स्थानों पर एक जैसी फसलें उगाई जाने लगीं
   (C) भूमि का विभाजन हुआ
   (D) इनमें से कोई नहीं।

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (C), 4. (D), 5. (B)

## 9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

# अध्याय-10 संवैधानिक विकास : रेग्यूलेटिंग एक्ट एवं पिट्स इंडिया एक्ट
## (CONSTITUTIONAL DEVELOPMENT : REGULATION ACT AND PITTS INDIA ACT)

NOTES

**इकाई की रूपरेखा**

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट
10.3 अधिनियम की धाराएँ
10.4 1781 का संशोधनात्मक अधिनियम
10.5 पिट्स इण्डिया एक्ट (1784)
10.6 भारत शासन को अधिक अच्छा बनाने के लिए 1858 का अधिनियम
10.7 1858 ई. का आदेश पत्र
10.8 सारांश
10.9 अभ्सास प्रश्न
10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूनी

## 10.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. पिट्स इण्डिया एक्ट ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. 1793-97 चार्टर एक्ट का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. संवैधानिक विकास का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 10.1 प्रस्तावना

1600 ई. में अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने रानी ऐलिजाबेथ से भारत में व्यापार करने की आज्ञा प्राप्त की थी। अंग्रेजों के अतिरिक्त भारत में व्यापार करने के लिए पुर्तगाली, डच और फ्रांसीसी भी आये, परन्तु 18वीं सदी के मध्य तक पुर्तगाली और डच दोनों का प्रभाव भारत में नष्ट हो गया तथा केवल अंग्रेज और फ्रान्सीसी ही भारत में व्यापार व शासन के लिए संघर्ष करने हेतु बाकी रह गये। उस अवसर पर भारत की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त दुर्बल थी। मुगल-साम्राज्य नष्ट हो चुका था। दुर्बल मुगल-बादशाह दिल्ली और उसके समीपवर्ती भागों के ही शासक रह गये थे और उस पर भी वे अपने धूर्त वजीरों के हाथों में कठपुतली मात्र थे। दक्षिण में निजाम-उल-मुल्क ने स्वतंत्र आसफजाही राज्य की स्थापना कर ली थी, अवध में सादतअली ने स्वतंत्र राज्य का निर्माण कर लिया था, बंगाल जैसे दूरवर्ती सभी प्रान्त स्वतंत्र हो चुके थे और राजपूत शासकों के छोटे-छोटे राज्य निरन्तर परस्पर लड़ते-झगड़ते रहते थे। अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने भारत को और अधिक शक्तिहीन कर दिया था। उनमें सबसे प्रबल शक्ति मराठा थे जिन्होंने प्रथम तीन पेशवाओं के नेतृत्व में अपनी शक्ति सम्पूर्ण भारत

में फैला ली थी। उनका शासक, शिवाजी का वंशज, सतारा में एक प्रकार से कैद था, परन्तु धीरे-धीरे पेशवाओं की शक्ति भी दुर्बल हो गयी थी। मराठे पाँच शक्तिशाली वंशों के राज्यों में विभक्त हो गये थे- पूना के पेशवा, नागपुर के भौंसले, इन्दौर के होल्कर, गुजरात के गायकवाड़ और ग्वालियर के सिन्धिया। मराठा-संघ की सबसे बड़ी दुर्बलता इन मराठा सरदारों का पारस्परिक संघर्ष और भारत की एकता, संगठन और उचित शासन के लिए प्रयत्न न करना था। बाद में भारत में कुछ नवीन शक्तियों का भी जन्म हुआ, जैसे मैसूर में हैदरअली और उसका पुत्र टीपू तथा पंजाब में सिक्ख सरदार रणजीत सिंह, परन्तु यह ऐसी स्थिति थी जिसमें भारतीय एकता की भावना को खो चुके थे। भारत एक शक्तिशाली राज्य के रूप में संगठित न था। विभिन्न राज्य परस्पर संघर्ष करते रहते थे और कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति तलवार के बल पर नवीन राज्य का निर्माण कर सकता था। भारत की राजनीति संघर्ष, ईर्ष्या, कुटिलता और षड्यन्त्रों से युक्त थी।

ऐसे समय में अंग्रेजों और फ्रान्सीसियों ने भारत में व्यापार और राज्य के लिए संघर्ष आरम्भ किया। 1856 ई. तक वे भारत की विजय प्रायः पूर्ण कर चुके थे। उसके पश्चात् जो कुछ भी थोड़े-बहुत राज्य भारत में बचे रहे वे पूर्णतया अंग्रेजों के अधीन राज्य थे। अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार में क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स, लॉर्ड कार्नवालिस, लॉर्ड वैलेजली, लॉर्ड हेस्टिंग्स और लॉर्ड डलहौजी के नाम उल्लेखनीय हैं। भारत का यह अंग्रेजी राज्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने प्राप्त किया था परन्तु 1857 ई. के विद्रोह के कारण यह कम्पनी से छीनकर ब्रिटिश सरकार को दे दिया गया और ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट और कैबिनेट भारत के शासन के लिए उत्तरदायी हो गयी।

ब्रिटिश शासन के अंतर्गत भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास को हम दो भागों में बाँटते हैं:

(A) ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के शासन के अंतर्गत, और

(B) ब्रिटेन की सरकार के शासन के अन्तर्गत।

जिस समय तक (1855 ई.) ईस्ट-इण्डिया कम्पनी का शासन रहा, उस समय तक ब्रिटेन की संसद विभिन्न अवसरों पर विभिन्न कानून अथवा आदेश-पत्र जारी करके कम्पनी के शासन पर नियंत्रण रखती थी और जब उसने स्वयं भारत के शासन को अपने हाथों में लिया तब भी उसने भारत के शासन के लिए विभिन्न कानून बनाये। उन सभी आदेश-पत्रों और कानूनों को हम भारत के संवैधानिक विकास में सम्मिलित करते हैं। अब हम यहाँ कुछ प्रमुख संवैधानिक अधिनियमों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

## 10.2 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट (The Regulating Act of 1773)

दोहरी प्रणाली के अधीन भारतीय प्रजा पर होते हुए अत्याचार के विषय में एक समकालीन मुस्लिम इतिहासकार ने अपनी पुस्तक सियार-उल-मुत्खैरीन में भी उल्लेख किया है और कहा है कि "जनता के हितों की पूर्णतया अनदेखी करते हुए कम्पनी ने अपने अधिकारियों को प्रजा पर अनन्त अत्याचार करने की अनुमति दे दी थी।" इसी बीच 1770 में एक भीषण अकाल पड़ा जो सम्भवतः भारत के लिखित इतिहास में सबसे भयानक था। कम्पनी ने इस अकाल की भीषणता को कम करने का लेशमात्र भी प्रयत्न नहीं किया बल्कि अंग्रेज व्यापारियों ने इससे अनुचित लाभ उठाकर बहुत धन कमाया। वारेन हेस्टिंग्ज के 1772 में भारत आने से पूर्व बारह वर्ष तक अंग्रेज व्यापारी बंगाल से लूटे हुए सोने से भरे थैले लेकर इंग्लैण्ड लौटते रहे। इन अंग्रेजी नवाबों को समकालीन अंग्रेजी अभिजात वर्ग जिस तिरस्कार, ईर्ष्या तथा घृणा की दृष्टि से देखता था यह समकालीन संस्मरणों तथा पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है। कम्पनी की बिगड़ती हुई वित्तीय स्थिति बहुत दिनों तक छुपी नहीं रह सकी। कम्पनी ने पहला कार्य यह किया कि 4,00,000 रु. वार्षिक जो अंग्रेज सरकार को देना होता था उससे छूट माँगी। कम्पनी पर ऋण की मात्रा बढ़ने लगी। वास्तविक लेखे को झुठलाकर कम्पनी ने 1772 में भी 12.5 प्रतिशत लाभांश जारी रखा और वह उस समय जबकि कम्पनी पर 60 लाख पौण्ड ऋण था। जब बंगाल के अकाल का तथा हैदरअली के कर्नाटक पर सफल आक्रमणों का समाचार लंदन पहुँचा तो कम्पनी के शेअरों का मूल्य बाजार में बहुत गिर गया। शीघ्र ही लोगों को कम्पनी की वास्तविक स्थिति का पता लग गया। निराश होकर डायरेक्टरों ने बैंक ऑफ इंग्लैण्ड से दस लाख पौंड का ऋण माँगा। यह सम्भवतः कम्पनी की स्वतंत्रता का अन्त था। संसद की एक प्रवर समिति इस प्रार्थना-पत्र की जाँच करने के लिए नियुक्त की गई। प्रवर समिति का अध्यक्ष जनरल बरगायन था जिसने विवाद में बोलते हुए कहा था, "महान अत्याचार और क्रूरता जो किसी असैनिक सरकार के नाम को धब्बा लगा सकती है, उसे

सुधारने की आवश्यकता है और यदि किसी कारण प्रभुसत्ता और व्यापार को अलग नहीं किया गया तो भारत और इंग्लैंड दोनों ही इतने नीचे गिर जाएँगे और डूब जाएँगे कि उनका पुनरुत्थान नहीं हो सकेगा।" अतः कंपनी सरकार की ओर से एक अधिनियम रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया गया, जिसका कंपनी तथा उसके मित्रों ने डटकर विरोध किया।

NOTES

## 10.3 अधिनियम की धाराएँ

रेग्यूलेटिंग एक्ट में निम्नलिखित धाराएँ थीं -

**1. संचालन समिति संबंधी धाराएँ** - इस एक्ट में संचालन समिति संबंधी धाराएँ इस प्रकार थीं-

- अब संचालकों का समय चार वर्ष के लिए निर्धारित कर दिया गया और कुल सदस्यों में से छह सदस्य प्रतिवर्ष चुने जाना निश्चित किया गया।
- इसके अलावा एक सदस्य दुबारा चुना जाए इसके बीच में कम से कम एक वर्ष का अवकाश आवश्यक कर दिया गया।
- अब वही हिस्सेदार मतदान करेंगे जो एक वर्ष से अधिक समय तक 1000 पौंड के हिस्से के मालिक थे। इनके अलावा जो हिस्सेदार 3, 6 और 10 हजार पौंड के मालिक थे वे 2, 3, 4 मत देने के अधिकारी हो जाते थे।

**2. भारत शासन संबंधी धाराएँ** - रेग्यूलेटिंग एक्ट में कुछ धाराएँ भारत शासन के बारे में भी थीं जो इस प्रकार हैं -

- इसके आधार पर अब बंबई और मद्रास प्रांत अपनी विदेश नीति में बंगाल सरकार के अधीन काम करेंगे।
- बंगाल में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना के निर्देश दिए गए। इसमें एक मुख्य न्यायाधीश के साथ तीन और न्यायाधीशों की नियुक्ति की स्थापना की गई।
- इस धारा के अनुसार अब फोर्ट विलियम प्रेसीडेंसी का प्रशासक ही अंग्रेजी क्षेत्रों का गवर्नर जनरल कहा जाने लगा।
- अंग्रेज गवर्नर जनरल की सहायता के लिए चार सदस्यों की एक समिति बना दी गई।
- अब कंपनी के कर्मचारियों का निजी व्यापार पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया गया।
- गवर्नर जनरल अब कानून बना सकते थे और अध्यादेश पारित कर सकते थे।

### रेग्यूलेटिंग एक्ट की कमियाँ

- इस एक्ट के द्वारा भ्रष्टाचार को अधिक पूँजी वालों के हाथों में केन्द्रित कर दिया गया, क्योंकि इसके द्वारा मतदाताओं की संख्या कम कर दी गई तथा अधिक पूँजी वाले हिस्सेदारों को एक अधिक मतदान का अधिकार दिए गए थे।
- यद्यपि बंगाल के गवर्नर का बंबई और मद्रास के ऊपर नियंत्रण दिया गया था, परन्तु वह पूर्णतः नहीं था, अधूरा था क्योंकि उन्हें संचालकों से सीधे निर्देश भी प्राप्त होते रहते थे।
- सुप्रीम कोर्ट की स्थापना के बाद गवर्नर जनरल और सुप्रीम कोर्ट में सर्वोपरि कौन है इसका निर्णय शेष था।

**अधिनियम की आलोचना** (Criticism of the Act) -

अधिनियम ने गवर्नर-जनरल तो नियुक्त कर दिया परन्तु उस पर एक परिषद लाद दी जिससे वह पूर्णतया असहाय हो गया, जैसा कि वारेन हेस्टिंग्ज के साथ (1774 से 1776 तक) हुआ। अधिनियम ने न्यायालय तो स्थापित कर दिया परन्तु उसे कौन से कानून के अनुसार चलना है (भारतीय अथवा ब्रिटिश) यह निश्चित नहीं था और न ही परिषद् तथा न्यायालय का अधिकार क्षेत्र निश्चित किया गया। अधिनियम कुछ मामलों में जानबूझ कर चुप था तथा यह एक प्रकार का समझौता था। इसने स्पष्ट रूप से क्राउन की प्रभुसत्ता को दृढ़तापूर्वक स्थापित करने

NOTES

का प्रयत्न नहीं किया और न ही बंगाल के नवाब की प्रभुसत्ता पर आघात किया। अधिनियम ने "राज्य सरकार को कम्पनी पर, डायरेक्टरों को अपने सेवकों पर, गवर्नर-जनरल को परिषद् पर, अथवा कलकत्ता प्रेजिडेन्सी को चेन्नई तथा मुंबई पर पूर्ण तथा स्पष्ट रूप से नियंत्रण नहीं दिया।" यह अधिनियम अवरोध तथा संतुलन (checks and balances) की नीति पर आधारित था। वास्तविक स्थितियों के दबाव के अधीन तथा आन्तरिक त्रुटियों के कारण यह छिन्न-भिन्न हो गया।

**अधिनियम का महत्व** (Importance of the Act) -

रेग्यूलेटिंग एक्ट के विषय में यह स्वीकार करना पड़ेगा कि किसी भी यूरोपीय शक्ति द्वारा सुदूर सभ्य लोगों के देश में प्रशासन करने का यह प्रथम प्रयत्न था। उत्तरी अमेरिका की तरह भारत ऐसा देश नहीं था जहाँ यूरोपीय लोग ही रहते थे और जहाँ यूरोपीय संस्थाओं का लागू करना तथा चलाना बहुत सरल था। इसी प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय प्रदेश दक्षिणी अमेरिका की भाँति नहीं थे जो कि एक अविकसित प्रदेश हों। इस प्रकार रेग्यूलेटिंग एक्ट एक अनजान समुद्र में नाव चलाने की भाँति था। इसमें भारत के प्रशासन का ब्यौरा कम्पनी की अपनी युक्तियों पर छोड़ दिया गया था। इसके द्वारा बंगाल, चेन्नई तथा मुंबई में एक ईमानदार तथा कुशल प्रभुसत्ता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। कम्पनी के अधिकारी अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न कर सकें, इस उद्देश्य से उन्होंने कलकत्ते में एक उच्च न्यायालय भी स्थापित कर दिया। इंग्लैंड में कोई भी सरकारी पदाधिकारी कानून की परिधि से बाहर नहीं था और वह अपने कार्यों के लिए साधारण न्यायालय में उत्तरदायी था। अतएव थोड़े में हम यह कह सकते हैं कि यह अधिनियम अधिक अच्छा प्रशासन स्थापित करने के लिए एक प्रयत्न था परन्तु चूँकि समस्या का पूर्ण ज्ञान नहीं था तथा यह अधिनियम अज्ञान में बनाया गया अतएव पूर्णतया असफल रहा तथा इससे वारेन हेस्टिंग्ज की स्थिति दृढ़ नहीं हुई अपितु उसकी कठिनाइयाँ बढ़ीं। रेग्यूलेटिंग एक्ट 11 वर्ष तक चलता रहा। फिर 1784 में इसके स्थान पर पिट का इण्डिया एक्ट (Pitt's India Act) पारित किया गया।

## 10.4 1781 का संशोधनात्मक अधिनियम (Amendment of Act of 1781)

रेग्यूलेटिंग एक्ट के पश्चात् कुछ उपचारार्थ तथा अनुपूरक कानून बनाने की आवश्यकता पड़ी। ऐसा ही एक अधिनियम, 1781 का इण्डिया एक्ट था, जिसके अनुसार कम्पनी के पदाधिकारियों द्वारा अपने शासकीय रूप में किए गए कार्यों के लिए अब वे उच्चतम न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हो गए थे। इसी प्रकार इस न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र भी स्पष्ट कर दिया गया था तथा उसे कलकत्ता के सभी निवासियों पर अधिकार दे दिया गया तथा यह भी आदेश दिया गया कि प्रतिवादी का निजी कानून लागू किया जाएगा। अधिनियम में यह आज्ञा थी कि उच्चतम न्यायालय को अपनी आज्ञाएँ तथा आदेश लागू करते समय भारतीयों के धार्मिक तथा सामाजिक रीति-रिवाजों का ध्यान रखना चाहिए तथा सरकार को भी नियम तथा विनियम बनाते समय इनका ध्यान रखना चाहिए। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था थी कि प्रान्तीय न्यायालयों से अपील, सपरिषद् गवर्नर-जनरल के पास जा सकती थी। केवल 5000 तथा इससे अधिक के मामलों में यह अपील इंग्लैंड में सपरिषद् सम्राट तक जा सकती थी। इसमें यह भी कहा गया था कि जो नियम तथा विनियम गवर्नर-जनरल तथा उसकी परिषद् बनाए, उसे उच्चतम न्यायालय के पास पंजीकृत करना आवश्यक नहीं। सम्भवतः इसका उद्देश्य यह था कि वे नियम अथवा अधिनियम जो इंग्लैण्ड के कानूनों के विरुद्ध होंगे वे स्वीकार नहीं किए जायेंगे।

इस प्रकार इस अधिनियम से रेग्यूलेटिंग एक्ट में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए और इस अधिनियम में यह स्पष्ट था कि सरकार को सुदृढ़ किया जाए।

**बोध प्रश्न**

1. 1773 का रेग्यूलेटिंग एक्ट का वर्णन कीजिए?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

2. 1781 का संशोधनात्मक अधिनियम का वर्णन कीजिए?

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

..........................................................................................................

NOTES

## 10.5 पिट्स इण्डिया एक्ट (1784) (Pitt's India Act)

1772 तथा 1781 में कम्पनी के मामलों की छानबीन करने के लिए दोनों, एक प्रवर समिति और एक गुप्त समिति नियुक्त की गईं। प्रवर समिति ने उच्चतम न्यायालय तथा बंगाल परिषद् के आपसी सम्बन्धों के विषय में और गुप्त समिति ने मराठा युद्ध के कारणों की जाँच की। भारी-भरकम रिपोर्टों का कम्पनी के आलोचकों ने संसद के वाद-विवाद में खुलकर प्रयोग किया। संसद का कम्पनी के मामलों में हस्तक्षेप करना उस समय और भी आवश्यक हो गया जब मराठा युद्ध के कारण कम्पनी की वित्तीय कठिनाइयाँ बढ़ गईं और उसने 10 लाख पाउण्ड का एक और ऋण माँगा। गुप्त समिति के अध्यक्ष डंडास द्वारा प्रस्तुत विधेयक अस्वीकार कर दिया गया। इस पर फाक्स ने India Bill प्रस्तुत किया। वास्तव में यह बिल बर्क और फिलिप फ्रांसिस ने ही तैयार किया था। इसके अनुसार कम्पनी की राजनैतिक तथा सैनिक शक्ति सात आयुक्तों के बोर्ड को सौंप दी जानी थी और व्यापारिक कार्य उनके अधीनस्थ नौ उपनिदेशकों को। यदि यह बिल पारित हो गया तो कम्पनी एक राजनैतिक शक्ति के रूप में समाप्त हो जाती। यह बिल हाउस ऑफ कॉमन्स में पारित हो गया, परन्तु हाउस ऑफ लार्ड्स में बिल पारित नहीं हो सका और लार्ड नार्थ तथा फाक्स की मिली-जुली सरकार को त्याग-पत्र देना पड़ा। यह पहला और अन्तिम अवसर था जबकि एक अंग्रेजी सरकार भारतीय मामले पर टूट गई। जनवरी 1784 में पिट प्रधानमंत्री बना। उसने एक नया विधेयक प्रस्तुत किया। दूसरा पठन भी हो गया परन्तु शीघ्र ही मन्त्रिमण्डल टूट गया। नई संसद मई 1784 में गठित हुई। वही पुराना जनवरी की संसद वाला विधेयक कामन्स सभा में जुलाई 1784 में और लार्ड्स में अगस्त माह में पारित हुआ। फाक्स का यह कथन था कि उसका बिल अधिक उत्तम था। पिट ने एक और सावधानी प्रयोग की थी कि इस विधेयक के लिए कम्पनी की स्वीकृति पहले ले ली थी और इस प्रकार विधेयक के विरोध को पहले ही समाप्त कर दिया था। वास्तव में फाक्स तथा पिट के विधेयक लगभग एक ही प्रकार के थे। भिन्नता केवल इस बात में थी कि फाक्स के बिल से कम्पनी संरक्षण को समाप्त कर दिया गया था, परन्तु इसमें उसे जारी रखा गया। पिट ने स्वयं भी इस विषय में यों कहा था कि "फाक्स के विधेयक से व्यक्तियों को स्थायित्व मिलना था। मेरे विधेयक से एक प्रणाली को स्थायित्व मिला।"

**अधिनियम की धाराएँ -**

(1) इस एक्ट के द्वारा बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल की स्थापना की गई। इस बोर्ड को भारत में अंग्रेजी नियंत्रण वाले क्षेत्रों पर पूरा नियंत्रण दे दिया गया। अब संचालकों द्वारा भेजे जाने वाले समस्त पत्र बोर्ड ऑफ कंट्रोल के माध्यम से ही भेजे जा सकते थे, परन्तु बोर्ड ऑफ कंट्रोल बिना संचालकों की अनुमति के भी पत्र भेज सकता था।

(2) इसके द्वारा कोर्ट ऑफ प्रोपराइटर्स के अधिकारों एवं शक्तियों को बहुत कम कर दिया गया।

(3) अब भारत के गवर्नर जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या तीन कर दी गई।

(4) गवर्नर जनरल की नियुक्ति संचालक करते थे, परन्तु उसे बुलाने का अधिकार संचालकों के साथ बोर्ड ऑफ कंट्रोल के माध्यम से राजा को मिल गया।

(5) अब मुंबई तथा चैन्नई सरकारें पूर्णतः बंगाल के अधीन हो गईं।

(6) गवर्नर जनरल को बिना बोर्ड ऑफ कंट्रोल की अनुमति के किसी भी भारतीय राजा से युद्ध या संधि नहीं कर सकते थे।

(7) यही वह एक्ट है जिसमें यह घोषणा की गई थी कि "भारत में राज्य विस्तार और विजय की नीति का अनुसरण इस राष्ट्र की नीति, प्रतिष्ठा के खिलाफ है।"

(8) भारत में नौकरियाँ संचालकों के हाथों में ही रहीं।



## 1786 का अधिनियम
**(The Act of 1786)**

पिट्स ने 1786 में एक अधिनियम संसद के सम्मुख इस भावना से रखा ताकि कॉर्नवालिस को भारत के गवर्नर-जनरल का पद स्वीकार करने के लिए मना लिया जाए। वह गवर्नर-जनरल तथा मुख्य सेनापति (Commander-in-Chief) दोनों की शक्तियाँ लेना चाहता था। नये अधिनियम के अनुसार यह सब स्वीकार हो गया तथा उसे विशेष अवस्था में अपनी परिषद् के निर्णयों को रद्द करने तथा अपने निर्णय लागू करने का अधिकार भी दे दिया गया।

## 1793 का चार्टर एक्ट
**(The Charter Act of 1793)**

कम्पनी के व्यापारिक अधिकारों को और 20 वर्ष के लिए बढ़ा दिया गया। अपनी परिषद के निर्णयों को रद्द करने की जो शक्ति लार्ड कार्नवालिस को दी गई थी वह आने वाले गवर्नर-जनरलों तथा गवर्नरों को भी दे दी गई। गवर्नर-जनरल का मुंबई तथा चैन्नई की प्रेजिडेन्सियों पर अधिकार स्पष्ट कर दिया गया। यदि गवर्नर-जनरल बंगाल से बाहर जाता था तो उसे अपनी परिषद् के असैनिक सदस्यों में से किसी एक को उपप्रधान नियुक्त करना होता था ताकि वह उसके स्थान पर कार्य कर सके। जब वह मद्रास अथवा मुंबई जाता था तो उसे स्थानीय प्रशासन में स्थानीय गवर्नर को प्रत्यादिष्ट करने का अधिकार दिया गया। मुख्य सेनापति को गनर्वर-जनरल की परिषद की स्वतः ही सदस्य होने का अधिकार नहीं था। गृह सरकार के नियंत्रण बोर्ड में एक आयुक्त इसका अध्यक्ष बना दिया गया। इसके दो कनिष्ठ सदस्य अब सम्राट की प्रिवी काउंसिल के सदस्य होने आवश्यक नहीं थे। इन सभी सदस्यों को भारतीय कोष से वेतन मिलता था। यह परम्परा 1919 तक चलती रही।

## 1813 ई. का आदेश-पत्र
**(Company's Charter Act of 1813)**

इस आदेश-पत्र की धाराएँ निम्नलिखित थीं :

(a) यह निश्चित कर दिया गया कि भारतीय अंग्रेजी राज्य की सम्प्रभुता ब्रिटेन के सम्राट में निहित है।

(b) भारत से व्यापार करने का कम्पनी का एकाधिपत्य समाप्त कर दिया गया और सभी अंग्रेज व्यापारियों को भारत से व्यापार करने की आज्ञा दे दी गयी।

(c) कम्पनी का चीन से अफीम और चाय के व्यापार का एकाधिपत्य सुरक्षित रहा।

(d) ईसाई धर्म-प्रचारकों को आज्ञा प्राप्त करने भारत में धर्म-प्रचार के लिए आने की सुविधा प्राप्त हो गयी।

(e) कम्पनी की आय में से भारतीयों की शिक्षा के लिए प्रति वर्ष एक लाख रुपया व्यय करने की व्यवस्था की गयी।

इस आदेश-पत्र द्वारा भारत में कम्पनी के शासन पर ब्रिटिश-संसद और राजा के अधिकार को मान्यता दी गयी। प्रथम बार कम्पनी को भारतीयों की शिक्षा का उत्तरदायित्व सौंपा गया। सभी अंग्रेजों को भारत से व्यापार करने की आज्ञा देने से भारत के आर्थिक शोषण में वृद्धि हुई। औद्योगिक क्रान्ति के कारण इंग्लैण्ड के उद्योगों की जो प्रगति हो रही थी उनके लिए कच्चे माल की आवश्यकता थी और बने हुए माल के लिए बाजार की आवश्यकता थी। इसी कारण यह सुविधा अंग्रेज व्यापारियों को दी गयी थी।

## 1833 ई. का आदेश-पत्र
**(Company's Charter Act of 1833)**

इस आदेश-पत्र की शर्तें निम्नलिखित शर्तें थीं :

(a) चीन से व्यापार करने का कम्पनी का एकाधिपत्य समाप्त कर दिया गया।

(b) गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद को सम्पूर्ण भारत के लिए कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया जिससे प्रान्तों के हाथों से विधि-निर्माण की शक्ति जाती रही।

(c) गवर्नर-जनरल की परिषद (Council) में एक चौथा सदस्य विधि-विशेषज्ञ के रूप में बढ़ा दिया गया।

(d) अंग्रेजों को भारत में भूमि खरीदने का अधिकार दे दिया गया।

(e) यह घोषणा की गयी कि सरकारी सेवाओं में प्रत्येक व्यक्ति योग्यतानुसार स्थान प्राप्त कर सकेगा।

(f) आगरा व पश्चिमी अवध को सम्मिलित करके एक नवीन प्रान्त 'उत्तर-पश्चिम प्रान्त' की स्थापना की गयी।

इस आदेश-पत्र द्वारा केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाया गया और अंग्रेजों को भारत आने और यहाँ बसने की आज्ञा प्रदान की गयी।

### 1853 ई. का आदेश-पत्र
### (Company's Charter Act of 1853)

इस आदेश-पत्र की शर्तें निम्नलिखित थीं :

(a) ब्रिटिश संसद को यह अधिकार प्राप्त हो गया कि वह किसी भी समय अपनी इच्छानुसार कम्पनी से भारत का शासन अपने हाथों में ले सकती थी।

(b) कम्पनी के डायरेक्टरों की संख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गयी जिनमें से 6 की नियुक्ति ब्रिटेन के राजा द्वारा की जायेगी। गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की परिषदों के सदस्यों की नियुक्ति भी बिना ब्रिटिश क्राउन की सहमति के नहीं हो सकती थी।

(c) सरकारी सेवाओं के लिए परीक्षा की व्यवस्था की गयी।

(d) बंगाल के लिए पृथक् लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर की नियुक्ति की गयी।

(e) गवर्नर जनरल की परिषद में कानून-निर्माण में सहायता देने के लिए 6 नवीन सदस्यों की नियुक्ति की गयी, यद्यपि गवर्नर-जनरल उन सभी की राय को ठुकराने का अधिकार रखता था।

यह आदेश-पत्र केवल दो बातों के कारण महत्वपूर्ण माना गया है। प्रथम, इसके द्वारा ब्रिटिश-संसद को किसी भी समय कम्पनी के शासन को भारत से समाप्त करने का अधिकार मिल गया। द्वितीय, इसके द्वारा पहली बार भारत से, बहुत सीमित अधिकार पर, कम से कम केन्द्र में, व्यवस्थापिका-सभा की स्थापना की गयी।

1853 ई. के आदेश-पत्र से भारत के संवैधानिक विकास का प्रथम चरण समाप्त हो जाता है। इस समय में विभिन्न आदेश-पत्र द्वारा ब्रिटिश संसद ने न केवल भारतीय शासन के लिए कम्पनी को आदेश प्रदान किये थे अपितु कम्पनी के संचालकों संबंधी नियम भी बनाए थे, परन्तु उसने भारत के शासन का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व ग्रहण नहीं किया था। 1857 ई. में भारत में एक विप्लव हुआ जिसे 1857 ई. के विद्रोह या प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के नाम से पुकारा गया। इसके पश्चात् 1858 ई. के कानून द्वारा भारत में कम्पनी का शासन समाप्त कर दिया गया और यह शासन ब्रिटिश क्राउन को प्राप्त हो गया।

## 10.6 भारत शासन को अधिक अच्छा बनाने के लिए 1858 का अधिनियम (The Act for the Better Government of India)

1853 के एक्ट में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि कम्पनी को भारतीय प्रदेश तथा राजस्व को क्राउन की ओर से प्रन्यास के रूप में रखना था और किसी निश्चित अवधि के लिए नहीं अपितु "जब तक संसद न चाहे तब तक" इस प्रकार क्राउन जब चाहे कम्पनी से यह प्रशासन अपने हाथ में ले सकता था। 1857-58 की घटनाओं ने इस माँग को, कि व्यापारिक कम्पनी को राजनैतिक शक्ति के रूप में जारी नहीं रखना चाहिए और भी शक्ति प्रदान की। लार्ड पामर्स्टन ने फरवरी 1858 में भारत शासन को उत्तम बनाने का विधेयक जब संसद के सम्मुख रखते हुए स्पष्ट किया कि "राजनैतिक प्रणाली का यह नियम है कि सभी प्रशासनिक कार्यों के लिए मंत्रियों का उत्तरदायित्व होना चाहिए परन्तु इस मामले में भारत सरकार का मुख्य उत्तरदायित्व एक ऐसी संस्था

को दिया हुआ है जो संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं तथा जो क्राउन द्वारा नियुक्त नहीं की गई है अपितु उन लोगों द्वारा निर्वाचित है जिनका भारत के साथ कोई संबंध नहीं, केवल यही है कि उसके पास भारतीय कम्पनी के अंश हैं।" अतएव कम्पनी का पहला दोष यह था कि वह पूर्णतया अनुत्तरदायी थी। एक और दोष जो स्पष्ट किया गया वह था इस दोहरे प्रशासन का भद्दा, जटिल तथा विवेक-रहित होना। पामर्स्टन का विधेयक दूसरे पठन में भी पारित हो गया परन्तु इससे पूर्व कि वह कानून बने, पामर्स्टन का मन्त्रिमण्डल टूट गया और उसके पश्चात् लार्ड डरबी प्रधानमंत्री बने। उसके संग डिजरेली (Chancellor of Exchequer) बने। उन्होंने एक नया विधेयक रखा जिसकी लार्ड पामर्स्टन ने बहुत खिल्ली उड़ाई, परन्तु यह विधेयक पारित हो गया और 2 अगस्त, 1858 को इस पर सम्राज्ञी ने हस्ताक्षर कर दिए।

**बोध प्रश्न**

1. 1813 ई. के आदेश-पत्र पर टिप्पणी लिखिए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

2. 1853 ई. के आदेश-पत्र पर टिप्पणी लिखिए।

.....................................................................................................

.....................................................................................................

.....................................................................................................

## 10.7 1858 ई. का आदेश-पत्र (Company's Charter Act of 1858)

इस कानून की शर्तें निम्नलिखित थीं :

(a) इसके द्वारा भारत का शासन ब्रिटेन की संसद को दे दिया गया।

(b) डायरेक्टरों की सभा और अधिकार-सभा को समाप्त कर दिया गया तथा उनके समस्त अधिकार भारत-सचिव को दे दिये गये। भारत-सचिव आवश्यक रूप से ब्रिटिश संसद और ब्रिटिश मंत्रिमंडल का सदस्य होता था।

(c) भारत-सचिव की सहायता के लिए 15 सदस्यों की एक सभा-भारत परिषद् की स्थापना की गयी। इसके 7 सदस्यों की नियुक्ति करने का अधिकार ब्रिटेन के क्राउन को तथा शेष सदस्यों के चयन का अधिकार कम्पनी के डायरेक्टरों को दिया गया परन्तु प्रत्येक स्थिति में यह आवश्यक था कि इसके आधे सदस्य ऐसे हों जो कम से कम दस वर्ष तक भारत में सेवा-कार्य कर चुके हों। शासन के इस भाग को गृह-सरकार का नाम दिया गया।

(d) अर्थव्यवस्था और अखिल भारतीय सेवाओं के विषय में भारत-सचिव भारत-परिषद् की राय को मानने के लिए बाध्य था। अन्य सभी विषयों पर वह उसकी राय को ठुकरा सकता था। उसे अपने कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट ब्रिटिश-संसद के सम्मुख प्रस्तुत करनी पड़ती थी।

**1858 के एक्ट का मूल्यांकन–** यह ठीक ही कहा गया है कि क्राउन द्वारा 1858 में भारतीय प्रशासन को ले लेना एक औपचारिकता मात्र ही थी यथार्थता नहीं। क्राउन कम्पनी पर अपना अधिकार-क्षेत्र बढ़ाता चला जा रहा था। मुख्यतः वे नियम जिनके द्वारा भारत का प्रशासन 1858 के अधिनियम से पूर्व चलता था, ब्रिटिश संसद द्वारा ही बनाए जाते थे। जैसा कि जॉन स्टूअर्ट मिल के भारत संबंधी याचना पत्र में निर्देशित किया गया था कि "अंग्रेजी सरकार के पास बहुत समय से निर्णायक शक्ति थी और भारत में जो भी कुछ किया गया अथवा नहीं किया गया उसका उत्तरदायित्व उस पर ही है।" गवर्नर-जनरल इस बात को स्पष्ट रूप से जानता था कि यद्यपि कहने को वह कम्पनी के नियंत्रण बोर्ड का सेवक है परन्तु वास्तव में वह ब्रिटिश मंत्रिमंडल और भारतीय मंत्री जो कि नियंत्रण बोर्ड का अध्यक्ष होता था, उसके प्रति उत्तरदायी है और उनके द्वारा अंग्रेजी संसद के प्रति।

1773 के रेग्यूलेटिंग एक्ट से आरम्भ करके, कानूनों की एक लड़ी द्वारा (1784, 1793, 1813, 1833 और 1853) डाइरेक्टर्स की शक्ति कम होती चली गई थी और अब केवल नाम मात्र ही थी।

NOTES

1813 और 1833 के चार्टर एक्ट में यह स्पष्ट कर दिया गया था कि जो प्रदेश कम्पनी ने जीते हैं उन सभी पर क्राउन की प्रभुसत्ता है और 1853 में पुनः यह कह दिया गया था कि कम्पनी इन भारतीय प्रदेशों तथा राजस्व को क्राउन की आज्ञा तक, प्रन्यास के रूप में, सम्भाले हुए है। डाइरेक्टरों की संख्या 24 से 18 कर दी गई, जिनमें 6 क्राउन द्वारा मनोनीत किए जाते थे और सबसे प्रमुख बात यह थी कि कम्पनी की संरक्षण की शक्ति समाप्त कर दी गई थी। इस प्रकार कम्पनी ने सभी अभिप्राय तथा प्रयोजनों के लिए प्रशासन में क्षमताशाली भूमिका निभानी बन्द कर दी थी और जैसे रेम्जे म्यूर ने कहा कि "वह एक अनावश्यक पाँचवें पहिए के समान थी" अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि कम्पनी एक राजनैतिक सत्ता के रूप में बहुत पहले ही मर चुकी थी केवल उसकी खाल को जीवित-सा मानकर सम्भाला हुआ था।

## 10.8 सारांश

यह विरोधाभास-सा प्रतीत होता है किन्तु है सत्य कि संसद का भारत पर नियंत्रण उसी दिन से कम हो गया जिस समय से उसे यह मिला। यह स्पष्ट है कि जब शक्ति नियंत्रण तथा डाइरेक्टरों के बोर्डों के पास थी तो संसद अपना प्रभुत्व दृढ़तापूर्वक स्वीकार करवाती थी, परन्तु जब इन दोनों बोर्डों का स्थान, भारत राज्य सचिव जो संसद के प्रति उत्तरदायी था, ने ले लिया तो संसद को संतोष हो गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि जो प्राप्त करना चाहती थी वह प्राप्त होने पर उसने भारतीय प्रशासन पर निरन्तर नियंत्रण तथा आलोचना बन्द कर दी। दूसरी बात यह थी कि भारतीय राज्य सचिव, नियंत्रण बोर्ड के सदस्यों से कहीं अधिक योग्य व्यक्ति थे। इसके अतिरिक्त बिजली के तार द्वारा सन्देश भेजना सम्भव हो गया था और भारतीय समाचार इंग्लैण्ड में शीघ्र ही पहुँच जाते थे और संसद के भारत राज्य सचिव भारतीय प्रशासन तथा मामलों को पहले से कहीं अधिक दक्ष रूप से चलाते थे और संसद को इनके कार्य में हस्तक्षेप करने तथा निदेशन देने का अवसर ही नहीं मिलता था। इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि 1857 से 1915 तक अंग्रेजी राजनीतिज्ञ तथा दलों के पास अपना बहुत-सा कार्य था और उन्हें न तो भारतीय समस्याओं को समझने की इच्छा थी और न उनके पास समय ही था। भारतीय समस्याएँ इतनी विस्तृत तथा जटिल थीं कि उन्हें एक मनबहलावे के रूप में भी समझना कठिन था क्योंकि केवल सबसे प्रखर बुद्धि वाले लोग ही भारतीय लोक सेवा में भरती होते थे और वे भारतीय प्रशासन को दक्षतापूर्वक चलाते थे। यह तो बहुत अनुदार तथा अनावश्यक बात थी कि उनके काम की आलोचना की जाए। इस प्रकार एक यह सिद्धान्त बन गया कि स्थानीय व्यक्ति पर विश्वास किया जाए, उसे समर्थन दिया जाए और उसे अकेला छोड़ दिया जाए। राज्य सचिव, वाइसराय को समर्थन देते थे। ये वाइसराय गवर्नरों को और वे और आगे पदाधिकारियों को। संसद ने यह अनुभव किया कि भारतीय मामलों में हस्तक्षेप करने से बहुत लाभ नहीं होगा। इस प्रकार संसद का भारतीय मामलों में उस समय से जब से इसने समस्त नियंत्रण संभाल लिया, रुचि बहुत कम हो गई।

## 10.9 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. 'रेग्यूलेटिंग एक्ट' से आप क्या समझते हो? विस्तृत में समझाइए।
2. पिट्स इण्डिया एक्ट (1784) की विस्तृत जानकारी दीजिए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. रेग्यूलेटिंग एक्ट (1773) पर टिप्पणी लिखिए।
2. रेग्यूलेटिंग एक्ट की धाराएँ बताइए।
3. रेग्यूलेटिंग एक्ट की कमियाँ बताइए।
4. 'पिट्स इण्डिया एक्ट' पर टिप्पणी लिखिए।
5. 'चार्टर एक्ट (1793)' पर टिप्पणी लिखिए।

**NOTES**

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. रेग्यूलेटिंग एक्ट कब पारित किया गया -

   (A) 1773 में (B) 1755 में (C) 1763 (D) 1783 में।

2. 1784 में कौन-सा एक्ट पारित हुआ -

   (A) रेग्यूलेटिंग एक्ट (B) पिट्स इण्डिया एक्ट

   (C) संशोधनात्मक एक्ट (D) इनमें से कोई नहीं।

3. चार्टर एक्ट कब पारित हुआ -

   (A) 1780 में (B) 1755 में (C) 1793 में (D) 1750 में।

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (C)

## 10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

# अध्याय-11 न्यायिक व प्रशासनिक सुधार : हेस्टिंग्स व कार्नवालिस

## (JUDICIAL AND ADMINISTRATIVE REFORMS : HASTINGS AND CORNWALLIS)

**इकाई की रूपरेखा**

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 वारेन हेस्टिंग्स का प्रशासन एवं सुधार
11.3 हेस्टिंग्स का न्यायिक व्यवस्था में सुधार
11.4 वारेन हेस्टिंग्स की विदेश-नीति
11.5 अंग्रेजों और मराठों का प्रथम युद्ध (1775-82)
11.6 लार्ड कार्नवालिस का प्रशासन
11.7 कार्नवालिस का मूल्यांकन
11.8 सारांश
11.9 अभ्सास प्रश्न
11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 11.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. न्यायिक व प्रशासनिक सुधार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. वारेन हेस्टिंग्स की विदेश नीति का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. लार्ड कार्नवालिस के प्रशासन का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 11.1 प्रस्तावना

### वारेन हेस्टिंग्स (1772-1785)

बंगाल में द्वैध शासन के दौरान कंपनी की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी थी, क्योंकि कंपनी के कर्मचारियों ने अपना व्यक्तिगत लाभ अधिक कमाया था और कंपनी के लिए कम। कंपनी के संचालकों को भी यह विश्वास हो गया था कि राजस्व का बहुत बड़ा हिस्सा कर्मचारियों द्वारा अपने हित में उपयोग कर लिया जाता है। यही कारण था कि उन्होंने 1771 में बंगाल कौंसिल के अध्यक्ष को यह आदेश दिया कि वे स्वयं दीवानी के रूप में कार्य करें। इसके अलावा दीवानी वसूली का कार्य कंपनी कर्मचारियों द्वारा ही किया जाए। इसके पीछे संचालक समिति का उद्देश्य था कि राजस्व के हर संभव लाभ का फायदा उठाया जाए। कंपनी संचालकों ने वारेन हेस्टिंग्स को यह भी आदेश दिया कि दोनों दीवानों को बंदी बनाकर उन पर मुकदमा चलाया जाए।

इस स्थिति में वारेन हेस्टिंग्स का एक मुश्किल कार्यकाल - 1772-1792-प्रारम्भ हुआ। वारेन हेस्टिंग्स के समय कंपनी और बंगाल की स्थिति के संबंध में **एल.पी. शर्मा** लिखते हैं - "वारेन हेस्टिंग्स का कार्यकाल भारत में अंग्रेज कंपनी के इतिहास में अत्यन्त कठिन था। 1772 ई. में उसने जब कंपनी के गवर्नर के रूप में कार्य आरम्भ

किया तब बंगाल, बिहार और उड़ीसा जैसे सम्पन्न सूबों की दीवानी प्राप्त करने के बावजूद अंग्रेज कंपनी दिवालिए की स्थिति में थी। उसके कर्मचारी भ्रष्ट हो चुके थे। वे कंपनी के व्यापार की जगह व्यक्तिगत व्यापार की ओर अधिक ध्यान देते थे। इन सूबों के कृषि, व्यापार और उद्योग नष्ट हो चुके थे। किसानों के साथ प्रायः दासों जैसा व्यवहार होता था। आन्तरिक व्यापार पर प्रायः कंपनी के कर्मचारियों का एकाधिकार था जिससे वे कारीगरों को बाजार मूल्य से 15 से 40 प्रतिशत तक कम करके उनकी वस्तुओं का मूल्य देते थे। बंगाल के नवाब के साथ कंपनी के संबंध अव्यावहारिक और अस्पष्ट थे।"

वारेन हेस्टिंग्स के कार्यकाल में 1772 से ही कंपनी ने दीवानी के प्रशासनिक कार्यों का उत्तरदायित्व संभालने का अभिप्राय यह था कि एक ओर कंपनी भूराजस्व और न्याय व्यवस्था का प्रबंध करे और दूसरी ओर अपने कर्मचारियों के निजी व्यापार और घूसखोरी के उन विशिष्ट अधिकारों पर प्रतिबंध लगाए जो 1772 ई. के पूर्व कर्मचारी सामान्य समझते थे। वारेन हेस्टिंग्स के द्वारा किए गए प्रशासनिक सुधारों का यही उद्देश्य था कि कंपनी को इस कार्य के योग्य बनाना ही था।

**इंग्लैण्ड की संसद द्वारा कंपनी पर नियंत्रण के प्रयास** - वारेन हेस्टिंग्स के प्रशासन के प्रारम्भ में ही इंग्लैण्ड की संसद ने कंपनी पर अपना नियंत्रण स्थापित करके प्रबंध निकाय में परिवर्तन का प्रयास किया और इसके लिए दो एक्ट पारित किए - रेग्यूलेटिंग एक्ट और पिट्स इंडिया एक्ट। कंपनी का संचालन एक संचालक समिति के द्वारा होता था। ये संचालक कोर्ट ऑफ प्रोपराइटर्स द्वारा प्रतिवर्ष चुने जाते थे। 1765 में कंपनी के द्वारा बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के बाद कंपनी के कर्मचारियों द्वारा व्यक्तिगत लाभ अधिक कमाया गया और वे लोग इंग्लैण्ड में जाकर वहाँ की राजनीति में हस्तक्षेप करते थे। 1772 में कंपनी ने इंग्लैण्ड की सरकार से ऋण माँगा। सरकार कंपनी पर हस्तक्षेप के बारे में सोच रही थी, उसने इस अवसर का फायदा उठाया और इंग्लैण्ड की संसद ने रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया। यह एक्ट 1773 में पास किया और 1774 से यह लागू हो गया।

इस एक्ट का उद्देश्य भारत में कंपनी पर संसद का नियंत्रण स्थापित करना और कंपनी की संचालन समिति के गठन संबंध परिवर्तन करना। इसके अलावा कंपनी का व्यापारिक स्वरूप समाप्त करके राजनैतिक स्वरूप को स्थापित करना।

## 11.2 वारेन हेस्टिंग्स का प्रशासन एवं सुधार

वारेन हेस्टिंग्स का कार्यकाल भारत में आंतरिक सुधारों के द्वारा प्रारम्भ हुआ। उसने अपने 1772 से 1785 के बीच में कई सुधार कार्य किए। उसके कार्यों से भारत में कंपनी का राज सुव्यवस्थित होने लगा था। उसने प्रशासन से संबंधित निम्न कार्य किए -

**द्वैधशासन की समाप्ति** - वारेन हेस्टिंग्स को भारत का गवर्नर बनाकर जब भेजा गया तो इस अपेक्षा के साथ कि वह दीवानी के अधिकारों को प्रत्यक्ष रूप से अपने हाथों में ले लेगा। उसे यह आदेश दिए गए थे कि वह राजस्व अधिकारियों - मुहम्मद रजा खाँ और शिताबराय को हटाकर उन पर मुकदमा चलाये। उसने इन लोगों को उनके पदों से हटा दिया और उन पर नन्दकुमार की अदालत में मुकदमा चलाया गया। इसके साथ ही उसने दीवानी के सारे अधिकार अपने हाथ में ले लिए और असैनिक न्याय को भी अपने हाथों में ले लिया। उसका यह मानना था कि दीवानी और निजामत के अधिकारों को अलग-अलग रखना संभव नहीं अतः उसने बंगाल नवाब से निजामत के अधिकारों को अपने अधिकार में ले लिया और दीवानी को भी। उसके इस कार्य से बंगाल, उड़ीसा और बिहार का प्रशासन पूर्णतः उसके हाथों में आ गया। इस तरह उसने क्लाइव की द्वैध शासन प्रणाली को समाप्त कर दिया।

### लगान व्यवस्था में सुधार–

अंग्रेजों के पास तीन प्रकार की भूमि थी, जिस पर उन्हें लगान प्राप्त होता था। ये भूमि इस प्रकार थी-

- मिदनापुर, बर्दवान और चटगाँव के जिले थे जो कि 1760 में मीर कासिम से कंपनी को प्राप्त हुए थे। इनका पूरा लगान कंपनी को ही प्राप्त होता था।
- कोलकाता पर अंग्रेजों का अधिकार 1698 में हो गया था। इसके साथ ही 24 परगने का जिला मीर जाफर से 1757 में प्राप्त हुआ था। इनका वार्षिक लगान कंपनी बंगाल के नवाब को देती थी।

- बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबे 1765 में मुगल बादशाह से मिले थे। इनकी दीवानी कंपनी को प्राप्त हुई थी। इनके बदले कंपनी 26 लाख रुपए वार्षिक नवाब को देती थी।

वारेन हेस्टिंग्स के समय कंपनी के सामने लगान की जो समस्या थी वह इस तीसरी प्रकार की भूमि के संबंध में थी, क्योंकि क्लाइव के द्वैध शासन के द्वारा प्रशासन का उत्तरदायित्व कंपनी पर नहीं था, परन्तु वारेन हेस्टिंग्स ने प्रशासन को अपने हाथों में ले लिया था। यही कारण था कि अब लगान व्यवस्था को देखने का काम भी कंपनी के पास आ गया था। वारेन हेस्टिंग्स ने लगान में सुधार करने के लिए एक समिति गठित की और उसकी सिफारिशों के आधार पर उसने निम्न सुधार किए -

- अंग्रेज शासिक प्रत्येक जिले के लगान की पूरी सही जानकारी एकत्र की गई।
- लगान वाली भूमि सबसे अधिक लगान देने वाले को पाँच वर्ष के लिए दी जाने लगी।
- इसमें यह भी निश्चय किया गया कि जमींदार किसानों को निश्चित पट्टे देंगे जिसमें वह किसानों को यह बताएँगे कि उन्हें किस मात्रा में लगान अदा करना है।
- कंपनी द्वारा सरकारी खजाना मुर्शिदाबाद से हटाकर कोलकाता लाया गया।
- अब प्रबन्धकों को कलेक्टर का पद दिया गया। कलेक्टर को ही लगान वसूल करना होता था। उनकी सहायता के लिए प्रत्येक जिले में नायब दीवान नियुक्त किए गए और कलेक्टरों को भी अब जिलों में ही रहना पड़ता था।
- सारे जिलों को छह बड़े संभागों में संगठित किया गया। ये छह संभाग थे- कोलकाता, बर्दवान, ढाका, मुर्शिदाबाद, दीनाजपुर और पटना। इन संभागों में लगान की व्यवस्था के लिए एक लगान परिषद् बनाई गई। इस परिषद् की सहायता के लिए एक भारतीय दीवान को नियुक्त किया गया।
- कंपनी के सम्पूर्ण लगान की देखभाल के लिए एक भारतीय अधिकारी 'राय रायन' नियुक्त किया गया। इस पद पर पहली नियुक्ति में दुर्लभराय का पुत्र राजा बल्लभ था। उसे पाँच हजार रुपए प्रतिमाह वेतन दिया जाता था।
- एक आय लेखा सचिव भी रखा गया था।
- हर संभाग की लगान परिषद् के प्रधान का 3000 रुपये प्रतिमाह देना निश्चित किया गया।

1774 ई. में रेग्यूलेटिंग एक्ट बन चुका था। इसके बाद हेस्टिंग्स ने अपनी लगान-व्यवस्था की रिपोर्ट अपनी नवीन कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत की। इसके साथ ही कुछ नवीन सुझाव भी रखे, परन्तु कौंसिल ने उसके सुझावों को स्वीकार नहीं किया। कौंसिल के एक सदस्य फ्रान्सिस ने अपनी एक अलग योजना प्रस्तुत की जिसके अनुसार वह जमींदारों को हमेशा के लिए भूमि देने के पक्ष में था। हेस्टिंग्स ने उस योजना में कुछ परिवर्तन चाहा, परन्तु कौंसिल ने उसे स्वीकार नहीं किया। इसी बीच 1778 ई. में डायरेक्टरों के आदेश प्राप्त हुए कि जमींदारों के साथ वार्षिक समझौता किया जाए।

1780 ई. में हेस्टिंग्स ने एक नयी योजना बनाई। इस योजना के अनुसार डिवीजन की लगान-परिषदें समाप्त कर दीं और चार सदस्यों का एक नवीन लगान-बोर्ड स्थापित किया। उसकी सहायता के लिए एक दीवान की नियुक्ति की गई। लगान-बोर्ड के प्रत्येक सदस्य को वसूल किये हुए लगान में से 2 प्रतिशत देने की व्यवस्था की गई। खजाने की व्यवस्था भी इस लगान-बोर्ड को ही सौंप दी गई और 'राय रायन' को कम्पनी की उच्चतम कौंसिल के अधीन कर दिया गया। भारतीय कानूनगो पुनः नियुक्त किये गये और उन्हें लगान संबंधी वे सभी अधिकार दे दिये गये जो उन्हें पहले भी प्राप्त थे।

1786 ई. में हेस्टिंग्स के जाने के पश्चात उसके उपर्युक्त सुधारों में डायरेक्टरों के आदेशानुसार कुछ अन्य परिवर्तन किये गये। डिवीजन जिलों में बाँट दिये गये, कलेक्टर पुनः नियुक्त किये गये, लगान-परिषद् का पुनर्गठन किया गया और एक नवीन अधिकारी मुख्य सारिस्तादार की नियुक्ति की गई।

**लगान संबंधी सुधारों की समीक्षा -** वारेन हेस्टिंग्स ने जो प्रारंभिक सुधार लागू किए उनका सबसे बड़ा दोष यह था कि सर्वाधिक लगान देने का वादा करने वाले व्यक्तियों को भूमि दी गई थी, जबकि किसानों के साथ कोई लगान निश्चित नहीं किया गया था और न कोई व्यवस्था की गई थी जिससे जमींदारों के विरुद्ध

उनके हितों की सुरक्षा हो पाती। 1778 ई. में डायरेक्टरों के आदेशानुसार जब यह भूमि प्रति वर्ष जमींदारों को दी जाने लगी तो उससे और भी अधिक हानि हुई। इस व्यवस्था का दूसरा मूल दोष यह था कि इसमें लगान वसूल करने वाले अधिकारियों को भी न्याय के अधिकार दिये गये थे। इसके अतिरिक्त लगान-व्यवस्था से अंग्रेज अधिकारियों का कोई विशेष संबंध नहीं था।



## 11.3 हेस्टिंग्स का न्यायिक व्यवस्था में सुधार

वारेन हेस्टिंग्स ने न्याय व्यवस्था में भी सुधार किए थे। इसके पहले न्याय का कार्य जमींदार किया करते थे। वारेन ने न्याय व्यवस्था में जो सुधार किए वो इस प्रकार थे -

- वारेन द्वारा प्रत्येक जिले में एक दीवानी और फौजदारी न्यायालय की स्थापना की गई। कलेक्टर दीवानी न्यायालय का प्रमुख होता था। 500 रुपए तक के मुकदमे इस अदालत में पेश किए जाते थे।
- फौजदारी अदालत में कंपनी की तरफ से नियुक्त एक भारतीय मौलवियों तथा मुफित्यों की मदद से न्याय करता था। फौजदारी अदालत को मृत्यु दण्ड और सम्पत्ति जब्त करने का अधिकार नहीं था।
- कोलकाता में एक सदर दीवानी अदालत और एक सदर फौजदारी अदालत की स्थापना की गई।
- जिले की दीवानी और फौजदारी अदालतों के निर्णय सदर अदालत में सुने जाते थे।
- दीवानी अदालतों में जातीय कानून अर्थात् हिन्दुओं के लिए हिन्दू कानून और मुसलमानों के लिए मुस्लिम कानून लागू किया जाता था, जबकि फौजदारी मुकदमों में मुस्लिम कानून लागू किया जाता था।
- न्यायाधीशों के वेतन निश्चित कर दिए गए और उनके उपहारों को लिए जाने पर रोक लगा दी गई।

न्याय की सुविधा के लिए कुछ नियम भी लागू किए गए -

- प्रत्येक अदालत को अपनी कार्यवाही को लिखित रूप में सुरक्षित रखना पड़ता था।
- मुकदमों के निर्णय का समय निश्चित कर दिया गया।
- अत्यधिक कठोर न्याय पर रोक लगा दी गई।
- कर्ज देने वाले के पास कर्जदार के खिलाफ बहुत अधिकार थे। अब इनको सीमित कर दिया गया।
- अधिकांश हिन्दू-मुस्लिम कानूनों को संग्रहीत करने का प्रयास किया गया।
- 10 रुपए से अधिक के झगड़ों को न्यायालय में लाने के लिए प्रोत्साहित किया गया।
- वारेन हेस्टिंग्स द्वारा किए गए उपर्युक्त सुधार न्याय व्यवस्था के क्षेत्र में अत्यधिक लाभदायक सिद्ध हुए। इतिहासकारों ने यह स्वीकार किया है कि वारेन हेस्टिंग्स ने भारत में निष्पक्ष न्याय की नींव डाली थी। रेग्यूलेटिंग एक्ट के लागू होने के बाद कोलकाता में उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई।

**व्यापारिक सुधार** - वारेन हेस्टिंग्स ने व्यापारिक सुधारों के लिए डायरेक्टरों से प्राप्त निर्देशों का पालन करते हुए निम्न सुधार किए -

- अब से दस्तक प्रथा को समाप्त कर दिया गया।
- उसने छोटी-छोटी कर चौकियों को समाप्त करके सिर्फ बड़ी चौकियाँ ही रहने दीं। ये चौकियाँ कोलकाता, हुगली, मुर्शिदाबाद, पटना और ढाका में ही रखी गईं।
- जिन वस्तुओं पर कंपनी का एकाधिकार था उन पर कर समाप्त कर दिया गया। जैसे- नमक, पान और तम्बाकू। शेष वस्तुओं पर भारतीय तथा अंग्रेज व्यापारियों का ढाई प्रतिशत कर देने की व्यवस्था की गई।

इन सुधारों के लागू होने पर व्यापारिक विकास हुआ। वस्तुएँ अब आसानी से बंगाल में आ सकती थीं। उसने कारीगरों की दशा सुधारने में भी सहयोग किया।

**वारेन हेस्टिंग्स और उसकी कौंसिल** - 1774 में रेग्यूलेटिंग एक्ट के आधार पर भारत में शासन कार्य आरम्भ किया गया। इस एक्ट की एक धारा के अनुसार अंग्रेज गवर्नर-जनरल की सहायता के लिए चार सदस्यों

की एक कौंसिल की स्थापना की गई। इसमें निर्णय बहुमत से लिया जाता था और गवर्नर-जनरल को उसी स्थिति में मत देने का अधिकार था जब कौंसिल के सदस्यों के मत बराबर-बराबर विभाजित हो जायें। इस प्रकार, यद्यपि गवर्नर-जनरल शासन का प्रधान था परन्तु सभी महत्वपूर्ण विषयों के संबंध में निर्णय लेने का अधिकार वस्तुतः कौंसिल को दिया गया। इससे हेस्टिंग्स और उसकी कौंसिल में गम्भीर मतभेद प्रारंभ हुआ, क्योंकि निर्णय कौंसिल के बहुमत पर निर्भर करता था।

हेस्टिंग्स और उसकी कौंसिल के सदस्यों में मतभेद का मुख्य कारण था- कौंसिल के तीन सदस्य- क्लेवरिंग, मौन्सन और फ्रांसिस-इंग्लैण्ड से ही यह धारणा बनाकर चले थे कि हेस्टिंग्स एक भ्रष्ट और अत्याचारी व्यक्ति था। इसके अतिरिक्त उन्हें भारत की वास्तविक परिस्थितियों का भी ज्ञान नहीं था। इस कारण उनके निर्णय आदर्श के आधार पर होते थे जबकि हेस्टिंग्स के निर्णय व्यावहारिक और कम्पनी के स्थायी स्वार्थों की पूर्ति के लक्ष्य से होते थे। ऐसी स्थिति में हेस्टिंग्स और कौंसिल में मतभेद होना स्वाभाविक था। बारवेल के अतिरिक्त कौंसिल के तीनों सदस्य हेस्टिंग्स के विरुद्ध थे। अतः उन्होंने हेस्टिंग्स के खिलाफ कार्य करना प्रारंभ किया और उस पर दोषारोपण भी किया तथा बहुत से ऐसे कार्य किए जिससे उसकी प्रतिष्ठा और सम्मान को ठेस पहुँचे। इस तरह के कार्य कुछ इस प्रकार थे--

- सबसे पहले उन्होंने इस बात पर झगड़ा किया कि हेस्टिंग्स ने उनका स्वागत उचित प्रकार से नहीं किया।
- हेस्टिंग्स पर दोष लगाने वालों का प्रोत्साहन दिया।
- उसकी आन्तरिक और विदेश-नीति में हस्तक्षेप किया।
- उन्होंने नवाब के संरक्षक के पद से मुन्नी बेगम को हटा दिया और उसके स्थान पर मुहम्मद रजा खाँ को नियुक्त किया।
- अवध में हेस्टिंग्स द्वारा नियुक्त अंग्रेज प्रतिनिधि को हटा दिया और एक नवीन प्रतिनिधि की नियुक्ति की।
- उन्होंने हेस्टिंग्स की इच्छा के विरुद्ध 1775 ई. में अवध के नवाब से एक नवीन संधि की जिसके द्वारा उससे अंग्रेजी सेना के व्यय के लिए अधिक धन लेकर, बनारस जिले उससे छीनकर और पिछले नवाब की विधवा स्त्रियों को पूर्ण खजाना देने के लिए बाध्य करके उसे इतना दुर्बल कर दिया गया कि अवध मराठों के आक्रमण को रोकने की स्थिति में न रहा।
- इसी प्रकार उन्होंने प्रथम मराठा-युद्ध के अवसर पर हेस्टिंग्स की इच्छा के विरुद्ध पुरन्दर की संधि की और कम्पनी की नीति को दो भागों में विभाजित कर दिया।
- उन्होंने रूहेला-युद्ध के लिए हेस्टिंग्स को दोषी ठहराया।
- नन्दकुमार को हेस्टिंग्स पर दोषारोपण के लिए प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार कौंसिल ने वो तमाम कार्य किए जो हेस्टिंग्स की विचारधारा और नीति के खिलाफ थे। यद्यपि प्रथम दो वर्षों - 1774-76 ई. में कौंसिल अपने बहुमत के बल पर अपनी इच्छानुसार कार्य करने में सफल रही तथापि हेस्टिंग्स शांति और तत्परता से शासन करता रहा। कौंसिल और हेस्टिंग्स का विवाद और मतभेद अधिकांशतः सिद्धांत स्तर तक सीमित रहा और कौंसिल ने प्रतिदिन के शासन में हस्तक्षेप न करके दूरदर्शिता का परिचय दिया। 1780 ई. में फ्रांसिस के निराश होकर इंग्लैण्ड वापस लौट जाने के पश्चात् हेस्टिंग्स पूर्ण स्वतंत्र हो गया।

**बोध प्रश्न**

1. वारेन हेस्टिंग्स का प्रशासन एवं सुधार का वर्णन कीजिए?

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

..............................................................................................

2. हेस्टिंग्स का न्यायिक व्यवस्था में सुधार का वर्णन कीजिए?

..........................................................................................

..........................................................................................

..........................................................................................

NOTES

## 11.4 वारेन हेस्टिंग्स की विदेश - नीति

भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की स्थापना का वास्तविक प्रारंभ वारेन हेस्टिंग्स के समय से होता है। इस तरह उसकी विदेश-नीति का मुख्य लक्ष्य अंग्रेज कम्पनी की सत्ता को भारत में दृढ़ करना था। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह कोई भी कार्य करने को तत्पर था। मुगल बादशाह, अवध, मराठे और मैसूर राज्य से उसके संबंध इसी आधार पर स्थापित हुए और टूटे भी। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे भारत की दो प्रमुख शक्तियों से युद्ध करना पड़ा और उन युद्धों के लिए धन एकत्रित करने अथवा उनसे उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों के समाधान हेतु उसे कुछ अनैतिक अथवा अनुचित कार्यों को भी करना पड़ा, परन्तु वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में सफल रहा।

**मुगल बादशाह से संबंध -** 1765 ई. में जब क्लाइव ने मुगल बादशाह शाहआलम से राजनीतिक समझौता किया था तब उसके पास न धन था, न प्रभाव और न भूमि। क्लाइव ने उससे बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करके उसे 26 लाख रुपये अवध से दिला दिये। मुगल बादशाह को 26 लाख रुपया प्रति वर्ष देना कम्पनी के ऊपर एक बड़ा और अतिरिक्त भार था जिसके बदले में कम्पनी को कोई लाभ प्राप्त नहीं होता था।

वारेन हेस्टिंग्स के समय में भारत की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हो गया था। पानीपत के तृतीय-युद्ध के बाद मराठे महादजी सिन्धिया और जसवन्तराव होल्कर जैसे योग्य सरदारों के नेतृत्व में दिल्ली की राजनीति में पुनः प्रभावशाली होने लगे थे। फरवरी 1771 ई. में उन्होंने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और मुगल बादशाह को दिल्ली आने का प्रलोभन दिया। शाहआलम दिल्ली आ गया और उसने अपने को मराठों की दया पर छोड़ दिया। इस कारण हेस्टिंग्स ने मुगल बादशाह को 26 लाख रुपया प्रति वर्ष देने से इंकार कर दिया।

इसी समय मुगल बादशाह की ओर से मराठों ने इलाहाबाद और कड़ा की भी माँग की। हेस्टिंग्स ने दृढ़ता से इसे अस्वीकार कर दिया और 50 लाख रुपया देकर ये दोनों जिले अवध के नवाब को वापस कर दिये।

**अवध के साथ संबंध -** 1765 ई. में क्लाइव ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला से 50 लाख रुपये देकर अवध का सूबा उसे वापस कर दिया। उससे केवल इलाहाबाद और कड़ा के जिले मुगल बादशाह के लिए और बनारस तथा गाजीपुर के जिले कम्पनी के लिए प्राप्त किये गये थे। उस समय से अवध अंग्रेजों का मित्र-राज्य बन गया और अंग्रेज अवध की सुरक्षा को, मराठों के विरुद्ध, कम्पनी की सीमाओं की सुरक्षा का एक मुख्य आधार मानते आये थे।

हेस्टिंग्स ने भी इसी नीति का पालन किया। मुगल बादशाह शाहआलम के दिल्ली चले जाने पर उसने 50 लाख रुपये लेकर इलाहाबाद और कड़ा के जिले अवध को वापस कर दिये।

1773 ई. में हेस्टिंग्स ने अवध के नवाब से बनारस की संधि की जिससे अवध पूर्णतया अंग्रेजों पर निर्भर हो गया। इस संधि के अनुसार -

(1) नवाब ने यह स्वीकार किया कि जब वह अंग्रेज सेना की सहायता प्राप्त करेगा तब तक एक बिग्रेड के लिए 30,000 रुपये प्रतिमाह के स्थान पर 2,10,000 रुपये प्रतिमाह देगा।

(2) यदि नवाब रूहेलखण्ड पर अधिकार करने का प्रयत्न करेगा तो अंग्रेज अपनी सेना सहित उसकी सहायता करेंगे और नवाब इस सहायता के बदले में कम्पनी को 40 लाख रुपये देगा।

अवध के साथ की गई इस सन्धि का मुख्य उद्देश्य मराठों के विरुद्ध कम्पनी की सीमाओं की सुरक्षा था। अवध को सहायता का आश्वासन देकर हेस्टिंग्स ने उसे मराठों के विरुद्ध शक्तिशाली बनाना चाहा। इसी उद्देश्य से उसने नवाब को रूहेलखण्ड के उपजाऊ प्रदेश का अधिकार करने का प्रयत्न करेंगे और यदि यह प्रदेश मराठों के अधिकार में चला जाता तो अवध की सुरक्षा को संकट हो जाता और उससे अंग्रेजों की सीमाएँ भी आरक्षित हो जातीं। इस कारण मराठों द्वारा इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया गया।

जनवरी 1775 ई. में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई और आसफउद्दौला अवध का नया नवाब बना। रेग्यूलेटिंग एक्ट के अन्तर्गत उस समय तक हेस्टिंग्स की कौंसिल का निर्माण हो चुका था। कौंसिल ने हेस्टिंग्स की इच्छा के विरुद्ध कम्पनी और नवाब के बीच एक नवीन संधि की। कौंसिल का कहना था कि जितनी भी संधियाँ अभी तक अवध के साथ की गईं थीं वे सभी व्यक्तिगत रूप से नवाब शुजाउद्दौला से की गई थीं, अतएव नये नवाब से नई संधि के अनुसार -

(1) अवध के नवाब ने अंग्रेजी सेना की सहायता प्राप्त करने पर उसके व्यय के पहले से अधिक धन देने का वायदा किया।

(2) बनारस और गाजीपुर के जिले कम्पनी की प्रत्यक्ष अधीनता में दे दिये गये।

(3) नवाब को पुनः अपना सम्पूर्ण खजाना पिछले नवाब की विधवा पत्नियों को देने के लिए बाध्य किया गया।

इस संधि से अवध के नवाब की आर्थिक स्थिति दुर्बल हुई जिसका प्रभाव उसकी सैनिक-शक्ति पर पड़ा। अंग्रेजी सेना के व्यय के लिए जो बढ़ी हुई धनराशि निश्चित की गई वह बहुत अधिक थी जिसके कारण नवाब अंग्रेजों की सहायता लेने से हिचक सकता था। बाद में इस संधि की शर्तों के फलस्वरूप हेस्टिंग्स को अवध की बेगमों और नवाब के झगड़े में फँसना पड़ा।

## 11.5 अंग्रेजों और मराठों का प्रथम युद्ध (1775-82 ई.)

चौथे पेशवा माधवराव की मृत्यु (1772 ई.) होते ही मराठों में आन्तरिक विग्रह आरंभ हो गया और इसका आरम्भ पूना से हुआ। माधवराव की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नारायणराव पेशवा बना, परन्तु उसका चाचा रघुनाथ अर्थात् राघोबा स्वयं पेशवा बनने का इच्छुक था। 1773 ई. में रघुनाथराव ने नारायणराव की हत्या करा दी और स्वयं पेशवा बनने का प्रयत्न किया, परन्तु उसी समय नारायणराव की विधवा पत्नी के एक पुत्र माधवराव नारायण हुआ और दरबार के मराठा-सरदारों ने नाना फड़नवीस के नेतृत्व में अल्पायु माधवराव नारायण को पेशवा स्वीकार कर लिया।

अब रघुनाथराव ने पेशवा बनने के लिए अंग्रेजी कंपनी से सहायता माँगी। इस पर मुंबई की सरकार ने बिना गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल से सलाह लिए रघुनाथराव से 7 मार्च, 1775 ई. को सूरत की संधि कर ली। इस संधि की प्रमुख शर्तें इस प्रकार थीं -

**सूरत की संधि -**

(1) रघुनाथ राव को कम से कम 2500 सैनिक दे दिये जाएँ जिनमें 600 यूरोपियन हों और उनके साथ काफी तोपें हों।

(2) इनके खर्च के लिए प्रतिमास 1-1/2 लाख रुपये अग्रिम रघुनाथ राव से लिए जाएँ।

(3) 6 लाख रुपये या इतने के जेवर अंग्रेजों के सुपुर्द किये जाएँ।

(4) रघुनाथ राव सदैव के लिए अंग्रेजों को मुंबई के पास के सारे टापू समर्पित करे जिनमें थाना, वसीन, सालसेट और जम्बूसर तथा सूरत के निकट स्थित ओलपाद सम्मिलित हैं।

रघुनाथ राव ने 6 लाख के आभूषण कम्पनी को गिरवी रखे जो बड़ी ऊँच-नीच के बाद 1798 में उसको वापस लौटा दिये गये। इस संधि के अनुसार एक अंग्रेज सेना मुंबई से रवाना होकर 28 फरवरी को सूरत पहुँच गई। इस सेना के साथ जेम्स फोरबीज भी था। फिर सूरत से यह सेना खम्भात के लिए रवाना हुई। वहाँ 12 भाइयों की सेनाएँ पड़ी हुई थीं, जिनको हराकर यह सेना पूना पहुँचना चाहती थी।

फरवरी 1775 ई. में कर्नल कीटिंग अंग्रेजी सेना लेकर सूरत पहुँचा और 18 मई, 1775 ई. को उसने एक मराठा सेना को अदस के मैदान में परास्त किया। इस प्रकार मराठों के आन्तरिक झगड़ों में अंग्रेजों द्वारा हस्तक्षेप करने के कारण यह युद्ध आरंभ हुआ।

**पुरन्दर की संधि (1776 ई.) -**

कोलकाता की कौंसिल ने मुंबई सरकार की इस कार्यवाही को खतरनाक, अनाधिकारपूर्ण और अन्यायपूर्ण

NOTES

बताया, सूरत की संधि मानने से इंकार कर दिया और लेफ्टिनेण्ट उपटन को पूना-दरबार से एक संधि करने के लिए भेजा जिसके फलस्वरूप कोलकाता की अंग्रेज-सरकार और पूना-दरबार में 1 मार्च, 1776 ई. को पुरन्दर की संधि हुई। इस संधि की मुख्य शर्तें निम्न प्रकार थीं-

(1) थाना का दुर्ग और सालसेट का टापू अंग्रेजों के अधिकार में रहेंगे।

(2) अंग्रेजों ने रघुनाथ राव पर 12 लाख रुपये खर्च किये हैं वे अंग्रेजों को दिये जायेंगे।

(3) रघुनाथ राव को निर्वाह के लिये 3 लाख 15 हजार रुपये प्रतिवर्ष पूना सरकार देगी। उसका राजकाज से कोई संबंध नहीं रहेगा।

(4) गुजरात में जो इलाका अंग्रेजों ने जीत लिया है वह उन्हीं के अधिकार में रहेगा और भविष्य में वे गायकवाड़ के मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेंगे।

परन्तु मुंबई सरकार को पुरन्दर की संधि स्वीकार न थी। वह रघुनाथ राव को संरक्षण प्रदान करती रही। उधर पूना-दरबार ने भी पुरन्दर की संधि को पूरा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। कंपनी के डायरेक्टरों ने भी पुरन्दर की संधि को स्वीकार नहीं किया और बेसीन को अपने अधिकार में रखने पर बल दिया। इससे मुंबई-सरकार को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। उसने रघुनाथराव के साथ की गई सूरत की संधि को पुनः स्वीकार कर लिया और नवम्बर 1778 ई. में एक अंग्रेज-सेना वहाँ भेज दी, परन्तु अंग्रेजों की यह सेना बुरी तरह पराजित हुई और 1779 ई. में मुंबई-सरकार की पूना-दरबार से बड़गाँव की संधि करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

**बड़गाँव की संधि (29 जनवरी, 1779)**

तलेगाँव के युद्ध के बाद बड़गाँव की संधि हुई जिसके अनुसार -

(1) रघुनाथ राव को पूना सरकार के सुपुर्द करना था।

(2) सालसेट, थाना तथा अन्य प्रदेश जो अंग्रेजों ने छीन लिये थे वापस करने थे।

(3) बंगाल से आती हुई अंग्रेजी सेना को वापस लौटाना था।

(4) दो अंग्रेज अफसरों को जमानत के रूप में मराठों के पास उस समय तक रखना था जब तक संधि की शर्त पूरी न हो जाय।

हेस्टिंग्स ने बड़गाँव के उक्त समझौते को मानने से इंकार कर दिया। उसने गोडार्ड के नेतृत्व में एक शक्तिशाली सेना तुरंत बंगाल से भेजी जिसने मध्य-भारत को पार करके फरवरी 1780 ई. में अहमदाबाद पर और दिसम्बर 1780 ई. में बेसिन पर अधिकार कर लिया, परन्तु जब गोडार्ड पूना की ओर बढ़ा तब अप्रैल 1781 ई. में एक युद्ध में उसकी पराजय हुई और उसे पीछे हटना पड़ा, परन्तु एक दूसरी अंग्रेज सेना बंगाल से कैप्टिन पोफम के नेतृत्व में भेजी गई। उस सेना ने 3 अगस्त, 1780 ई. को ग्वालियर के दृढ़ किले को जीत लिया। सीपरी नामक स्थान पर 16 फरवरी, 1781 ई. को सिंधिया की भी पराजय हुई।

अक्टूबर 1781 ई. में सिंधिया ने अंग्रेजों से एक संधि कर ली जिसके अनुसार उसने वादा किया कि वह अंग्रेजों तथा पूना-दरबार में समझौता कराने का प्रयत्न करेगा। सिंधिया के मध्यस्थ बन जाने से पूना-दरबार और अंग्रेजों में 17 मई, 1782 ई. को सालबाई की संधि हुई। इस संधि के अनुसार -

**सालबाई की संधि -**

इसकी मुख्य शर्तें निम्नलिखित थीं -

(1) जो स्थान पुरन्दर की संधि के बाद अंग्रेजों ने जीत लिए हैं वे पेशवा को वापस लौटाये जायेंगे।

(2) सालसेट टापू और मुंबई के पास के अन्य छोटे-छोटे टापू अंग्रेजों के कब्जों में बने रहेंगे।

(3) इसी प्रकार भड़ोच भी अंग्रेजों के अधिकार में रहेगा।

(4) गुजरात में जो स्थान अंग्रेजों ने जीत लिए हैं वे पेशवा और गायकवाड़ को वापस लौटा दिये जायेंगे।

(5) अब भविष्य में अंग्रेज लोग रघुनाथ राव को आर्थिक या दूसरे प्रकार की सहायता नहीं देंगे और वे अपने निवास के लिए स्थान पसंद कर लेंगे और उन्हें 2500 रुपये मासिक खर्च के लिये दिये जायेंगे।

(6) फतेहसिंह गायकवाड़ के अधिकार में वही प्रदेश रहेगा जो पहले था और उसे अब मराठा राज्य की सेवा करनी पड़ेगी।

(7) पेशवा वादा करता है कि हैदरअली उस प्रदेश को वापस लौटायेगा जो उसने अभी हाल में छीन लिया है।

(8) इस मद में अंग्रेजों और मराठों के साथियों की सूची दी गई है और दोनों ने यह वचन दिया है कि एक दूसरे को नहीं सताएँगे।

(9) जो व्यापारिक सुविधाएँ अंग्रेजों को पहले मिली हुई हैं वे बनी रहेंगी।

(10) पेशवा वादा करता है कि अंग्रेजों के अतिरिक्त किसी अन्य यूरोपीय जाति का वह समर्थन नहीं करेगा।

(11) ईस्ट इण्डिया कम्पनी और पेशवा माधवराव पंडित प्रधान महाराज माधवराव सिंधिया से आग्रह करते हैं कि वह इस संधि की शर्तों का दोनों पक्षों से पालन करवायें और जो भी पक्ष अतिक्रमण करे उसका दमन करें।

(12) रघुनाथराव ने जो प्रदेश अंग्रेजों को दिये हैं वे कर्नल उपटन की संधि के अनुसार वापस लौटाये जायेंगे।

**संधि का महत्व -**

भारत के इतिहास में इस संधि का बड़ा महत्व है। नाना को तो यह संधि पसन्द नहीं थी। वह अब भी उपटन की संधि और बड़गाँव के समझौते पर जोर देते थे परन्तु महादजी सिंधिया के सामने कोई विकल्प नहीं था। इस संधि के अनुसार महादजी ने यह जमानत दी थी कि वह दोनों पक्षों से इसका पालन करवायेंगे। इससे इसका महत्व बढ़ गया। नाना यह भी चाहते थे कि मराठों को बंगाल की चौथ मिलनी चाहिए परन्तु नागपुर के भोंसले 20 वर्ष से सोये पड़े थे। अब यह प्रश्न खड़ा नहीं किया जा सकता था। इस संधि के विषय में डेविड एण्डरसन ने लिखा है -

"सिंधिया ने जो भी बातें कहीं वे संतोषप्रद थीं। मेरे मन में उनके विषय में कोई संदेह नहीं था। मैंने उससे कहा कि हमारी सरकार के प्रति जो उसकी सद्भावना है उससे भी अधिक सद्भावना हमारी सरकार की उसके प्रति है। मैंने उसको विश्वास दिलाया कि उसकी मित्रता पर हमको भरोसा है।"

महादजी को हेस्टिंग्स बड़ा ईमानदार समझता था और उसकी मित्रता को महत्वपूर्ण मानता था। उसकी यह नीति थी कि सिंधिया से कोई शत्रुता न हो। यह नीति उसने और उसके बाद कार्नवालिस और शोर ने भी मानी।

हेस्टिंग्स के समय में द्वितीय मैसूर-युद्ध भी हुआ जिसमें अंग्रेजों को हैदर अली, निजाम और मराठों से युद्ध करना पड़ा।

**वारेन हेस्टिंग्स पर महाभियोग और उसके संदिग्ध कार्य -** फरवरी 1785 ई. में हेस्टिंग्स भारत से वापस गया। फरवरी 1786 ई. में बर्फ ने उसके विरुद्ध महाभियोग आरंभ किया। 1787 ई. में पार्लियामेण्ट ने हेस्टिंग्स पर महाभियोग पर विचार करना स्वीकार किया। हेस्टिंग्स पर 22 अपराधों के आरोप लगाये गये। यह महाभियोग फरवरी 1788 और 1795 ई. तक अर्थात् प्रायः सात वर्ष चला, परन्तु अन्त में हेस्टिंग्स को सभी आरोपों से मुक्त कर दिया गया।

## 11.6 लार्ड कार्नवालिस का प्रशासन (1786-1793)

कंपनी के डायरेक्टरों ने पिट्स इंडिया एक्ट के लागू करते समय जो नीति प्रतिपादित की थी उसे लागू करने के लिए लार्ड कार्नवालिस को भारत का गवर्नर जनरल बनाकर भेजा गया। वह 1786 में भारत आया। इस समय भारत से जो राशि भेजी जाती थी उसकी मात्रा कम होती जा रही थी। कृषकों की आर्थिक दशा कमजोर होती जा रही थी और उत्पादन भी कम होता जा रहा था। इसके अलावा व्यापार से भी कम लाभ हो रहा था। कंपनी इस आर्थिक हालत को सुधारना चाहती थी। इस स्थिति को सुधारने के लिए ही कार्नवालिस को सारे अधिकार देकर भेजा गया।

कार्नवालिस के सुधार कार्यों के संबंध में **एल.पी. शर्मा** लिखते हैं - "कार्नवालिस ने विभिन्न क्षेत्रों में सुधार किए। उसने हेस्टिंग्स के सुधारों से बहुत कुछ लाभ उठाया और अधिकांशतः डायरेक्टरों के आदेशों का पालन किया। इस कारण यह नहीं कहा जा सकता कि उसने स्वयं कोई मौलिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया हो, परन्तु तब भी उसमें कुछ योग्यता अवश्य ऐसी थी जिसके कारण उसने इन सुधारों को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित

किया। वह ईमानदारी थी और उसे व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति की न तो लालसा थी और न ही आवश्यकता। वह स्वयं धनवान था और भारत आने से पूर्व कई महत्वपूर्ण पदों पर कार्य कर चुका था। इस कारण वह निष्पक्ष और दृढ़ता से कार्य कर सका। वह न्याय, निष्पक्षता और नैतिकता में विश्वास करता था और इसी भावना को वह शासन में उत्पन्न करना चाहता था। इस कारण उसने अंग्रेज कंपनी के शासन में एक नवीन मापदण्ड को निश्चित किया और अपने चरित्र की दृढ़ता के कारण उसने कुछ मात्रा में निष्पक्ष और न्यायपूर्ण बनाने का प्रयत्न किया, यद्यपि निःसंदेह यह सभी कुछ भारत में कंपनी के आधिपत्य को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से था।"

### बंगाल का स्थायी बन्दोबस्त

**जमींदारी प्रथा या भू-राजस्व का स्थायी बंदोबस्त -** 1765 ई. में बंगाल, बिहार तथा अवध की दीवानी प्राप्त करने के बाद नवाब तथा अंग्रेजों के दोहरे शासन के कारण कृषकों की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी थी। वारेन हेस्टिंग्स द्वारा प्रचलित भू-राजस्व प्रणाली असफल रही, क्योंकि जमींदार अधिक बोली लगाकर भूमि पर अपना अधिकार बनाये रखते थे तथा कृषकों का शोषण करते थे। इस स्थिति में कार्नवालिस को बंगाल का गवर्नर जनरल बनाकर इस आदेश के साथ भेजा गया कि वह भारत में राजस्व व्यवस्था को व्यवस्थित करे। कार्नवालिस ने लगान व्यवस्था को व्यवस्थित करने के लिए सर जान शोर के निर्देशन में जाँच के आदेश दिये। सर जान शोर के स्थायी भू-राजस्व व्यवस्था जमींदारों से करने का आग्रह किया। शोर ने जमींदारों से 10 वर्ष का अनुबंध कर भू-राजस्व भूमि के किराये का 9/10 भाग निर्धारित कर 1/10 भाग जमींदारों के लिये दिये जाने की सिफारिश की। कार्नवालिस ने शोर में प्रस्तावों को स्वीकृति प्रदान की और कम्पनी सरकार ने बंगाल में जमींदारों को भूस्वामी मानते हुए भू-राजस्व की यह व्यवस्था जमींदारों के साथ कीं। 10 फरवरी, 1790 की यह व्यवस्था 10 वर्षों के लिए लागू की गयी। कार्नवालिस इस व्यवस्था को स्थायी बनाना चाहता था। 1793 में जब कम्पनी को स्वीकृति मिली तो उसने इसे स्थायी बना दिया। कार्नवालिस ने यह स्थाई बंदोबस्त (इस्तमरारी बंदोबस्त) बंगाल, बिहार, उड़ीसा, यू.पी. के बनारस खंड, उत्तरी कर्नाटक तथा बाद में मद्रास के कुछ भागों में लागू की गयी। इसके अंतर्गत ब्रिटिश भारत की 19 प्रतिशत भूमि आती थी। इसे लागू करते समय भूमि की पैमाइश नहीं की गयी थी। इस व्यवस्था के द्वारा सन् 1790-91 में किये गये राजस्व संग्रह अर्थात् 25,80,000 रुपयों को आधार मानकर लगान निश्चित किया गया था।

जिन प्रांतों में यह स्थायी बंदोबस्त लागू किया गया था, उनमें पहले से मौजूद जमींदार वस्तुतः जमीन के मालिक नहीं थे, बल्कि कर या लगान वसूलने वाले सरकारी कर्मचारी थे। इन जमींदारों को यहाँ के पुराने शासकों ने कमीशन पर मालगुजारी वसूलने के लिए नियुक्त किया था। अंग्रेज सरकार ने इन्हें हमेशा के लिए जमीन का मालिक बना दिया और स्थायी तौर पर एक ऐसी राशि तय कर दी जो वे सरकार को दे सकें। सरकार ने यह बंदोबस्त इस समय पाये जाने वाले जमींदारों के चार वर्गों के साथ किया था। इस बंदोबस्त में भूमि की उपज के तीन भागीदार बताये गये - (i) सरकार, (ii) जमींदार, (iii) कृषक। इनमें प्रथम दो भागीदारों की आय पौने चार करोड़ रुपये वार्षिक में से सरकार का 89 प्रतिशत भाग रखा गया और मात्र 11 प्रतिशत ही जमींदारों को रहने दिया गया।

भू-राजस्व की स्थायी व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य कम्पनी सरकार की आय हमेशा के लिए निश्चित करना तथा इसके अलावा इसका एक और दूरगामी लक्ष्य था कि समाज में एक ऐसा आधार तैयार करना जो ब्रिटिश सरकार का पूर्ण समर्थक हो। उन्होंने स्थाई बंदोबस्त के माध्यम से इंग्लैण्ड के ढंग पर जमींदारों का ऐसा वर्ग तैयार करना चाहा, जो अंग्रेजी राज्य के लिए सामाजिक आधार तैयार कर सके।

### स्थायी बन्दोबस्त की विशेषताएँ

- इसके माध्यम से जमींदारों को भूमि का स्वामी मान लिया गया और उनके नाम से पट्टे लिख दिए गए।
- अब जमींदार और रैयतों के बीच संबंधों में कंपनी का हस्तक्षेप समाप्त कर दिया गया। उनसे कहा गया कि वे रैयतों के नाम पट्टे लिख दें और उनमें देय लगान का स्पष्ट उल्लेख करें।
- पट्टे में उल्लिखित शर्तों का उल्लंघन होने पर दोनों पक्षों में से कोई भी न्यायालय की शरण ले सकता था।
- भू-राजस्व की दर 1765 की दर से लगभग दोगुनी निर्धारित की गई, परन्तु न्यायालय की स्वीकृति लिए बिना कंपनी इस दर में वृद्धि नहीं कर सकती थी।

- जमींदारों से इसके अलावा कोई अन्य कर नहीं लिया जाएगा।
- अब जमींदार न्याय नहीं कर सकेंगे क्योंकि उनके न्यायिक अधिकार समाप्त कर दिए गए।
- अब जमींदार भूमि के मालिक मान लिए गए थे अतः वे जमीन को बेच या खरीद सकते थे।

कार्नवालिस का मानना था कि इस व्यवस्था से निम्नलिखित लाभ होंगे -

1. भूमि से प्राप्त होने वाली लगान की राशि अब निश्चित हो जाएगी और अब कंपनी के कर्मचारियों को अपना ध्यान अन्य क्षेत्रों की ओर लगाने का समय मिल जाएगा। इसके अलावा लगान चुकाने वाले भी वार्षिक लगान की वृद्धि के भय से मुक्त हो जाएँगे।
2. उसका सोचना था कि जमींदार लगान वृद्धि की चिंता से मुक्त होकर कृषि उत्पादन में वृद्धि की ओर ध्यान देंगे अर्थात् वे जंगलों को कटवाकर कृषि क्षेत्र का विस्तार कर सकते हैं, बंगाल से निर्यात में भी वृद्धि हो सकती है।

**स्थायी बंदोबस्त के परिणाम या प्रभाव -**

इस व्यवस्था का तीन पक्षों पर प्रभाव पड़ा - सरकार, जमींदार और रैयत। इन तीनों पर अलग-अलग तरह से स्थायी बंदोबस्त के प्रभाव दिखाई दिए। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है -

**(1) रैयत पर प्रभाव -**

इस व्यवस्था से सर्वाधिक प्रभावित होने वाला पक्ष रैयतों का ही था। यहाँ उनको होने वाले लाभ और हानियों का विवरण प्रस्तुत है -

**लाभ**

- इस व्यवस्था से रैयतों को लाभ मात्र इतना हुआ कि जमींदार की ओर से कृषकों को पट्टे दिए जाते थे और उन पर दोनों पक्षों के संबंधों का और लगान दर का उल्लेख किया जाता था। इनका पालन करके कृषक बेदखली से बच सकता था।
- कृषकों को अपने पक्ष के न्याय के लिए न्यायालय में जाने की छूट थी।

**हानियाँ**

- इस बन्दोबस्त के द्वारा कृषकों की स्थिति अब किराएदार जैसी हो गई, क्योंकि उनका भूमि पर जो स्वामित्व था अब वह जमींदारों के पास पहुँच गया था।
- इस व्यवस्था से जमींदारों द्वारा किसानों पर अत्याचार बढ़ने लगे थे। जमींदार यह जानते थे कि वे जितना अधिक लगान वसूल करेंगे उतना ही अधिक उनके पास बचेगा, इसलिए उन्होंने किसानों से अधिक से अधिक लगान वसूल करने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने उन पर कई तरह के अत्याचार किए।
- जमींदारों के अतिरिक्त उनके द्वारा नियुक्त कारिंदों तथा गुमाश्तों ने भी किसानों पर कई तरह से अत्याचार और उनका शोषण किया।
- किसानों को भूमि का विकास करने का कोई उत्साह नहीं रहा क्योंकि इसका लाभ जमींदारों को मिलता था।

**(2) जमींदारों पर प्रभाव -**

**लाभ**

- जमींदार अब भूमि के स्वामी बन गए थे।
- वे अब भूराजस्व के अतिरिक्त अन्य करों के दायित्व से मुक्त हो गए थे।
- अब भूमि में विकास और कृषि उत्पादन के विकास का सारा लाभ जमींदारों को ही मिलने लगा था।

**हानियाँ**

- इस व्यवस्था से कई पुराने और बड़े जमींदारों का प्रभाव कम हुआ और एक नए जमींदार वर्ग का उदय हुआ।

- बहुत से जमींदारों को समय पर कंपनी का लगान अदा न कर पाने के कारण बेदखल कर दिया गया।
- कोई जमींदार किसानों से उतनी मात्रा में लगान वसूल नहीं कर पाते थे जितना कि उन्हें कंपनी को देना होता था।

**(3) सरकार पर प्रभाव**

**लाभ**

- इस व्यवस्था के द्वारा प्रारम्भ में तो कंपनी की आय में काफी वृद्धि हुई।
- अब कंपनी की आय निश्चित हो गई थी।
- अब कंपनी को प्रत्येक वर्ष भूराजस्व की दर को निश्चित करने के लिए धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं रही।
- अब कंपनी के कर्मचारी राजस्व की चिंता से मुक्त होकर प्रशासन के अन्य कार्यों पर ध्यान देने लगे।
- इस व्यवस्था से एक नए जमींदार वर्ग का उदय हुआ जो अपना हित अंग्रेजी राज के साथ चलने में ही समझते थे। आगे चलकर इस वर्ग ने अंग्रेजों का काफी साथ दिया।

**हानियाँ**

- एक बार जब लगान निश्चित कर दिया गया तो भूमि और कृषि के विकास से होने वाले लाभ से कंपनी वंचित रह गई।

**कार्नवालिस के अन्य सुधार**

कार्नवालिस ने भारत में न्याय प्रशासन तथा कर्मचारियों की स्थिति में काफी सुधार किया। लगान व्यवस्था को व्यवस्थित करना उसका एक भाग था। उसके अन्य क्षेत्रों में किए जाने वाले सुधार इस प्रकार हैं-

**सेवा के क्षेत्र में सुधार -** अब तक कंपनी की सेवाओं में भ्रष्टाचार व्याप्त था। कार्नवालिस के भारत आने का एक मुख्य लक्ष्य कंपनी की सेवाओं में सुधार करना था। कार्नवालिस के आने तक कंपनी के कर्मचारी भेंट और रिश्वत लिया करते थे। उसने भारत आकर इन दोनों पर प्रतिबंध लगा दिया। इसके अलावा कंपनी के कर्मचारी रिश्तेदारों के नाम से वर्जित व्यापार भी करते थे। कार्नवालिस ने इस व्यापार पर भी रोक लगा दी। उसने कंपनी की सेवाओं में भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए दो मुख्य कार्य किए। कार्नवालिस का मानना था कि कंपनी के कर्मचारियों की आय कम होने से वे व्यक्तिगत व्यापार और भ्रष्टाचार का कार्य करते हैं। इसके लिए उसने कंपनी के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि की। अब से कलेक्टर को 1500 रुपए प्रतिमाह वेतन और लगान का एक प्रतिशत मिलने लगा। इसके अलावा उसने दूसरा मुख्य कार्य, किया अधिक से अधिक अंग्रेजों को सेवा में नियुक्त करना। उसने उच्च सेवाओं में भारतीयों की नियुक्ति बन्द कर दी। सेना में भी भारतीयों को जमादार या सूबेदार से उच्च पद नहीं दिया गया। असैनिक सेवाओं में भारतीय सदर-अमीन, रजिस्ट्रार या मुंसिफ से अधिक ऊँचा पद प्राप्त नहीं हो सकता था।

**शासन सुधार -** कार्नवालिस ने शासन के क्षेत्र में भी सुधार किए। इस क्षेत्र में उसका मुख्य लक्ष्य था व्यय को कम करना और सादगी लाना। भारत के जिन क्षेत्रों में कंपनी का शासन था उनमें उसके मुख्य प्रशासनिक कार्य थे- लगान को एकत्र करना, न्याय करना, व्यापारिक कर एकत्र करना, कंपनी के आधिपत्य वाले नमक और अफीम के व्यापारिक एकाधिकार की देखभाल करना। कार्नवालिस ने इन सभी क्षेत्रों में प्रशासनिक सुधार किए। इसके लिए उसने निम्न कार्य किए -

- उसने बंगाल की प्रशासनिक इकाइयों को कम किया। 55 जिलों की जगह अब सिर्फ 23 जिले रह गए।
- उसने कई अनुपयोगी पदों को समाप्त कर दिया।
- उसने असैनिक न्याय का कार्य लगान बोर्ड को दिया। कलेक्टरों से न्याय के अधिकार छीन लिए गए। यही कारण था कि यह कहा जाता है कि कार्नवालिस ने न्यायपालिका और कार्यपालिका के कार्यों का विभाजन किया।

NOTES

- इन सारे कार्यों के अतिरिक्त कार्नवालिस ने योग्यता को ही पद प्राप्ति का आधार बनाया।

**व्यापार के क्षेत्र में सुधार** - कार्नवालिस के आने के समय कंपनी का व्यापार कम हो रहा था और कंपनी के कर्मचारियों का व्यापार बढ़ रहा था। इसके सुधार के लिए उसने निम्न कार्य किए -

- उसने व्यापार का अधिकार फिर से व्यापार बोर्ड को दे दिया।
- अब व्यापार बोर्ड के सदस्यों की संख्या 11 की जगह पाँच कर दी गई।
- भारतीय कारीगरों और उत्पादकों की सुरक्षा के लिए कई कानून बनाए गए।
- वस्तुओं को खरीदने और बेचने के लिए कमीशन के आधार पर व्यापारिक प्रतिनिधि नियुक्त किए।

**पुलिस एवं अन्य सुधार** - कार्नवालिस ने अब तक की जाने वाली जमींदारों द्वारा पुलिस व्यवस्था में सुधार किए।

- 1719 में पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट के अधिकारों को नियम बनाकर स्पष्ट कर दिए गए।
- पुलिस अधिकारियों के वेतन में वृद्धि की गई।
- इसके अलावा यह भी व्यवस्था की गई कि चोरी का जो व्यक्ति पता लगाएगा उसे इनाम दिया जाएगा।
- अब जमींदारों से पुलिस के अधिकार छीन लिए गए तथा थानों की स्थापना की गई।
- पुलिस के कार्यों की देखभाल करने का उत्तरदायित्व मजिस्ट्रेट को सौंपा गया।
- भारतीय दरोगा और सिपाहियों की नियुक्तियाँ की गईं और बाद में अधिक से अधिक अंग्रेजों को दरोगा के पद पर नियुक्त किया गया।
- 1790 के बाद जेलों का प्रबंध भारतीयों के हाथों से ले लिया गया अब यह कार्य अंग्रेज न्यायाधीशों को सौंप दिया गया।

**बोध प्रश्न**

1. बंगाल के स्थाई बंदोबस्त प्रथा का वर्णन कीजिए?

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

2. सालवाई की संधि का वर्णन कीजिए?

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

   ..........................................................................................

## 11.7 कार्नवालिस का मूल्यांकन

इस प्रकार कार्नवालिस ने विभिन्न प्रकार के सुधार करके भारत में कम्पनी के शासन को ठीक करने का प्रयत्न किया। साधारणतया अगले बीस वर्षों तक उसके सुधारों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया गया। शासन की जो मशीन उसने स्थापित कर दी मुख्यतया उसी आधार पर कार्य चलता रहा। इसमें संदेह नहीं कि कुछ राजनीतिक परिस्थितियों के कारण इसमें परिवर्तन न हो सका, परन्तु इसमें भी कोई संदेह नहीं कि उसकी व्यवस्था को आगे आने वाले शासन-प्रबंधकों ने लाभदायक समझा और इस कारण उसमें परिवर्तन करने का उन्होंने प्रयत्न ही नहीं किया। उसके द्वारा किया गया भूमि का स्थायी बंदोबस्त, उसकी न्याय-व्यवस्था और न्याय तथा शासन आदि ऐसी बातें थीं जिन्हें उसके उत्तराधिकारियों ने स्वीकार कर लिया।

NOTES

**सुधारों के दोष -** भूमि की स्थायी व्यवस्था निःसंदेह किसानों के हित में नहीं थी और यह भी नहीं कहा जा सकता था कि सिर्फ न्यायालयों की स्थापना मात्र से न्याय की सुविधा प्राप्त हो गई थी। न्याय प्राप्त करने में बहुत असुविधा और अपव्यय था। फिर भी कार्नवालिस के सुधार पर्याप्त मात्रा में लाभदायक रहे। पी.ई. रॉबर्ट्स की भाँति यह काफी अंशों तक स्वीकार करना पड़ता है। "उसने निश्चय ही हेस्टिंग्स के द्वारा स्थापित नींव पर इमारत खड़ी की।" रॉबर्ट्स ने पुनः लिखा है : "बहुत से कम व्यक्ति इतना स्थायी कार्य कर सके जितना कार्य कार्नवालिस ने किया और वह भी मुख्यतया आन्तरिक शासन के क्षेत्र में।"

**विदेश-नीति और तृतीय मैसूर-युद्ध -** डायरेक्टरों ने 1784 ई. में घोषणा की कि 'कम्पनी नीति का उद्देश्य राज्य-विस्तार नहीं है।' इसी घोषणा के आधार पर हस्तक्षेप न करने की नीति का सूत्रपात हुआ जिसका नाम सर जान शोर के साथ अधिक सम्मिलित है, परंतु कार्नवालिस भी इसी नीति के पालन में विश्वास करता था और उसने प्रयत्न भी किया, परन्तु तब भी उसे तृतीय मैसूर-युद्ध लड़ना पड़ा जिसे उसने एक 'क्रूर आवश्यकता' बताया।

## 11.8 सारांश

हस्तक्षेप न करने की नीति के आधार पर ही उसने 1788 ई. में शाहआलम को दिल्ली की गद्दी पुनः प्राप्त करने में सहायता देने से इन्कार कर दिया। इसी आधार पर उसने पेशवा से की गई एक पिछली संधि को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि लॉर्ड कार्नवालिस ने कुछ मात्रा में हस्तक्षेप न करने की नीति का पालन किया था यद्यपि अंग्रेजी साम्राज्य की सुरक्षा के लिए वह युद्ध से पीछे नहीं हटा।

1793 ई. में लार्ड कार्नवालिस भारत से वापस चला गया। उसका समय ब्रिटिश साम्राज्य की दृढ़ता की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना गया है।

## 11.9 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. वारेन हेस्टिंग्स के प्रशासन व सुधारों की जानकारी दीजिए।
2. वारेन हेस्टिंग्स की विदेश-नीति की समीक्षा कीजिए।
3. अंग्रेज-मराठा युद्ध से आप क्या समझते हो? विस्तार से समझाइए।
4. लार्ड कार्नवालिस के प्रशासन की जानकारी दीजिए।
5. कार्नवालिस के सुधारों की विस्तृत चर्चा कीजिए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. वारेन हेस्टिंग्स के प्रशासन से आप क्या समझते हो?
2. सूरत की संधि पर टिप्पणी लिखिए।
3. पुरन्दर की संधि पर टिप्पणी लिखिए।
4. सालबाई की संधि पर टिप्पणी लिखिए।
5. बंगाल के स्थाई बंदोबस्त प्रथा से आप क्या समझते हो?
6. स्थाई बंदोबस्त की विशेषताएँ बताकर परिणाम बताइए।

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. द्वैधशासन की समाप्ति किसने की -

   (A) वारेन हेस्टिंग्स (B) लार्ड डलहौजी (C) क्लाईव (D) कार्नवालिस।

2. भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद की स्थापना का वास्तविक प्रारंभ किसके समय में हुआ -

   (A) डलहौजी (B) वारेन हेस्टिंग्स (C) क्लाईव (D) इनमें से कोई नहीं।

3. नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हुई-

   (A) जनवरी 1875 (B) जनवरी 1575 (C) जनवरी 1775 (D) मार्च 1775

4. कार्नवालिस के सुधार हैं-

   (A) शासन सुधार (B) व्यापार के क्षेत्र में सुधार

   (C) सेवा के क्षेत्र में सुधार (D) उपरोक्त सभी।

5. पुरन्दर की संधि हुई-

   (A) 1760 में (B) 1776 में (C) 1766 में (D) 1780 में।

6. बड़गाँव की संधि हुई-

   (A) 1779 में (B) 1759 में (C) 1760 में (D) 1750 में।

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (C), 4. (D), 5. (B), 6. (A)

NOTES

## 11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**

NOTES

# अध्याय-12 न्यायिक व प्रशासनिक सुधार : विलियम बैंटिक व डलहौजी

## (JUDICIAL & ADMINISTRATIVE REFORMS : WILLIAM BENTICK & DALHOUSIE)

**इकाई की रूपरेखा**

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 प्रशासनिक व्यवस्था और सुधार
12.3 डलहौजी का प्रशासन और सुधार
12.4 सामाजिक और शैक्षणिक सुधार
12.5 सारांश
12.6 अभ्सास प्रश्न
12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

## 12.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. न्यायिक व प्रशासनिक सुधार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. लार्ड विलियम बैंटिक के सुधार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. लार्ड डलहौजी का प्रशासन एवं सुधार का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

## 12.1 प्रस्तावना

### लार्ड विलियम बैंटिक
**Lord William Bentick (1828-1835)**

लार्ड विलियम बैंटिक 1828 में भारत का गवर्नर जनरल बनकर आया था। वह एक उदार व सुधारवादी दृष्टिकोण का व्यक्ति था। भारत में उसका समय सुधारों के लिए ही जाना जाता है। इसके पीछे कंपनी की नीति भी काम कर रही थी। कंपनी अपने पिछले गवर्नर जनरलों के काल में युद्धों में बहुत अधिक धन व्यय कर चुकी थी अतः वह भी कुछ समय के लिए शान्ति चाहती थी। विलियम बैंटिक का समय इस हिसाब से सुधार और शान्ति का काल माना जाता है। भारतीय राजाओं के साथ उसने अहस्तक्षेप न करने की नीति को अपनाया। उसने भारत में विभिन्न क्षेत्रों में सुधार किए जो इस प्रकार हैं -

## 12.2 प्रशासनिक व्यवस्था और सुधार

विलियम बैंटिक ने सर्वप्रथम प्रशासन को सुधारने के लिए कुछ कार्य किए। उसके पूर्व कार्नवालिस ने ही प्रशासन के क्षेत्र में कुछ सुधार किए थे। विलियम द्वारा किए गए प्रशासनिक सुधार इस प्रकार हैं -

**1. प्रशासन में भारतीयों की नियुक्ति** - लार्ड कार्नवालिस भारतीयों की योग्यता में विश्वास नहीं करता था अतः उसने सरकारी सेवा में भारतीयों को कम से कम नियुक्ति दी थी। उसकी नीति के अनुसार कंपनी के महत्वपूर्ण पदों पर अंग्रेज ही पदस्थ होते नजर आ रहे थे। प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों से भारतीय वंचित होते

आ रहे थे। विलियम बैंटिक इस भेदभाव की नीति को समाप्त करना चाहता था। उसने अब प्रशासन के महत्वपूर्ण पदों पर भारतीयों को नियुक्ति दी। उसके समय में सदर अमीन के पद तक भारतीय पहुँचे। इस पद का वेतन 700 रुपये प्रतिमाह था। उसके इस सिद्धांत को कंपनी ने अपनी नीति बना लिया। कंपनी के अधिकारियों ने 1833 के चार्टर एक्ट में इसे इस रूप में स्वीकार किया "अब धर्म, जाति, जन्म, वंश या रंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति को कंपनी की सेवाओं से वंचित नहीं किया जाएगा।" उसकी इस नीति से दो लाभ हुए, एक तो कंपनी को कम खर्च करना पड़ता था और दूसरा स्थानीय समस्याओं से भारतीय परिचित होते थे जिससे उसके सुलझाने में सहायता मिलती थी।

**2. लगान प्रशासन में सुधार** - उसके समय में कंपनी की भूमि व्यवस्था में एकरूपता का अभाव था। अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग लगान व्यवस्था लागू थी। वेलेजली की पंचवर्षीय योजना में कई प्रकार के दोष थे। उसकी व्यवस्था के आधार पर जमींदार किसानों पर अत्याचार करते थे। अतः उसने आगरा समेत समस्त पश्चिमोत्तर प्रांत की नपाई करवाई एवं उसका नक्शा तैयार करवाया। इसके बाद समस्त भूमि का वर्गीकरण किया और जमीन की किस्म तथा उपज के आधार पर लगान निर्धारित किया। इसके लिए उसने एक बोर्ड ऑफ रेवेन्यू बनाया और सारा काम उसे सौंप दिया। उसने लगान की यह व्यवस्था 30 वर्षों के लिए लागू की। इसके अलावा उसने बंगाल में लगान की वसूली के संबंध में कई सुधार किए। उसकी इस व्यवस्था से किसान, जमींदार और कंपनी तीनों को लाभ हुआ।

**3. पुलिस प्रशासन में सुधार :** विलियम बैंटिक ने पुलिस प्रशासन में भी सुधारों का प्रयास किया। उसने थानेदारों के अधिकारों को बनाए रखा परन्तु इसके साथ ही पटेलों तथा जमींदारों को भी पुलिस संबंधी अधिकार दिए गए। प्रत्येक जिले में पुलिस की स्थाई ड्यूटी लगाई गई ताकि अपराधों पर नियंत्रण हो सके।

**4. नए पदाधिकारियों की नियुक्ति** - उसने प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करने के उद्देश्य से कई नए पदों का सृजन किया। इन नए पदों पर अधिकारियों की नियुक्ति की गई। जिलाधीशों के ऊपर कमिश्नरों को बिठाया गया। कमिश्नरों को न्यायालयों एवं पुलिस विभाग के कार्यों का निरीक्षण करने के अधिकार दिए गए। वह मजिस्ट्रेटों एवं जिलाधीशों के कार्यों पर नियंत्रण एवं निगरानी रख सकता था।

विलियम बैंटिक के इन प्रशासनिक सुधारों से प्रशासन व्यवस्था में बहुत सुधार हुआ। वह पहले की अपेक्षा काफी चुस्त-दुरुस्त हो गई।

विलियम बैंटिक के पूर्व के गवर्नर जनरलों ने अपनी नीतियों के कारण कंपनी का कोष रिक्त कर दिया था और बजट घाटा भी बढ़ गया था। इस स्थिति में बैंटिक ने कंपनी की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए एक समिति की स्थापना की और उसके सुझावों के आधार पर निम्नलिखित सुधार किए -

**1. भत्तों में कमी** - उसने आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए सबसे पहले कंपनी के असैनिक अधिकारियों के न केवल वेतन में कमी की अपितु उनके भत्तों में भी कमी कर दी और सैनिक अधिकारियों के संबंध में यह निश्चित किया गया कि जो अधिकारी कोलकाता से 600 मील की सीमा पर रहते हैं उनको केवल आधा भत्ता दिया जाएगा। उसके इन सुधारों से कंपनी को बीस हजार पौण्ड प्रति वर्ष की बचत होने लगी। यद्यपि उसके इन सुधारों से कंपनी के कर्मचारियों में भारी असंतोष फैला, परन्तु इससे कंपनी को आर्थिक लाभ हुआ। इसके अलावा उसने भारतीयों को नौकरी पर नियुक्ति दी जो कि कम वेतन पर रखे जाते थे। इससे भी कंपनी को लाभ हुआ।

**2. वेतन में कमी** - उसने आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए कंपनी के बड़े अधिकारियों के वेतन में भी कमी कर दी क्योंकि इनके वेतन बहुत अधिक थे जिससे कंपनी को काफी रकम अदा करनी पड़ती थी।

**3. न्यायालयों में कमी** - व्यर्थ में धन व्यय न हो इसके लिए उसने घूम-घूम कर न्याय करने वाली अदालतों को समाप्त कर दिया। इससे इन पर होने वाला व्यय बच गया और कंपनी को काफी आर्थिक लाभ हुआ।

**4. लगान मुक्त भूमियों का अधिग्रहण** - भारतीय शासकों ने बहुत-सी भूमि दान में दे रखी थी जिसकी आय राजकीय राजस्व में नहीं जाती थी। बैंटिक ने ऐसी सारी भूमि का सर्वे करवाया और उसे जब्त कर लिया और शेष भूमि से लगान की व्यवस्था की गई। इससे कंपनी को 30 लाख रुपए वार्षिक आय हुई।

**5. लगान व्यवस्था में सुधार :** विलियम बैंटिक ने नए सूबों की लगान व्यवस्था में सुधार किया। उसने पिछले वर्षों की लगान का पता लगाकर 30 वर्षों के लिए लगान का निर्धारण किया। यह व्यवस्था उत्तर-पश्चिम

प्रान्त के लिए की गई थी। इसके अलावा उसने बंगाल और बिहार की लगान व्यवस्था को भी सुधारा और इस तरह कंपनी की आय को बढ़ाया।

**6. अफीम व्यापार से आय में वृद्धि -** उसने अफीम के व्यापार को बढ़ाने के लिए व्यापारियों को लाइसेंस देना प्रारंभ किया। इसके अलावा अब अफीम चीन जाने के लिए करांची न जाकर सीधे मुंबई से चीन भेजी जाने लगी। इससे भी कंपनी के व्यय में कमी हुई और उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

**7. मलाका के उपनिवेश व्यय में कमी -** बैंटिक ने मलाका के उपनिवेश पर होने वाले व्यर्थ के व्यय में कमी करके भी कंपनी की आर्थिक स्थिति में सुधार किया।

**8. व्यापार से आय में बढ़ोत्तरी -** बैंटिक ने सिंध के अमीरों तथा पंजाब के रणजीत सिंह से व्यापारिक संधियाँ कीं। इससे कंपनी के व्यापार को लाभ हुआ और उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार आया।

इस तरह विभिन्न आर्थिक सुधारों के माध्यम से कंपनी की आर्थिक स्थिति काफी मजबूत हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि जब वह भारत आया था तब कंपनी को एक करोड़ का बजट घाटा हो रहा था और अब जब कि उसके सुधार कार्य सफल हो गए तो कंपनी को दो करोड़ का शुद्ध लाभ होने लगा।

## 12.3 सामाजिक और शैक्षणिक सुधार

भारतीय गवर्नर जनरलों में विलियम बैंटिक प्रथम गवर्नर था जिसने भारतीय समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। भारतीय समाज एक परंपरागत समाज था और उसमें परंपराओं के नाम पर कई सामाजिक बुराइयाँ पल रही थीं। भारतीय बुद्धिजीवी भी इन बुराइयों को समाप्त करने की कोशिश कर रहे थे। बैंटिक ने उनके साथ सहयोग किया और कुछ बुराइयों को कानून बनाकर प्रतिबंधित करने का प्रयास किया। इसके अलावा उसने शैक्षणिक व्यवस्था में भी कुछ सुधार किए। ये सुधार इस प्रकार थे -

**1. सती प्रथा की समाप्ति -** भारत में एक अत्यन्त अमानवीय प्रथा प्राचीनकाल से प्रचलित थी जिसे सती प्रथा कहा जाता था। इसके अनुसार एक स्त्री को अपने पति के मरने पर उसकी चिता के साथ जिन्दा जलना होता था। यह प्रथा कब और कैसे प्रारम्भ हुई इसका निश्चित इतिहास तो ज्ञात नहीं परन्तु यह एक अत्यन्त अमानवीय प्रथा थी। इसकी सबसे बड़ी बुराई इस बात में थी कि स्त्रियों को मजबूरन बिना उनकी इच्छा के जलना होता था। हो सकता है कुछ महिलाएँ अपनी इच्छा से पति के साथ जलना चाहती हों, परन्तु इसकी इजाजत देना भी मनुष्य के प्रति अन्याय था। आधुनिक युग में राजा राममोहन राय ने इस प्रथा के खिलाफ सबसे पहले आवाज उठाई। इसके पूर्व मुगल सम्राट अकबर, गोवा का शासक अल्बुकर्क और पेशवा ने इस पर रोक लगाई थी, परन्तु अभी तक किसी भी शासक ने इसे गैर कानूनी घोषित नहीं किया था। वर्तमान में बंगाल इस प्रथा का सबसे बड़ा केन्द्र बनता जा रहा था। राजा राममोहन राय ने इसे रोकने का प्रयास किया और तत्कालीन गवर्नर जनरल बैंटिक ने भी इसे समाप्त करने के लिए 1829 में एक कानून पास कर दिया। इस कानून के द्वारा सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। इसमें यह भी प्रावधान था कि जो इसे प्रोत्साहित करेगा उसे भी प्राण दण्ड दिया जाएगा। इस तरह बैंटिक ने एक अत्यन्त क्रूर प्रथा को समाप्त करने का सार्थक प्रयास किया।

**2. ठगों का दमन -** बैंटिक ने भारत में जड़ पकड़ती जा रही ठगी की बुराई को भी समाप्त करने की कोशिश की। उसके समय में उत्तरी भारत में ठगों का आतंक छाया हुआ था। ठग लोग इसे एक व्यवसाय की तरह अपनाए हुए थे और बकायदा काली की पूजा किया करते थे। बैंटिक ने कर्नल स्लीमैन को यह उत्तरदायित्व सौंपा। उसने ठगों के निवास स्थान और उनके भेदों का पता लगाया और उन्हें सेना के द्वारा घेरकर समर्पण करने के लिए विवश कर दिया।

**3. बाल हत्या पर प्रतिबंध -** भारतीय समाज सती प्रथा की तरह अनेक अमानवीय बुराइयों को पालता रहा है। इसी तरह की एक बुराई थी देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बच्चों की बलि चढ़ाना। इसके अलावा राजपूत समाज में कन्याओं की उत्पत्ति एक अभिशाप के रूप में मानी जाने लगी और धीरे-धीरे कन्या के पैदा होते ही उसे मार दिया जाने लगा। बैंटिक ने इस अमानवीय प्रथा को भी अधिनियम बनाकर समाप्त करने की घोषणा की।

**4. नर बलि का निषेध -** भारत के उड़ीसा और मद्रास में नर बलि की प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। जनजातियों में यह मान्यता थी कि नर बलि देने से भू-देवी प्रसन्न होती हैं। बैंटिक ने इसे भी कानून बनाकर समाप्त कर दिया।

**5. दास प्रथा की समाप्ति -** भारतीय समाज के निम्न वर्गों में आर्थिक कारणों से दास प्रथा की परपरा भी प्रचलित थी। बैंटिक ने इसे भी कानून द्वारा समाप्त करने का प्रयास किया।

**6. शिक्षा संबंधी सुधार :** विलियम बैंटिक के सुधारों में सबसे महत्वपूर्ण सुधार शिक्षा संबंधी माना जा सकता है। उसने शिक्षा पर बजट में आवंटित राशि को किस प्रकार व्यय किया जाए और शिक्षा का माध्यम कैसा हो इन प्रश्नों के समाधान के लिए मैकाले की अध्यक्षता में एक आयोग गठित किया और उसकी सिफारिशों को लागू किया गया।

**न्यायिक सुधार -** कार्नवालिस द्वारा निर्मित प्रांतीय अपीलीय तथा सर्किट न्यायालयों में काम बढ़ जाने के कारण शेष कार्य बहुत-सा एकत्रित हो गया था। यहाँ कार्यविधि ठीक न होने के कारण न्याय में प्रायः विलम्ब हो जाता था। बैंटिक ने ये सभी न्यायालय बन्द कर दिए तथा इनका कार्य दण्डनायकों तथा कलेक्टरों को दे दिया जो कि राजस्व तथा भ्रमणकारी आयुक्तों के अधीन होते थे। दिल्ली तथा आधुनिक उत्तरप्रदेश के लिए पृथक सदर दीवानी तथा सदर निजामत अदालत इलाहाबाद में स्थापित कर दी गई। अब इनके निवासियों को अपील के लिए कोलकाता नहीं जाना पड़ता था।

इस प्रकार अपने सात वर्ष के कार्यकाल में बैंटिक ने जिन सुधारों को किया वे वास्तव में सुधारों का एक उत्कृट उदाहरण थे।

**बोध प्रश्न**

1. लार्ड विलियम बैंटिक के सामाजिक सुधार का वर्णन कीजिए?

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

2. बैंटिक के प्रशासनिक व्यवस्था में सुधारों का वर्णन कीजिए?

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

........................................................................................................

## 12.4 डलहौजी का प्रशासन और सुधार

### (A) आर्थिक सुधार

**(1) रेल व्यवस्था -** डलहौजी भारतीय रेल का जन्मदाता है। भारत में प्रथम रेलवे लाइन थाना तथा मुम्बई के बीच सन् 1853 में डाली गयी, सन् 1892 तक देश में 17,768 मील लम्बी रेल लाइनें डल चुकी थीं, परन्तु इसके लिए डलहौजी ने ब्रिटिश व्यक्तिगत कम्पनियों को राज्य की इस गारण्टी के साथ अनुबंधित किया कि रेलों के विकास से भारत के व्यापार के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था और राष्ट्रीय चेतना भी प्रभावित हुई।

**(2) तार व्यवस्था -** डलहौजी ने सन् 1852 में सर्वप्रथम भारतीय तार विभाग की स्थापना की। पेशावर, कोलकाता, मुम्बई, चैन्नई तथा भारत के अन्य महत्वपूर्ण भागों को मिलाने के लिए करीब 4 हजार मील में तार की व्यवस्था की गयी।

**(3) आधा पैनी (दो पैसे) डाक दर -** भारत की आधुनिक डाक व्यवस्था का जन्म सन् 1854 में एक कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर हुआ। डलहौजी ने समस्त भारत के लिए आधा पैनी (दो पैसे) पोस्टेज की दर से डाक सेवा प्रारंभ कर रुकावटों वाले प्राचीन ढाँचे को हटा दिया। प्रारम्भ में अधिकांश डाक सरकारी होती थी और पत्रों पर दूरी के हिसाब से दाम दिये जाते थे और पोस्टमैन को बख्शीश भी देनी होती थी, लेकिन अब पत्र पर आधा पैसे का टिकट लगाकर पत्र को देश में कहीं भी भेजा जा सकता था।

**(4) नहरों का निर्माण** - डलहौजी ने देश के विकास के लिए नहरों के महत्व को समझा। भारत आते ही गंगा नहर के निर्माण की योजना को कार्यान्वित किया। इसके अलावा कृष्णा डेल्टा योजना, पोलार योजना, पंजाब की नहर योजना इसी कार्यकाल में पूरी हुई।

**(B) प्रशासनिक सुधार -**



(1) डलहौजी ने व्यवस्थापिका (कानून बनाने वाली) तथा कार्यकारिणी परिषद् (कानून लागू करने वाली सभा) में विभेद स्थापित किया। डलहौजी ने व्यवस्थापिका सभा के अधिकारों को स्वीकार किया तथा प्रत्येक सदस्य को बिल पेश करने का अधिकार दिया गया।

(2) स्थानीय रीति-रिवाजों तथा परिस्थितियों से अपरिचित होने के कारण उपयोगी कानून बनाने में गवर्नर जनरल को कठिनाई होती थी, इसलिए शासकीय त्रुटि को समाप्त करने के लिए कुछ प्रान्तीय सदस्यों को भी शासन कार्य में शामिल करने की शुरुआत की।

(3) 1852 ई. के अधिनियम द्वारा प्रान्तीय गवर्नर के गवर्नर जनरल की कौंसिल के लिए एक सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया गया।

(4) कानून बनाने के लिए मुम्बई, बंगाल, चैन्नई और आगरा प्रान्तों से एक-एक सदस्यों का चुनाव किया जाने लगा।

(5) डलहौजी ने गवर्नर जनरल को बंगाल के प्रशासन से अलग कर दिया तथा एक अलग गवर्नर जनरल की नियुक्ति की।

(6) गवर्नर जनरल को कमिश्नर की नियुक्ति का अधिकार दिया गया।

(7) नये विजित क्षेत्रों को केन्द्रीय प्रमुख के अन्तर्गत रखा गया।

(8) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद् में विभागीय उत्तरदायित्व की व्यवस्था की गयी।

(9) डलहौजी ने ब्रिटिश भारत को कई जिलों में विभाजित किया। बंगाल एवं बिहार में तेईस जिले, मुम्बई में तेरह जिले, मद्रास में छब्बीस जिले तथा सिंध में तीन जिले स्थापित किये गये।

(10) प्रत्येक क्षेत्र के जिलों के अधिकारियों को प्रशासनिक, पुलिस एवं न्यायिक अधिकार दिये गये।

**(C) सैनिक सुधार**

(1) बंगाल के तोपखाने का केन्द्र कोलकाता से हटाकर मेरठ में स्थापित किया गया।

(2) शिमला को सेना का स्थायी केन्द्र बनाकर वहाँ सेना का प्रधान कार्यालय भी स्थापित किया गया।

(3) डलहौजी ने साम्राज्य विस्तार के लिए देशी राज्यों को हड़पने तथा शासकों की उपाधियों व पेंशन समाप्त करने की नीति अपनाई। वह जानता था कि इस नीति से भारतीय सैनिक असंतुष्ट होकर विद्रोह भड़का सकते हैं, इसलिए उसने ब्रिटिश सेना में कम से कम भारतीय सैनिक रखने की नीति बनाई।

(4) डलहौजी ने पंजाब में एक अनियमित सेना तथा एक गोरखा रेजीमेण्ट का गठन किया। सन् 1857 ई. के विद्रोह में यह रेजीमेण्ट अंग्रेजों के लिए विशेष सहायक सिद्ध हुई।

**(D) व्यापारिक सुधार**

(1) उसने खुले व्यापार की नीति का समर्थन किया तथा भारत के सभी बन्दरगाह खोल दिये।

(2) कराची, मुम्बई एवं कोलकाता के बन्दरगाहों में सुधार किया।

(3) अंग्रेज व्यापारियों की सुविधा के लिए उसने लन्दन एवं मालवा में बन्दरगाह बनवाये।

(4) भारतीय बाजार ब्रिटिश माल के लिए खोल दिये, जिससे भारतीय व्यापार नष्ट हो गया।

(5) भारत से कच्चे माल का अधिकाधिक निर्यात होने लगा। इसी प्रकार ब्रिटेन से तैयार माल का आयात बढ़ा।

**(E) सामाजिक सुधार**

(1) डलहौजी ने विभिन्न स्थानों पर सभाएँ आयोजित कर शिशु हत्या जैसी कुप्रथाओं का उन्मूलन किया।

(2) नरबलि को समाप्त किया, विधवा विवाह को प्रोत्साहित किया।

(3) दूसरा धर्म अपनाने पर भी व्यक्ति को अपनी पैतृक सम्पत्ति का अधिकारी माना गया।

**(F) सार्वजनिक निर्माण विभाग**

(1) डलहौजी ने एक स्वतंत्र सार्वजनिक लोक निर्माण विभाग की स्थापना की।

(2) डलहौजी ने सड़कें, नहरें, न्यायालय, जेल, खजाने तथा एक सभ्य शासन का समस्त ढाँचा केवल पंजाब को ही नहीं दिया वरन् कोई भी प्रान्त उसके ध्यान से न छूट सका।

(3) सिविल इंजीनियरिंग को प्रोत्साहित किया।

(4) गंगा नहर का निर्माण कार्य पूरा किया।

(5) ग्राण्ट ट्रंक रोड का निर्माण कार्य भी बड़े उत्साह से जारी रखा गया।

**(G) शैक्षणिक सुधार**

## 12.5 सारांश

डलहौजी के समय भारतीय शिक्षा प्रणाली में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के अध्यक्ष सर चार्ल्स वुड ने एक शिक्षा योजना तैयार की, जिसे कि 1854 का वुड डिस्पेंस के नाम से जानी जाती है। अतः इसी योजना से भारतीय शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ। इसमें निम्नलिखित तथ्य हैं-

(1) भारतीयों के शैक्षणिक हितों का ध्यान रखने का दायित्व अब ब्रिटिश सरकार का होगा।

(2) ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों को यूरोपीय सत्य, विज्ञान एवं दर्शन से अवगत कराना होगा, जिससे कि कम्पनी को उसके अधीन कार्य करने वाले विश्वासपात्र व्यक्ति प्राप्त हो सकें।

(3) प्रारम्भिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया जाये।

(4) छात्रवृत्ति देने की विस्तृत योजना।

(5) स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाये।

(6) मिडिल स्कूलों की स्थापना पर विशेष ध्यान दिया जाये।

(7) उच्च शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए विश्वविद्यालय खोले जायें।

(8) सभी स्तर पर शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी न हो। भारतीय भाषाओं के अध्ययन को भी प्रोत्साहित किया जाये।

(9) निजी वैज्ञानिक संस्थाओं की स्थापना को प्रोत्साहित कर अनुदान प्रणाली की शुरुआत की जाये।

## 12.6 अभ्यास प्रश्न

**दीर्घ उत्तरीय प्रश्न** (Long Answer Type Questions)

1. लार्ड विलियम बैंटिक के प्रशासनिक व्यवस्था व सुधारों की विस्तृत विवेचना कीजिए।
2. लार्ड डलहौजी के प्रशासनिक व्यवस्था व सुधारों की व्याख्या कीजिए।

**लघु उत्तरीय प्रश्न** (Short Answer Type Questions)

1. लार्ड विलियम बैंटिक के प्रशासनिक व्यवस्था से आप क्या समझते हो?
2. विलियम बैंटिक के आर्थिक सुधारों की जानकारी बताइए।
3. बिलियम बैंटिक के शैक्षणिक सुधार बताइए।
4. ठगों के दमन से आप क्या समझते हो?

NOTES

5. डलहौजी के आर्थिक सुधार बताइए।
6. डलहौजी के प्रशासनिक व सैनिक सुधार बताइए।

**वस्तुनिष्ठ प्रश्न** (Objective Type Questions)

1. लार्ड विलियम बैंटिक भारत का गवर्नर जनरल बना -
   (A) 1828 में (B) 1820 में (C) 1850 में (D) 1870 में।
2. भारत का वह प्रथम गवर्नर जनरल जिसने भारतीय समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया-
   (A) कार्नवालिस (B) विलियम बैंटिक (C) क्लाईव (D) इनमें से कोई नहीं।
3. विलियम बैंटिक के प्रशासनिक सुधार हैं-
   (A) प्रशासन में भारतीयों की नियुक्ति (B) लगान प्रशासन में सुधार
   (C) पुलिस प्रशासन में सुधार (D) उपरोक्त सभी।

**Ans.** 1. (A), 2. (B), 3. (D)

## 12.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. हरीश कुमार खत्री, आधुनिक भारत का राजनैतिक इतिहास (1757-1857)—कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल

●●●

**अपनी प्रगति की जाँच करें**
**Test your Progress**